अबुलफ़ज़्ल-ए-मुबारक-ए-अल्लामी

कृत

आईने-अकबरी

खण्ड-१

भाषान्तरकार तथा संपादक
रामलाल पाण्डेय

विद्या मन्दिर,
कानपुर।

मूल्य
१२) रु० मात्र

विद्वानों की सम्मतियां।

सर अब्दुर्रहीम, एक्स. चीफ़ जस्टिस, मद्रास हाईकोर्ट—"……यह (आईने-अकबरी का अनुवाद) एक ऐसा सत्कर्म है, जिससे भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों का महान् कल्याण होगा। मुझे विश्वास है कि पंडित जी को अवश्य ही प्रोत्साहन और सहायता प्राप्त होगी।"

पंडित **रामचन्द्र जी शुक्ल,** प्रोफ़ेसर बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी—"…. पंडित जी के इस अनुवाद में बड़ी भारी विशेषता यह है कि इसमें फ़ारसी के मूल शब्दों और वाक्यों का पूरा ध्यान रक्खा गया है। ऐसा अनुवाद उसीके द्वारा हो सकता है जिसे फ़ारसी और हिन्दी दोनों भाषाओं पर समान और पूर्ण अधिकार हो। अनुवाद ठीक ठीक फ़ारसी के अनुकूल होते हुये भी उसकी भाषा बहुत ही सरस, प्रांजल और चलती हुई है। आपकी यह निपुणता देख मुग्ध हो जाना पड़ता है। यह हिन्दी का बड़ा भारी सौभाग्य है कि उसके एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति के लिए पंडित जी ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् और लेखन-कला-पटु साहित्य-क्षेत्र में उतरे हैं। इतिहास के क्षेत्र में आपने एक अत्यन्त उज्वल भविष्य का आभास दिया है। आपकी विद्वत्ता, श्रमशीलता, और तत्परता देख मेरे हृदय में आपके प्रति श्रद्धा का जो भाव उत्पन्न हुआ है वह मुझे बराबर उत्साह प्रदान करता रहेगा।"

डा० **बेनी प्रसाद,** एम. ए., डी. एस. सी., पी-एच. डी, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी—"आईने-अकबरी भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण पुस्तकों में से है, हिन्दी अनुवाद एक कमी को पूरा करता है। पाण्डेय जी ने जिस परिश्रम और उत्साह से यह काम किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उपयुक्त शब्दों का विन्यास बड़ी ख़ूबी से किया गया है। भाषा में महावरा है।"

मौ० **हसरत मोहानी,** बी. ए.,—"मेरे विद्वान् मित्र पं० रामलाल जी पाण्डेय ने आईने-अकबरी का हिन्दी अनुवाद पूर्ण करके देश और जाति की बहुत बड़ी सेवा की है। मूल ग्रंथ की फ़ारसी इबारत से मिलाकर देखने से मालूम हुआ कि पंडित जी ने असाधारण अनुसंधान एवं परिश्रम से काम लिया है। यह बात बिना अत्युक्ति के कही जा सकती है कि आईने-अकबरी का इससे अधिक शुद्ध और सरस अनुवाद कहीं और किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ है। मैं यह बात अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर कहता हूँ।"

कर्मवीर श्री सुन्दरलाल जी, "….हाल में मुझे उन (भाषान्तरकार) के साथ कई घण्टे बैठने और उनके अनुवाद का स्थान स्थान पर मूल फ़ारसी से मुक़ाबला करने का मौक़ा मिला। उनकी सफलता को देखकर मैं दंग रह गया और हर्ष से भर गया।"

डा० **राधा कुमुद मुकर्जी,** एम. ए., पी. आर. एस., पी-एच. डी, प्रोफ़ेसर ऐण्ड हेड आफ़ दि डिपार्टमेण्ट आफ़ इन्डियन हिस्ट्री, लखनऊ यूनीवर्सिटी—"मैं पं० रामलाल पाण्डेय को उनके जीवन की महान्कृति के पूर्ण करने के उपलक्ष में, जो कि उन्होंने अबुलफ़ज़्ल के विश्व विद्याभण्डार फ़ारसी ग्रंथ आईने-अकबरी के भाषान्तर के रूप में उपस्थित की है, बधाई देता हूँ। उन्होंने यह कार्य विद्या प्रेम से प्रेरित होकर ही आरम्भ किया था, और सात वर्ष के अनवरत परिश्रम के बाद उसे समाप्त किया। उनकी यह कृति, भारतीय इतिहास और हिन्दी-साहित्य के लिए जिसमें ऐसे प्रमुख ग्रंथों का अभाव है, एक अमूल्य दान है। अनुवादक की बहुभाषा भिज्ञता भी सराहनीय है, कि जिनको फ़ारसी तथा हिन्दी दोनों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। धुरन्धर विद्वान् तक अबुलफ़ज़्ल की फ़ारसी को क्लिष्ट तथा पुराने ढंग की फ़ारसी समझते हैं, तिस पर आईने-अकबरी तो और भी कठिन है, क्योंकि उसमें तत्कालीन भारत की सभी श्रेणियों का जीवन सम्बन्धी प्रत्येक दशा और पहलुओं को निरूपण करने के लिए, नाना प्रकार के विषयों के वर्णन में, भयङ्कर शब्द भाण्डार का, प्रयोग करना पड़ा है। मुझे इसमें किञ्चितमात्र सन्देह नहीं कि पंडित रामलाल जी का श्रम, जिसने कि अनुपम सफलता प्राप्त करली है, हिन्दी विद्वानों द्वारा युगों तक पुरस्कृत होता रहेगा। विद्वान् सदा इससे लाभान्वित होते रहेंगे, और भारत के एक अनुपम सम्राट् के विस्तृत काल सम्बन्धी अपूर्व ऐतिहासिक ज्ञान-स्रोत का जल पान करते रहेंगे।"

सर **जी. रास मसऊद,** वाइस चांसलर, मुसलिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़:—"मैंने आपके आईने-अकबरी के अनुवाद के उद्धरणों का मूल पुस्तक से मिलान किया है और आपके ग्रंथ की उत्कृष्टता को देख कर चकित हो गया हूँ। वस्तुतः आपने हिन्दी और फ़ारसी साहित्य की महान सेवा की है, जो समस्त प्राच्य विद्या विशारदों एवं हिन्दी-ईरानी संस्कृति प्रेमियों का सम्मान बिना प्राप्त किये नहीं रह सकती। आइने-अकबरी एक अत्यन्त पारिभाषिक, ज्ञान सम्पन्न और विद्वता पूर्ण कृति है। आपके अनुवाद ने ग्रंथ की संपन्नता को सुरक्षित रखने में विलक्षण सफलता प्राप्त की है।"

डा० **राम प्रसाद त्रिपाठी,** एम. ए., डी. एस. सी, इतिहास विभाग, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी:—"मैं आईने-अकबरी के भीमकाय हिन्दी भाषान्तर को देख कर अति प्रसन्न हुआ। पं० रामलाल पाण्डेय हमारी सर्व श्रेष्ठ बधाई के पात्र केवल इस लिए ही नहीं कि उन्होंने इतने दुःसाध्य कार्य का भार अपने ऊपर लिया है, प्रत्युत इस लिए भी कि उन्होंने उसे असाधारण योग्यता और अपूर्व सफलता के साथ संपन्न किया है। आप उन उदाराशय महानुभावों में से हैं जिनकी प्रेममयी सेवा का उद्देश्य, और कुछ नहीं, केवल विद्या तथा साहित्य की उन्नति करना होता है। उनका आईने-अकबरी का अनुवाद हिन्दी-साहित्य को एक बहुमूल्य रत्न प्रदान करेगा, जो उसके भँडार को समृद्धिशाली बना देगा।"

A few opinions of eminent scholars.

Sir Abdur Rahim, Ex. Chief Justice, Madras High Court, President, Legislative Assembly.—I have read some of the opinions expressed on the translation of Ain-i-Akbari into Hindi in which Pandit Ramlal Pandey is engaged. It is an undertaking which is bound to prove very useful to students of Indian History, and I trust that learned Pandit is certain to receive encouragement and support.

The Honorable Justice Uma Shanker Bajpai, Additional Puisne Judge, Allahabad High Court.—Pandit Ramlal Pandey is a Hindi scholar of repute and he has added greatly to that reputation by his translation of Abul Fazl's immortal work, the Ain-i-Akbari. This book is written in highly ornate Persian and any one who attempts at its translation must have a wonderful command over two languages. The learned Pandit is to be warmly congratulated for his work and I am sure his efforts extending over a period of about 8 years will receive recognition at the hands of an appreciative public.

Dr. Bhagwandas, M.A., D. Litt., M.L.A., Benares—I have been convinced that the translation is accurate and has been done with much literary skill and excellence besides. The translator has enhanced the value of the work by copious biographical and other notes based on industrious reading and research. He has self-denyingly and single-mindedly spent his energies on the work. I earnestly hope that all those who are interested in the healthy growth of really good Hindi literature will help him in ensuring the successful publication and circulation of this fine book.

Principal A. B. Dhruva, Pro-Vice-Chancellor, Benares Hindu University—Pandit Ramlal Pandey has shown me his translation of "Ain-i-Akbari". I have read the opinions expressed by several of my friends who are competent to judge, and am glad to say that they have pronounced it to be simply superb.

Sir G. Ross Masood, Vice-Chancellor, Aligarh Muslim University—I have had the Hindi extracts of your translation of the Ain-i-Akbari, compared with the original and am amazed at the excellence of your book. You have indeed rendered a great service to Hindi and Persian learning which must command the esteem of all orientalists and lovers of Indo-Persian Culture. The "Ain-i-Akbari" is a highly technical erudite and scholarly work. Your translation has succeeded in preserving the richness of the original remarkably well. I once more congratulate you on your translation.

Pandit Lalta Prasad Sukul, M.A., Head of the Hindi Department, Calcutta University—In keeping with the accuracy, literary polish has not been lost sight of. The translator rightly deserves our congratulations and every encouragement possible and I hope the work shall receive its due honour and appreciation.

Maulana Hasrat Mohani, B.A.,—My learned friend Pandit Ram Lall Pande has indeed rendered a very valuable service to the country by translating Ain-i-Akbari in Hindi. From my personal knowledge and experience I would like to say, not by way of any exaggeration, that nowhere and in no language Ain-i-Akbari, has been translated with a greater precision and refinement.

Acharya Narendra Deo, M.A., Principal, Kashi Vidyapith—In my opinion the work is of great literary and historical merit. It is not difficult for any one to find out that the writer has bestowed much thought and care over the work and has made conscious efforts to make the Hindi version a faithful translation of the original with due regard to the peculiarities of the Hindi idiom.

Dr. S. K. Banerji, M.A., Lt., Ph. D., (Lond.) Reader, Lucknow University—It was with some scepticism that I commenced the review of Pandit Ram Lal Pandey's Hindi translation of Abdul Fazl's Ain-i-Akbari and was agreeably surprised to find it to be a work of a high order and considerable merit. On comparison with the Persian text, Panditji's work can easily be pronounced to be a faithful and accurate rendering of the original. His erudition is seen in every line of the work, his complete mastery of Persian and the rich and lucid style of his Hindi translation. I was particularly pleased at his attempt at thoroughness and clearing the allusions in the text and settling the different readings of the manuscripts. It is the dearth of such scholars that has hindered the progress of research-work on mediaeval India, those that command mastery over several languages. I firmly believe, it is going to be a monumental work in the Hindi historical world and will be hailed by all lovers of Hindi.

Dr. Ishwari Prasad, M.A., D. Litt., University of Allahabad—The Ain-i-Akbari is a monumental work in Persian written by one of India's greatest literary giants in a style which does not easily lend itself to translation. An attempt to translate such a work in Hindi requires not merely ability and knowledge of Persian but indefatigable labour and inexhaustible patience. I was delighted to come across a learned man in the United Provinces who has had the rare patience to go through the work and critically examine the text. I have no doubt Mr. Pandey's labours in the field of scholarship will receive, at the hands of historians and orientalists, the recognition which they so really deserve. The translation seems to have been prepared with great care and reproduces, in my judgment, the spirit of the original. The copious foot-notes supplied by the translator greatly add to the value of this work. As for me I can only bow before such a heroic labour of love.

Dr. Ram Prasad Tripathi, M.A., D. Sc. (London) Depart. of History, University of Allahabad—I was extremely delighted to see the herculean translation of the Ain-i-Akbari into Hindi. Pt. Ram Lal Pandey deserves our highest congratulation for not only undertaking the difficult task but also for having accomplished it with extraordinary ability and singular success. He is one of those high-souled workers who undertake labour of love for no other object but service of knowledge and literature. His translation of the Ain-i-Akbari will add to Hindi literature a precious gem which will enrich the treasure of our vernacular literature as a whole.

Dr. Har Dutt Sharma, M.A., Ph. D., German University, Prague, S. D. College, Cawnpore, U.P.—Mr. Ramlal Pande is to be congratulated and he has earned the everlasting gratitude of the scholars of Hindi. Not only this, but the Hindi literature is richer today by this translation. It will instil the spirit of research and awaken the critical faculty of all who read this work. This, of course, would have been impossible for any other person except Mr. Pande who has a wonderful command over the Persian idiom and who is quite at home in Hindi and English also.

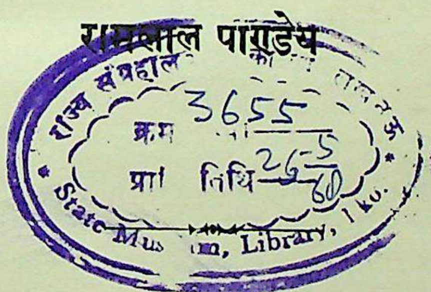
अबुलफ़ज़्ल-ए-मुबारक-ए-अल्लामी

कृत

आईने-अकबरी

भाषान्तरकार तथा संपादक

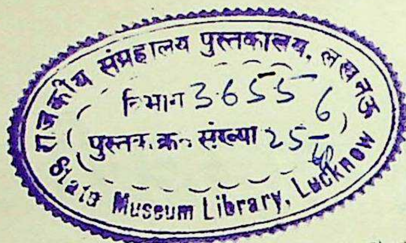
रामलाल पाण्डेय



संवत् १९९१ विक्रमी

सन् १९३५ ईसवी

प्रकाशक—
विद्या-मन्दिर,
कानपुर ।



मुद्रक—
जाब प्रेस,
कानपुर ।

अबुलफ़ज़्ल की भूमिका।

परमात्मन्[1] !

हे[2] रहस्य मय ! माया पट में छिपे तुम्हारे भेद अनन्त,
कैसा था आरम्भ तुम्हारा नहीं जानता है यह अन्त।
आदि अन्त भगवन् ! दोनों हैं इस प्रकार से तुम में लीन,
अविनाशी साम्राज्य तुम्हारा दोनों उसमें चिह्न विहीन।

वाणी मेरी मूक हुई है, और हुई जिह्वा पाषाण,
कानन है विस्तीर्ण, पंगु मैं, पा न सका उसका परिमाण[3]।
चिन्ता शक्ति चकित है मेरी यही आपका है गुणगान,
आपे में मैं नहीं नाथ हूँ यही आपकी है पहिचान।

१—आईने-अकबरी में "अल्लाहो-अकबर" पाठ है, जिसका शाब्दिक अर्थ "ईश्वर महान है" या "महान-ईश्वर" होता है। भाषान्तर में इसी का भावार्थ द्योतक संबोधनात्मक "परमात्मन्" शब्द प्रयोग किया गया है।

२—फ़ारसी की मौलिक रचना इस प्रकार है:—

ऐ ! हमा दरपर्दा निहां राज़े-तो ;
बेख़बर अंजाम ज़ि आग़ाज़े-तो।
दर तो हम आग़ाज़ो हम अंजाम गुम ;
हर दो बशहरे-क़िदमत नाम गुम।
पाय-सख़ुन लंगो ज़बाँ संगलाख़ ;
बाले-क़दम तंगो बियाबां फ़राख़।
हैरते-अन्देशा सिपासे-तो बस ;
बे ख़ुदेयम रुए शनासे-तो बस।

३—"पा न सका उसका परिमाण" यह चरणांश मूल रचना में नहीं है। अशक्यता के स्पष्टीकरण एवं "कानन है विस्तीर्ण, पंगु मैं" चरण की पूर्ति के लिए जोड़ दिया गया है।

उस ईश्वर को पहचानने-योग्य वह मनुष्य है, जो मौखिक बन्दना को छोड़कर व्यावहारिक रूप से उसके गुणगान में दत्त-चित्त हो, और सृष्टिकर्ता के कुछ अद्भुत चरित्र लिखकर अक्षय सौभाग्य प्राप्त करे, साथही लिखते समय अपनी मनोवृत्ति को लेखनी के छेद से मिलाये रक्खे[१]। आशा है कि ऐसा करने से, उसके राजत्व का तेज लेखक पर आभासित हो और इस प्रदीप्त ज्ञान द्वारा उसके सागर के कुछ बूंद तथा गहन बन की धूल का कोई परमाणु ग्रहण करके वह चिरस्थायी आनन्द प्राप्त करे और वाणी एवं कर्म के खण्डहर को समृद्धशाली बनावे।

मुबारक-सुत अबुलफ़ज़्ल के ध्यान में—जो कि ईश्वर का धन्यवाद, राज-स्तुति की भांति गान करता है और नृपोचित मणियों को वर्णन के सूत्र में पिरोता है—यह बात नहीं है कि वह उस विचित्र संसार को नया रंग देने वाले तथा मणिमय सृष्टि को भूषित करने वाले (अकबर) के यशस्वी कार्यों तथा श्रेष्ठ गुणों को प्रकट करे। यह बुद्धिमानी भी नहीं है कि वह प्रत्यक्ष बातों को प्रदर्शित करे और निज को ज्ञानवानों का उपहास्यास्पद बनावे। वह (अबुलफ़ज़्ल) केवल अपने ज्ञान-मणि को संसार-हाट में उपस्थित करता है और इस कार्य को हाथ में लेने पर अपने हृदय को आत्म-प्रशंसा में तत्पर करता है। ऐसे गुरुतर कार्य को—जिसको स्वर्गस्थ भी कठिनता से पूरा कर सकते हैं—करने का साहस करना अपनी प्रशंसा करना नहीं, वरन् अशक्यता और संकल्प की तुच्छता का प्रकट करना है। इस ग्रंथ की रचना में लेखक का अभीष्ट यह है कि वह इस शुभ समय के अन्वेषकों के हृदय में, ज्ञान-क्षेत्र के सजग विचरणकर्ता एवं सांसारिक और ईश्वरीय रहस्यों के ज्ञाता (सम्राट्) की बुद्धि की महत्ता, साहस-विशालता तथा कर्मों की श्रेष्ठता स्थिर करे और संसार की भावी संतति के लिए एक श्रेष्ठ उपहार प्रस्तुत करे। साथ ही जीवन, कृतज्ञता प्रकाशन से भूषित हो जाय और परलोक यात्रा का संबल प्रस्तुत हो जाय। आशा है कि इस जिज्ञासा के तृष्णा बन (संसार) में—जिसमें प्रकृतियाँ नाना प्रकार की, वासनाएं अगणित, न्याय दुर्लभ और पथप्रदर्शक दुष्प्राप्य हैं—लोग इस ज्ञान-विधान द्वारा कर्तव्य कर्म जान लेंगे और ज्ञान तथा कर्म के असीम अस्तव्यस्त कानन में भटकने से मुक्ति पा जांयगे। इसी उद्देश्य से सम्राट् के कुछ आईन लिखता हूँ और दूर तथा निकट वर्तियों के लिए नीति-शास्त्र उपस्थित करता हूँ। यतः पूर्णतया विचार यह

---

१ अर्थात् जो बात अन्तःकरण में हो, वही लिखे।

है कि सम्राट की व्यवस्थाएं लिखूं इस लिए अनिवार्यतः उसके उच्च पद की महिमा वर्णन करनी पड़ेगी और इस श्रेष्ठ पद के सहायकों का हाल चित्रित करना पड़ेगा।

अद्वैत न्यायकारी (ईश्वर) की दृष्टि में पादशाही से उत्कृष्ट पद और कोई नहीं है; और सभी कार्य कुशल उसके ऐश्वर्य के सोते से तृप्त होते हैं। राजत्व का, जन समूह की राजद्रोहिता का उपचार होना एवं जनता को शासन में रखना ही, उसकी (बादशाही की) आवश्यकता के सम्बन्ध में प्रमाण चाहने वालों के लिए सबूत है। शब्द 'पादशाह' का अर्थ भी इसी कथन का समर्थक है; क्योंकि 'पाद' के अर्थ स्थायित्व और अधिकार के हैं, तथा 'शाह' असल और स्वामी को कहते हैं। अतएव पादशाह स्थायित्व और अधिकार का मूल स्वामी है। यदि शासन का आतंक न हो तो कलह का उपद्रव कैसे दबे और अपना बनाव चुनाव कैसे हो, मनुष्य जाति लोभ और क्रोध के बोझ से विनाश-कुंड में गिर जाय; समस्त संसार शोभा रहित हो जाय, और थोड़े ही समय में समृद्ध जगत उजाड़ हो जाय। राजा के न्याय के प्रकाश से अनेक जन-समूह प्रफुल्ल वदन तथा हर्षपूर्वक आज्ञा पालन का मार्ग ग्रहण करलेते हैं, और बहुत लोग उसके दंड के भय से अपने अत्याचारों के हाथ खींच कर विवश होकर सत्पथ पर चलते हैं। 'शाह' उसे भी कहते हैं जो अपने समकक्ष पदस्थों में श्रेष्ठ हो, जैसे 'शाह सवार'[१] और 'शाह राह'। लोग दामाद के लिए भी शाह शब्द प्रयुक्त करते हैं। संसार रूपी पत्नी सम्राट् से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ती है और यह मनमोहनी उसकी दासी होती है।

सरल चित्त और अदूरदर्शी मनुष्य, सच्चे राजा को स्वार्थी शासक से पृथक नहीं कर सकते। वे करें भी कैसे, क्योंकि परिपूर्ण कोष, सेना की अधिकता, योग्य सेवक, आज्ञाकारी प्रजा, बुद्धिमानों की विपुलता, गुणियों का बाहुल्य और सुख सामग्री की प्रचुरता दोनों के पास होती है। परन्तु सूक्ष्मदर्शी सत्यनिरीक्षकों पर उनका भेद प्रकट होता है। उपरोक्त वस्तुएं पहले शासक के पास स्थायी रूप से रहती हैं और दूसरे के पास से शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। सच्चा राजा अपने चित्त को उस सामग्री के बन्धन में नहीं फंसने देता है; उसका पूर्ण उद्देश्य अत्याचार के लक्षण-उन्मूलन करना तथा मनुष्य की योग्यताओं[२] को काम में

---

१ सवारों में प्रधान सवार; मार्गों में राज मार्ग।

२ अर्थात् वह ऐसे साधन उपस्थित करता है कि जिनके द्वारा मनुष्य का मानसिक विकाश हो और उसकी योग्यता प्रकट हो सके।

लाना होता है। शाँति, सुख, पवित्रता, न्याय, शील, वचन-निर्वाह, (वफ़ा) सत्यता और निष्कपटता का आधिक्य, इत्यादि उसके परिणाम होते हैं। पिछला (स्वार्थी शासक) दिखावटी काम करने, अपने बनाव चुनाव, जनता को दास बनाये रखने और भोग विलास में संलग्न रहता है; परिणाम स्वरूप (उसके राज्य में) भय, अशांति, उपद्रव, अत्याचार, विश्वासघात और चोरी का बाज़ार गर्म होता है।

राजत्व, अनुपम न्यायकारी ईश्वर का प्रकाश, विश्वभास्कर सूर्य[1] का आलोक, सिद्ध-शास्त्रों की सूची और सर्व गुणों की खानि है। प्रचलित भाषा में इस प्रकाश को **फ़र्र-इ-एज़दी** (ईश्वरीय तेज) कहते हैं, और पुराने लोगों की बोल चाल में **कियान ख़ोरा** (अत्युत्कृष्ट दीप्त मंडल)। मनुष्य बिना किसी बिचवानी के कहे सुने बादशाह की सहायता करने में अपना हाथ लगा देते हैं और सब लोग उसके दर्शन करते ही अपनी वन्दना का मस्तक उसकी सेवा-भूमि पर झुका देते हैं। इसके अतिरिक्त उससे अनेक श्रेष्ठ गुण प्रकट होते हैं। **१—मानव पितृत्व**—भांति भांति के मनुष्य उसकी कृपा से सुख पाते हैं; सम्प्रदायों के विरोधी होने पर भी द्वेष की धूल नहीं उठती। श्रेष्ठबुद्धि शासक समय का हृदय पहिचानता है और उसके अनुकूल आचरण करता है। **२—हृदय विशालता** बुरी बातें देखकर वह भड़क नहीं उठता, और अज्ञान का उपद्रव उसके चित्त को फांस नहीं लेता। शूरता उसके पैर जमा देती है। ईश्वर प्रदत्त धीरता से, उसकी अपराधी को दंड देने की शक्ति, प्रौढ़ हो जाती है, और दोषी की भीषणता उसे उसकी पूर्ति (दंड देने) से नहीं रोकती। उसकी उदारता से छोटे बड़े अपना मनोरथ सिद्ध करते हैं और किसी की अभिलाषा प्रतीक्षा की तंग गली में पड़ी नहीं रहती। **३—दिन दिन ईश्वर विश्वास वृद्धि**—प्रत्येक काम करने में, वास्तविक कार्यकर्ता ईश्वर को जानता है और इसी से कारणों के विरुद्ध होने पर भी व्यग्र नहीं होता। **४—ईश्वरोपासना**—कार्य की सफलता से असावधान नहीं होता और असफलता उसे भिक्षा वृत्ति के लिए व्यग्र नहीं करती। इच्छा की बाग डोर का सिरा बुद्धि के हाथ में रखता है और वासनाओं की चौड़ी सड़क पर उतावली से नहीं दौड़ता तथा अनावश्यक पदार्थों के उद्योग में अपना मूल्यवान समय नष्ट नहीं

---

१ अकबर सूर्य को ईश्वर का दृश्यमान प्रतिनिधि मानता था और इसी लिए उसकी उपासना करता था।

करता। वह, निरंकुश अन्ध-क्रोध को ज्ञान के अधीन रखता है और अन्ध-कोप को बलात् नहीं उठने देता तथा हलकेपन को अटकल से बाहर नहीं होने देता। वह मेल के शिखर पर विराजमान होता है। कुटिलों को सुमार्ग पर वापस लाने का साधन बनता है तथा उनकी निर्लज्जता का पट फटने नहीं देता है (अर्थात् उनके कुकर्म जनता के सम्मुख नहीं आने देता)। न्याय करने में वह अपने को ऐसा जाहिर करता है कि मानों वह स्वयम् तो प्रार्थी है और वादी ही, न्यायकारी है। इच्छुकों को प्रतीक्षा के पथ पर नहीं बिठलाता। सृष्टिकर्ता के आज्ञापालन में सृष्टि की समृद्धि चाहता है। लोगों को प्रसन्न करने के लिए बुद्धि के विरुद्ध आचरण नहीं करता। वह सदा सत्यवादियों की टोह में रहता है, और उनके कड़ुवे मालूम होने वाले बचनों से, जिनका फल मीठा हो, असन्तुष्ट नहीं होता। वक्ता की श्रेणी और उसकी सूक्ति कोटियों पर ध्यान रखता है। इसी पर सन्तोष नहीं करता कि स्वयं अत्याचार न करे, वरन् वह चाहता है कि उसके राज्य भर में कहीं अन्याय न हो।

वह सदा संसार-शरीर की स्वास्थ्य रक्षा का ध्यान रखता है और उसके नाना प्रकार के रोगों का उपचार करता है। जैसे तत्वों के सम्मिश्रण से प्राणियों का प्राकृतिक-सामंजस्य उत्पन्न होता है, उसी प्रकार वर्गों की तुल्यता से मनुष्यों के हृदयों में अनुकूलता उत्पन्न हो जाती है; और एक मनोवृत्ति तथा एक पक्षता के प्रकाश से बहुत से लोग एक देह हो जाते हैं।

संसार के मनुष्य चार वर्गों से अधिक नहीं होते :—१—**योद्धा**—ये संसार शरीर में अग्नि के तुल्य होते हैं। इस समूह की सकोप बुद्धि-ज्वाला से दुर्भागी उपद्रवियों की षड़यंत्र रचना का कूड़ा-करकट भस्म हो जाता है[1] और उपाधि-मय जगत में सुख का दीपक जलता है। २—**शिल्पकार तथा व्यापारी**—ये वायु के स्थान पर हैं। इस समुदाय की कार्य परायणता तथा पृथ्वी पर्यटन से सार्व-भौमिक ईश्वरीय प्रसाद उपलब्ध होता है और आनन्ददायिनी वायु जीवन के गुलाब-वृक्ष को बढ़ाती है। ३—**विद्वान**—जैसे दार्शनिक, वैद्य, गणितज्ञ, रेखागणित-विशारद और ज्योतिषी, ये जल के समान हैं। इस सचेत वृन्द की लेखनी और बुद्धि-सरिता से, संसार के दुर्भिक्ष काल में जल उमड़ आता है और सृष्टि-उद्यान को उसकी सिंचाई से विशेष शीतलता प्राप्त होती है।

१—यह विवरण "शाहनामा", "अख़्लाक़े-मोहिसनी", "अख़्लाक़े-जलाली" और "अख़्लाक़े-नासिरी" में भी विद्यमान है।

४–कृषक और श्रमजीवी—यह वर्ग पृथ्वी के सदृश है। इन्हीं के उद्योग से जीवन की सामग्री पूरी होती है और इन्हीं के परिश्रम करने से बल और सुख प्राप्त होते हैं। अतएव शासक के लिए आवश्यक है कि वह इनमें से प्रत्येक को उपयुक्त स्थान पर लगाकर संसार को समृद्धशाली बनाने में दत्त-चित्त हो और प्रत्येक का उसकी कार्यपटुता के अनुसार सम्मान करे। इसका परिणाम यह होगा कि संसार की आपदाएं नष्ट हो जांयगी और सृष्टि का संयोग समता पर हो जायगा।

जैसे लोक शरीर मनुष्यों के चार वर्गों से समता—सौन्दर्य प्राप्त करता है, उसी प्रकार राज्य की पवित्र मूर्ति भी चार प्रकार के श्रेणी भेद द्वारा, सुप्रबन्ध का उबटन अपने मुखमण्डल पर मलती है :—

१–राज्य के श्रीमन्त—जो अपने सामर्थ्य पर विश्वास करके प्रत्येक कार्य उत्तमता से संचालित करते हैं। रणस्थल को उत्सर्ग के सुकीर्ति-प्रदीप्तमण्डल से प्रकाशित करके प्राणाहुति देने से नहीं हिचकते। आतङ्क-पूर्ण राजसभा के ये भाग्यवान पुरुष अग्नि के स्थान पर हैं, हृदय-प्रकाशक भी और शत्रु-दाहक भी। इस वर्ग का अध्यक्ष **वकील** है, जो अपनी बुद्धि की प्रखरता से सद्भक्ति[१] के चार पदों पर पहुँच कर मुल्की और माली नायब होता है। पवित्र मन्त्रणा-सभाएं उसके ज्ञान के प्रकाश से प्रदीप्त होती हैं और राज्य के महान कार्य उसी की सूक्ष्म दृष्टि से दुरुस्ती पाते हैं। पद-वृद्धि, पदच्युत्ति, नियुक्ति और पृथक्ता उसके मतानुसार होते हैं। उसे ज्ञानवान, चिन्ताशील, उच्च-साहसी, पीठ पीछे भलाई कहने वाला, धीर, उदाराशय, मिलनसार, प्रफुल्लवदन, अपने और पराये के साथ एकसी वृत्ति रखने वाला, मित्र और शत्रु से सम व्यवहार करने वाला, तुली बात कहने वाला, समस्याएं सुलझाने वाला, सत्यवादी, प्रतिष्ठित, गंभीर, सम्मति लिए जाने योग्य, विश्वासपात्र, चतुर, दूरदर्शी, राज-काज विज्ञ, राज-रहस्य-ज्ञाता, काम न रोक रखने वाला, कार्य की अधिकता से न ऊबने वाला होना चाहिये। दूसरों के मनोरथ पूरे करने में एहसान अपने ऊपर रक्खे, और लोगों के पद-ज्ञान का ध्यान रख कर कार्य संचालन करे। सब से दिल मिलाने को प्रिय समझ कर अपने से छोटों का

१ अकबर कहा करता था कि पूर्ण सद्भक्ति (इख़लास) निम्नलिखित चार चीज़ों के त्याग पर निर्भर है—जान, माल, दीन और वैयक्तिकमान। जो अकबर को आध्यात्मिक बातों का भी पथ प्रदर्शक मानते थे, उनको उक्त सद्भक्ति प्रकट करने का वचन देना पड़ता था। उसके बाद वे दीन इलाही में सम्मिलित किये जाते थे।

सम्मान करे। अनुपयुक्त बातें न करे और कुकर्मों से अपने को बचाये। यद्यपि वह दफ़्तर का स्वामी नहीं होता तथापि दफ़्तरों के अध्यक्ष उससे सम्पर्क रखते हैं, और वह दूरदर्शिता से आवश्यक बातों की सूची अपने पास रख लेता है। **मीरमाल**[१], **मोहरदार**[२], **मीरबख़्शी**[३], **बारबेगी**[४], **क़ोरबेगी**[५], **मीरतुज़क**[६], **मीर बह्र**[७], **मीर बर्र**[८], **मीर मंज़िल**[९], **ख़्वान सालार**[१०], **मुंशी**[११], **क़ोशबेगी**[१२], **अख़्ता बेगी**[१३], इस वृन्द में सम्मिलित हैं। इनमें से हर एक को चाहिये कि दूसरे का काम जाने।

२ **विजय के सहायक**—धनादि संचय कर्ता तथा आय-व्यय विभाग के रक्षक—शासन-शरीर में वायु के सदृश हैं, चित्त पोषक मन्द वायु भी और प्राण-घातक लूक भी। इस वर्ग का प्रधान **वज़ीर** होता है, इसे दीवान भी कहते हैं। वह सम्राट का माली नायब होता है। राजकोषों की रक्षा करना और हिसाब-किताब का प्रवन्ध रखना उसके कार्य हैं। लोग उसको राजकर के धन का सर्राफ़ और उजड़े हुये संसार का आबाद करने वाला समझते हैं। उसे ईश-सेवक[१४], उत्तम गणितज्ञ, निर्लोभी, सावधान, परम मित्र, संयमी, कार्य-साधक, कुशल निबंधकार, स्पष्ट लेखक, सत्यवादी, सत्यशील, शिष्ट एवं परिश्रमी होना चाहिये। वह आय-व्यय विभाग का प्रधान अधिकारी है। मुस्तौफ़ी (नायब दीवान) के कार्य में जो कठिनाई उपस्थित होती है, उसकी दूरदर्शिता से दूर

---

१ सम्भवतः सम्राट् के जेब ख़र्च का हिसाब रखने वाला अधिकारी (ब्लाकमैन) परन्तु नवलकिशोर की मूल पुस्तक में 'दारोग़ाय खज़ायन' अर्थात् कोषों का अध्यक्ष अर्थ है।

२ शाही मोहर रखने वाला।

३ वेतनाध्यक्ष।

४ जो दरबार में लोगों को सम्राट् के सम्मुख उपस्थित करे और उनकी अर्ज़ियां सुनावे इसे मीर अर्ज़ भी कहते हैं।

५ शाही अस्त्र-शस्त्रों और निशानों का प्रधान अधिकारी।

६ समस्त रीति रिवाजों और पर्वादि का अध्यक्ष। (ब्लाकमैन) शाही उत्सवों, दरबारों तथा लश्करों का प्रबंधक एवं सरदार (न० कि०)।

७ बंदरगाहों का अध्यक्ष।

८ शाही जंगलों का अध्यक्ष।

९ दरबार अथवा शयनागार का प्रधान प्रबन्धक।

१० भोजनालयाध्यक्ष।

११ बादशाह का मोहर्रिर।

१२ शिकार ख़ाने का दारोग़ा।

१३ अस्तबलों का प्रधान अधिकारी।

१४ दीन इलाही का सदस्य (ब्लाकमैन) मूल में "इलाहीबन्दा" पाठ है।

हो जाती है; और जो समस्या उससे भी नहीं सुलझती वह वकील के सामने हल होजाती है। **मुस्तौफ़ी**[१], **साहबे-तौजीह**[२], **अवारजा-नवीस**[३], **मीर सामान**[४], **नाज़िरे-ब्यूतात**[५], **दीवाने-ब्यूतात**[६], **मुशरिफ़े-गंजूर**[७], **वाक़या-नवीस**[८], **आमिले-ख़ालसा**[९] उसके अधीन हैं। ये सब अधिकारी वज़ीर के बुद्धिबलानुसार कार्य करते हैं। कुछ शासक वज़ारत को वकालत का एक अंग मानते हैं और राज्य मंदिर के इन दो स्तम्भों के कार्यों को ऐसे एक ही व्यक्ति से कराते हैं, जो दोनों विभागों के श्रेष्ठ कार्यों को जानता हो। कभी वकील के दुष्प्राप्य होने पर, एक ऐसे व्यक्ति को, जिसमें उसके (वकील के) गुण पाये जाँय, **मुशरिफ़े-दीवान** बनाते हैं। उसका पद दीवान से ऊँचा और वकील से नीचा होता है।

३–संगी साथी—जो अपने ज्ञान के प्रकाश, तीव्र-दृष्टि की आभा, काल-ज्ञान के सामर्थ्य, मानवीय प्रकृति की भीतरी परख की अधिकता, निष्कपटत्व और ओजस्वी भाषण से राज सभा को भूषित करते हैं; और अपने धार्मिक विश्वास तथा शुभ चिन्ता की विशेषता से राज्य के बाज़ार में सद्गुणों के सहस्रों भाण्डार खोल देते हैं। विशुद्धमत और यथार्थ विचार द्वारा, वे कलह पूर्ण जगत में तृष्णा का अवरोध करके क्रोध की चिनगारियों को, अपनी चतुराई की वर्षा से बुझा देते हैं। लोगों ने इस सौभाग्यवान वृन्द को राज्य-शरीर में जल का स्थान दिया है। जब ये लोग शुद्ध-हृदय होते हैं तो मनुष्यों के चित्त से वैर और कपट की धूल मिटा देते हैं, जिससे सभा-उद्यान नवीन और हरा-भरा होजाता है। परन्तु यदि ये समता की सीमा उल्लंघन कर जाते हैं तो संसार को आपत्तियों के प्रलय-प्रवाह में डुबो देते हैं, और सभी चराचर आपदाओं की बाढ़ से, विनाश की धारा में पड़ जाते हैं। इस वर्ग का अध्यक्ष हकीम[१०] है। जो अपने ज्ञान और कर्म की सहायता से अपने चरित्र की सभ्यता प्रदर्शित करके संसार के सुधार में कटिबद्ध

---

१ नायब दीवान, जो दफ़्तर का अध्यक्ष होता है।

२ सेना का हिसाब रखने वाला।

३ सम्राट का दैनिक व्यय-लेखक।

४ दरबार के सामान का अधिकारी।

५ शाही कारख़ानों का अध्यक्ष।

६ शाही कारख़ानों का हिसाब रखने वाला।

७ मोहर्रिर (ख़ज़ांची का)

८ घटनाओं का प्रधान लेखक।

९ ख़ालसा भूमि का प्रधान अधिकारी।

१० तत्ववेत्ता, दार्शनिक।

होता है। **सद्र**[१], **मीर अद्ल**[२], **क़ाज़ी**[३], **तबीब**[४], **मुनज्जिम**[५], **शायर**[६], **रम्माल**[७] और इसी प्रकार के लोग इस समुदाय में रहते हैं।

४—**सेवक**—जो राज दरबार में सम्राट् की सुश्रूषा के लिए आवश्यक होते हैं। संसार की राज-व्यवस्था में यह समुदाय पृथ्वी के स्थान पर है। ये लोग परिचर्या के राजमार्ग में पड़े रहते हैं और सम्राट् के निकटवर्ती-भयस्थान के तुच्छ रजःकण होते हैं। यदि ये छल छिद्र से रहित होते हैं तो शरीर के लिए पौष्टिक रस का काम देते हैं, अन्यथा मनोरथ के मुखमण्डल पर धूल हो जाते हैं। **ख़वास**[८], **क़ोरची**[९], **शरबत दार**[१०], **आबदार**[११], **तोशकची**[१२], **करकराक़**[१३] तथा ऐसे ही और लोग इस वर्ग की लड़ी में पिरोये हुये हैं। जब प्रारब्ध और सौभाग्य से ये सेवक गण आपस में मिल जाते हैं तो राज्य-उद्यान गुलदस्ता बन जाता है। राजा, जिस प्रकार लोक शरीर को श्रेणीबद्ध करके सुव्यवस्थित करे, उसी प्रकार राज्य-मूर्ति को भी इन चार वर्गों के सुधार द्वारा सुप्रबन्ध से सुशोभित करे।

प्राचीन काल के बुद्धिमान वर्ग ने शासन के चार मुख्य अधिकारियों का इस प्रकार उल्लेख किया है :—पहला कर्मशील **आमिल**[१४] जो कृषकों का रक्षक, प्रजा की चौकसी रखने वाला, देश की उन्नति करने वाला और कोष की पूंजी बढ़ाने वाला हो। दूसरा **तीमार दारे-सिपाह**[१५] जो बिना एहसान जताये काम पूरा करने वाला हो। तीसरा **मीरदाद**[१६] जो तृष्णा और स्वार्थपरता से रहित होकर सूक्ष्मदर्शिता और दूरदर्शिता के शिखर पर विराजमान हो, और केवल साक्षी और शपथ पर निर्भर न रह कर, तरह तरह की पूंछताछ करके लक्ष पर पहुँच जाय।

१—इसे सद्र-इ-जहां भी कहते हैं। प्रधान विचार-पति तथा प्रधान-शासक।

२—३ क़ाज़ी न्याय करता है और मीर-अद्ल सज़ा का हुक्म देता है।

४—वैद्य।

५—गणित ज्योतिष का विद्वान।

६—कवि।

७—फलित ज्योतिषी।

८—सम्राट को भोजन कराने वाला।

९—रक्षा वर्ग का शस्त्रधारी प्रधान सेवक।

१०—११ शरबत और पानी के प्रधान सेवक।

१२—१३ वस्त्रालय और बिछौने के प्रधान सेवक।

१४—कलेक्टर और मजिस्ट्रेट।

१५—सेना की रक्षा करने वाला, सेनापति।

१६—न्यायाधीश।

चौथा जासूस[1] जो वर्तमान समय की घटनाओं के संवाद, बिना घटाये बढ़ाये पहुँचा दे और सत्यता एवं दूरदर्शिता के गुण को हाथ से न छोड़े।

न्यायी राजा के लिए आवश्यक है कि वह मानव-परीक्षा के आसन पर बैठे, और पांच प्रकार के मनुष्यों को—जिनमें संसार के सब मनुष्य आजाते हैं—पहचान लेवे और फिर बुद्धि के अनुसार व्यवहार करे। १-सर्व श्रेष्ठ वह **बुद्धिमान मनुष्य** है जो समय की परम आवश्यक उपयोगिताओं को अपने ज्ञान से काम में लावे, और जिसके सद्गुणों का सोता केवल उसी की गली में घुसा न रह कर दूसरों की खेती बारी को भी हराभरा बनाये। केवल ऐसा शुद्ध व्यक्ति सम्राट् को परामर्श देने और राज्य संभालने के योग्य है। २-इसके बाद **शुभ चिन्तक** है, जिसके सत्कर्मों की सरिता उसकी गली से बाहर न जाय और दूसरों के जल-प्रदान का साधन न बने। यद्यपि ऐसा व्यक्ति दया और प्रतिष्ठा के योग्य है, परन्तु विश्वास पात्रता जैसे उच्च पद का अधिकारी नहीं है। इससे निकृष्ट **भोला भाला** है, जिसकी कर्म-भुजा पर भलाई के चिह्न नहीं होते, पर बुराई तथा बुरे कर्मों की धूल से भी जिसका अंचल सौंदा नहीं होता। यद्यपि वह मान पाने योग्य नहीं है, तथापि सुख की छाया में बैठने का अधिकारी है। ४-इस से निकृष्टतर **सुषुप्त-भाग्य** है, जिसके घर में विनाश की सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, किन्तु जनता उसके कष्ट से मुक्त होती है। समय का शासक, उसको निराशा के तप्त स्थान में रखकर, श्रेष्ठ उपदेशों, ग्लानि पूर्ण धिक्कारों तथा उचित ताड़नाओं द्वारा सतपथानुगामी बनावे। **५-अधमाधम** वह दुष्टप्रकृति है, जिसके पाप कर्म दूसरों के पापों को बढ़ाने वाले हैं, और जिसकी दुष्टता से सम्पूर्ण जगत दुःख में हो। यदि पूर्व रोगियों का उपचार दुष्ट-प्रकृति के लिए हितकर सिद्ध न हो, तो राजा उसको कोढ़ियों के समान पृथक् रखकर नागरिकों से उसे मिलने न दे। यदि इस हृदय विदारक दंड से उसकी घोर अज्ञान निद्रा भङ्ग न हो, तो उसको शोक के शिकंजे में कसकर घर से बाहर निकाल दे। यदि उसके नष्ट स्वभाव के लिए यह औषधि भी लाभदायक सिद्ध न हो, तो राजा उसको राज्य से बाहर कर दे और निराशा-बन में भटकने दे। यदि यह उपाय भी उसकी पापमय प्रकृति को लाभ न पहुँचावे, तो उसकी दुष्टता के साधनों—नेत्रों से दृष्टि और हाथ पैर से बल खींचले (अर्थात् अन्धा करदे या

१—भेदिया।

हाथ पांव काट दे)। परन्तु राजा को चाहिये कि उसके जीवन का ताना बाना तोड़ने (प्राण लेने) का साहस न करे; क्योंकि बुद्धिमान मनोविज्ञानियों ने मानव शरीर को ईश्वरीय मन्दिर समझ कर उसको नष्ट करने की आज्ञा नहीं दी है।

अतएव न्यायप्रिय राजा के लिए आवश्यक है, कि अपने अनुभव और सूक्ष्म दृष्टि के प्रकाश से, मनुष्यों के पद पहचान कर, कार्य संचालन करे। और इसी लिए प्राचीन काल के ज्ञानार्जकों ने कहा है कि अग्रशोची, तेजपुञ्ज शासक हर छोटे आदमी को नौकर नहीं रखते; और जिनको इस काम के लिए स्वीकार कर लेते हैं, उन नौकरों में से हर एक को नित्य प्रति सामने आने का अधिकारी नहीं समझते; जिनको सामने आने की आज्ञा होती है, उनमें से हर एक को अपने बिछौने के पास आने के योग्य नहीं जानते। निकट जाने के अधिकारी व्यक्तियों में से हर एक आमोद-प्रमोद सभा में पदार्पण नहीं करने पाता। उपरोक्त श्रेणी का प्रत्येक पदस्थ (आमोद-प्रमोद सभा में जाने वाला) प्रतिष्ठित सभा में प्रवेश के योग्य नहीं होता। जो व्यक्ति इस सौभाग्य द्युति से प्रकाश प्राप्त करते हैं (महती सभा में जा सकते हैं) उनमें से हर एक गुप्त-समिति में नहीं जा सकता; और इस विज्ञता-समिति का प्रत्येक सौभाग्यवान व्यक्ति, राजकीय विषयों पर विचार करने वाली गुप्त राष्ट्रपरिषद में स्थान नहीं पाता।

ईश्वर को धन्यवाद है, कि हमारे समय का सम्राट् उपरोक्त उत्तम गुणों से ऐसा अलंकृत है, कि यदि उनको इन सब का सर-इ-दफ़्तर कहें तो अत्युक्ति न होगी। वह अपने ज्ञान के प्रकाश से, मनुष्यों के पद पहचान कर उनके पुरुषार्थ का दीपक जलाता है, और बिना किसी प्रकार की कठिनाई के प्रसन्न वदन अपने ज्ञान को कर्म-सौन्दर्य से विभूषित करता है। किसकी सामर्थ्य है कि वाकूशक्ति की गुनियां[1] से, उसके आध्यात्म जगत की अग्रगण्यता[2] एवं पवित्र—विस्तीर्ण मार्ग की कार्य पटुता का अनुमान कर सके; और यदि कुछ हाल वर्णन किया जाय और कोई भेद दर्शाया जाय तो श्रोता सुनने का बल कहाँ से लाये और समझने की शक्ति किससे मांगे। तो मेरे लिए यही अच्छा है कि मैं इस प्रयत्न से अपने को हटा लूं और उसके वाह्य जगत की कुछ विलक्षणताएं चित्रित करने पर सन्तोष करूं। अतः मैं उसके **शाला विभाग** की नीति, **सेना विभाग**

---

१ बढ़ई का एक ख़ास औज़ार जिससे वे लकड़ी की ठीक २ नाप करते हैं।

२ अकबर दीन इलाही मत का प्रवर्त्तक था। उसने अनुयायियों को जो चमत्कार दिखलाये थे, उनमें से कुछ का उल्लेख इस ग्रंथ के ७७ वें आईन में है।

के नियम और **साम्राज्य विभाग** की व्यवस्था—क्योंकि राज्य के कारखाने की सभी बातें इन्हीं तीन विभागों के अन्तर्गत हैं—वर्णन करता हूँ; और कर्मण्य अन्वेषकों के लिए एक भेंट तैयार करता हूँ; जिसका प्रत्येक क्लिष्ट मालूम होने वाला अंश सरल, और आसान मालूम होने वाला भाग कठिन है।

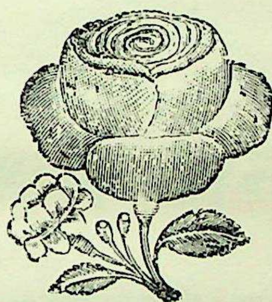
अनुभवी कार्यशील एवं प्राचीनकाल के इतिहासज्ञ इस चिंता में हैं कि पूर्वकालीन शासकों ने, बिना इन सुबोध विधानों के, राज-कार्य को कैसे सुव्यवस्थित किया और राज्य-उपवन बिना इस ज्ञान-स्रोत की सिंचाई के कैसे हरा भरा रहा। इन्हीं कारणों से यह उत्कृष्ट ग्रन्थ तीन प्रकार की नीतियों से परिष्कृत किया गया, और मेरे साथ जो उपकार किये गये हैं उनके लिए इस पुस्तक के द्वारा कुछ कृतज्ञता प्रकट की गई है।

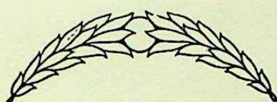
लोगों[१] की जानकारी के लिए कुछ हिन्दी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उनके उच्चारण की सुविधा के लिए मात्राएं लिखदी हैं। इससे अन्वेषी कष्ट न उठायेंगे और शुद्धोचारण में गड़बड़ी भी न होगी। अलिफ़, लाम और इसी प्रकार के अन्य वर्णों के नाम लिख कर भ्रम का मोर्चा घिस दिया है। कुछ को मनक़ूता (बिन्दु वाला) लिख कर स्पष्ट कर दिया है। समाकृति वर्णों को सामान्य रीति से बयान किया है। वे अक्षर जो केवल फ़ारसी भाषा के थे, फ़ारसी शब्द से आबद्ध करके न्यारे कर दिये, जैसे पदीद शब्द की बे, चमन की जीम, निगार की काफ़ और मुज्हदा की ज्हे। कभी उच्चार्यमाण अक्षर पर, तीन बिन्दु लगाकर भेद प्रगट कर दिया है। जो वर्ण फ़ारसी भाषा में नहीं हैं, उनको हिन्दी अक्षर कह कर सन्देह दूर कर दिया। ऐसे अक्षरों का अन्तर, जैसे रूए में इये और दस्त में ते है क्रमशः तहतानी और फ़ौक़ानी लिखकर प्रकट कर दिया है। अदब की बे का प्रयोग प्रायः स्पष्ट होता है, अतएव मैंने उसे केवल बे लिखा है। नून, वाव, याय तहतानी, और हे में से प्रत्येक वर्ण को, जो जहां पर जिह्वा से योंही स्पष्ट उच्चारित हुये हैं, बिना किसी बन्धन के लिखा है। नून, जो नाक के सहारे बोली जाती है—जैसे जां की नून—नून-इ-खफ़ी या नून-इ-पिनहां कह कर भिन्नता प्रकट करदी है। कुछ अक्षर ऐसे हैं, जो लिखे जाते हैं, पर बोले नहीं जाते—जैसे फ़रखुन्दा

---

१ यह पैरा केवल फ़ारसी भाषा-भाषियों के लिए उपयोगी है। मूल ग्रन्थ में प्रायः अनेक शब्दों को इस पैरे में बतलाए हुये नियमों से स्पष्ट किया गया है।
अनुवादक।

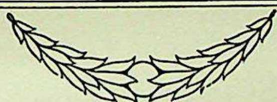
को हे—उनको मकतूबी बयान किया है। पेश और ज़ेर, जिनका भेद अप्रकट है, मभूल शब्द से आबद्ध करके उच्चारण स्पष्ट कर दिया है। अलिफ़ के पूर्व वर्ण में ज़बर अवश्य होता है और मख़फ़ी भी साकिन होता है, इस लिए उसे किसी मात्रा से आबद्ध नहीं किया है।





प्रथम ग्रन्थ

राजकीयशालाओं का वर्णन ।



प्रथम ग्रन्थ।

राजकीयशालाओं का वर्णन।

आईन[1] १

राजकीयशाला।

उच्च विचारशील और महत्वाकांक्षी वह व्यक्ति है, जो सृष्टि के सभी परमाणुओं को, बिना किसी को विशेषता दिये, ईश्वरीय शक्ति की विचित्रता के आविर्भाव का स्थान जाने, और तदनुसार ही अपना भीतरी और बाहरी आचरण बनाये तथा बुद्धिमानी से अपने और परायों का समुचित सम्मान करे। यदि उसको ये गुण प्राप्त न हों, तो उसके लिए आवश्यक है कि वह संसार के लड़ाई झगड़ों में न पड़े और शान्ति-पथ ग्रहण करे। यदि वह विरक्त हो तो निज को श्रेष्ठ गुणों से अलंकृत करे; और यदि गृहस्थों में से हो तो उसके प्रबन्ध में आसक्तों की तरह दत्तचित्त हो और निर्लिप्त-भाव से जीवन-निर्वाह करे।

प्रतिष्ठा, चाहे आध्यात्मिक हो अथवा लौकिक, छोटे-बड़े कार्यों को करने से नहीं रोकती; वरन् उनके करने को वह विश्वनिर्माता न्यायकारी की श्रेष्ठ उपासना समझती है[2]। यदि वह स्वयम् अपने सब काम न कर सके, तो उसको चाहिये कि तीव्र सूक्ष्म दृष्टि और यथार्थ अनुभव द्वारा एक दो ऐसे मनुष्यों को

१—मूल-ग्रन्थ में "आईने-मंज़िल आबादी" पाठ है, जिसका अर्थ राजकीय शालासमृद्धि का "आईन", होता है। पाठकों की सुविधा के लिए, ब्लाकमैन के (अनुवाद के) अनुसार आईनों का वर्गीकरण संख्या-क्रम से किया गया है, और "आईने-मंज़िल आबादी" का भावार्थ दो भिन्न शीर्षकों द्वारा प्रकट किया गया है।

२—अकबर इस वाक्य को बहुधा कहा करता था।

चुन ले, जो चतुर, बुद्धिमान, धार्मिक और साम्प्रदायिक एवं जातिगत मामलों में निष्पक्ष, हृदय-पारखी तथा उद्योगी हों, और उनकी निगरानी पर काम छोड़ दे।

जो शासक बड़े कार्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता, बुद्धिमान उसकी गणना राजाओं में नहीं करते। यद्यपि कुछ निष्पक्ष न्यायाधीश, सांसारिक माया से कीले हुये ऐसे शासक को, ऐसे काम करने पर, क्षम्य मानते हैं; क्योंकि अधिकतर अर्थ-लोलुप चाटुकार—जो धूर्तता से अपने को सज्जनों में शामिल कर लेते हैं—पद-भेद की बातें बनाते हैं,[१] और वाह्य आडम्बर के प्रेमी शासकों को (प्रमाद निद्रा में) सुला देते हैं; उनकी केवल यही आकांक्षा रहती है कि स्वयम् लेन-देन की दूकान सजालें और अपना घर भरलें। भाग्यवान शासक छोटे और बड़े मामलों में भेद नहीं मानते; वे ईश्वरानुमोदित सहायता से लोक परलोक का भार अपने साहस के कन्धे पर रखते हैं और निश्चिन्त और निर्लिप्त रहते हैं, जैसा कि हाल हमारे समय के बादशाह का है। वह अपनी ज्ञान विचक्षणता से शालाओं (कारखानों) की समृद्धि में—जो कि लोक रक्षा की पहली सीढ़ी है, और जिन पर अगले शासक[२] अपने बड़प्पन के कारण बहुत कम ध्यान देते थे—चित्त लगाता है, और प्रत्येक स्थान के लिए उपयुक्त नियम निर्धारित करता है। और अपने इस कर्तव्य-पालन को अद्वैत न्यायकारी के कृपा-भाजन होने का साधन समझता है।

इस अद्भुत कार्य की सफलता दो बातों पर निर्भर है:—प्रथम, ज्ञान और सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा, लोकोपकारी राज-आज्ञाओं को पवित्र हृदय मन्दिर से तैयार करके अस्तित्व-सभा में लाना; दूसरे, सत्प्रकृति और प्रयत्नशील व्यक्तियों को उन्हें सौंपकर उनके कार्यान्वित होने का ध्यान रखना।

यद्यपि शालाओं के बहुत से कर्मचारी सेना-विभाग में वेतन पाते हैं

१—अर्थात् कहते हैं कि यह कार्य छोटा है, राजा के करने योग्य नहीं।

२—हिन्दुओं के इस समय तक के प्राप्त इतिहास में, जिन राजाओं ने शाला-विभाग पर अत्यधिक ध्यान दिया और उस को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया, उनमें सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व उसके शासन-विधान "कौटिल्य का अर्थ शास्त्र" को देखकर आश्चर्य होता है। मेगस्थनीज़ के साक्ष्य से भी इस बात की पुष्टि होती है। इतिहासकार विन्सेण्ट-स्मिथ ने मौर्य-शासन की प्रशंसा करते हुये उसके सुसंगठित होने का सारा श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उसके मंत्री चाणक्य को ही दिया है।

तथापि सन् ३९ इलाही[1] में इस (शाला) विभाग का व्यय तीस करोड़ इक्यानवे लाख, छियासी हज़ार सात सौ पञ्चानवे दाम[2] था। इस राज्य का व्यय उसकी आय के अनुसार नित्य प्रति बढ़ता जाता है। सौ से अधिक कारख़ाने हैं, और उनमें से हर एक कार्यालय बड़े नगर के सदृश तो क्या, एक देश के समान है। सम्राट् के निरन्तर ध्यान देने से उनमें बढ़िया सामान रहता है और सदा बढ़ता रहता है। सौभाग्य और ग्रहों के प्रताप से जितनी जितनी सम्पत्ति बढ़ती जाती है, वात्सल्य और दयालुता की भी उतनी ही उतनी वृद्धि होती जाती है।

कुछ व्यवस्थाओं को भावी सत्यान्वेषियों के लिए, उपहार के तौर पर, निर्मित करता हूँ और इस प्रकार दूसरों में अपने ज्ञान और कर्म का दीपक जलाता हूँ। कुछ व्यवस्थाएं जो सामान्य प्रकार की हैं और विधान के तीनों विषयों[3] में सम्मिलित होने के योग्य हैं—मैंने उनका उल्लेख शालाओं के वर्णन में ही किया है।

आईन २।

राज कोष।

प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान जानता है, कि समय की आपदाओं का हटाना और जनता के कष्टों का दूर करना, ईश्वर की सर्व श्रेष्ठ उपासना और सर्वोत्तम आराधना[4] है। ये दोनों बातें कृषी की उन्नति, राज-कार्यालयों की परिपूर्णता,

१—अकबर ने जो सन् इलाही (सौर-सम्वत्) चलाया था उसका आरम्भ १५ फ़रवरी सन् १५५६ ई० से होता है। इसके अनुसार सन् ३९ इलाही में ईसवी सन् १५९५ था।

२—अकबरी रुपया ४० दाम में चलता था। इस हिसाब से ३०,९१,८६,७९५ दाम, ७७२९६६९ 7/8 रुपये के बराबर होते हैं। आजकल के हिसाब से अकबरी रुपया=२ शिलिङ्ग ३ पेंस अंगरेज़ी=१॥।-) हिन्दुस्तानी के होता है। विनिमय की कमी बेशी के कारण रुपए की दर में भी कमी बेशी होती रहती है।

३—सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन विषयों में विभाजित है, यथा १—शालाओं का वर्णन, २—सैन्य विभाग का वर्णन और ३—साम्राज्यशासन का वर्णन।

४—श्रीमद्भागवत में भी कहा है कि सज्जन पुरुष संसार के कष्टों को दूर करने के लिए स्वयं कष्ट सहते हैं, अर्थात् स्वयं दुःख उठाकर लोकहित का साधन करते हैं। क्योंकि यह विश्वात्मा की सर्वोत्कृष्ट आराधना है। यथा—

तप्यन्ते लोक तापेन, प्रायशः साधवोजनाः।
परमाराधनं तद्धिः, पुरुषस्याखिलात्मनः॥

(श्रीमद्भागवत स्क० ८)

राज्य के प्रयत्नवान महारथियों की तत्परता और सेना की शुभ कार्यपरायणता पर निर्भर हैं। और उपरोक्त चारों बातें राजा के यथार्थ-विचार, जनता के पालन-पोषण, उत्तम धन के संचय और अन्तःकरण के आज्ञानुसार व्यय करने पर अवलम्बित हैं। इससे नागरिकों और ग्रामीणों के लिए जो बातें होनी चाहिये वे प्राप्त होती हैं, और उक्त दोनों समुदायों की सभ्यता और संस्कृति की पूर्ति होती है। अतएव न्यायी शासकों के लिए अनिवार्य है कि पहिली चीज़ों का संग्रह करें और पिछले समुदायों की रक्षा करें। कुछ लोग, जिस प्रकार विरक्त त्यागियों के लिए धन संचय करना एवं उसकी अधिकता की चिन्ता करना घृणित मानते हैं, उसी प्रकार वे, उनके विरुद्ध गृहस्थों के लिए उसका एकत्र करना आवश्यक समझते हैं। पर यह प्रलाप केवल वाह्यदर्शक अदूरदर्शियों का है, क्योंकि (विरक्त और गृहस्थ) दोनों ही, समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दौड़-धूप करते हैं। दीन सन्तोषी, अपने भोजन वस्त्र के लिए इतनी पूंजी चाहते हैं, जिससे उनको ज्ञान-चिन्तन में बल मिल सके और शीतोष्ण से बचाव हो सके। दूसरे समुदाय का अलम् इस बात पर होता है कि कोष को धन से भरे, ऐश्वर्य की सामग्री एकत्र करे तथा अन्य कार्य सोचे।

उपरोक्त विचार से, जिस समय सम्राट् के ज्ञान चक्षु खुले और उसने गुरुतर कार्यों के सुप्रबन्ध में कुछ ध्यान देना आरम्भ किया, तो ख़्वाजासरा[१] एतमाद खां को परामर्श के योग्य समझ कर अपने हृदय का भेद बतलाया। उसके अनुभव-द्वारा सम्राट् की कुछ पवित्र हार्दिक इच्छा कार्य रूप में परिणित हुई, फिर उसमें क्रमशः उन्नति होती गई, और उसके उत्तम साधन उपस्थित होते गये। हर प्रकार की भूमि के कर की जांच की गई, और सत्प्रकृति अनुभवी व्यक्तियों द्वारा वह पड़ताल सफलता पूर्वक समाप्त हुई।

१—ख़्वाजासरा, रनिवास के प्रधान नपुंसक दास को कहते हैं। एतमाद शब्द का अर्थ विश्वास और भरोसा है। अगले समय में, रनिवासों में ऐसे दासों के रखने का चलन था। एतमाद ख़ां का असली नाम फूलमलिक था। सलीम शाह (१५४५ — १५५३) की सेवा के उपलक्ष में उसको मुहम्मद ख़ां कि उपाधि मिली थी। उसके बाद वह अकबर की सुश्रूषा में लगा। जब अकबर के पालक-पिता शमशुद्दीन मुहम्मद अतगा ख़ां का देहान्त होगया, तो उसने (अकबर ने) अर्थ-विभाग पर ध्यान देना आरम्भ किया। जब उसे मालूम हुआ कि माल का मोहकमा चोर-घर बन गया है, तो उसने फूल मलिक को उसकी निगरानी के लिए नियत किया और एतमाद ख़ां की पदवी प्रदान की। इसके विशेष विवरण के लिए द्वितीय ग्रन्थ में मंसबदारों की सूची में नं० ११९ देखिए।

ऐसी मार्मिकता के साथ—वह भूमि जिसमें अपने और पराये का अन्तर नहीं था—उसने ख़ालसा की ज़मीन से जागीर की ज़मीन पृथक् करदी। एक एक करोड़ दाम की मालगुज़ारी के लिए उसने एक एक परिश्रमी सत्यनिष्ठ अधिकारी नियत किया, और सहायता के लिए निर्लोभी वितक्ची (मोहर्रिर) साथ कर दिया तथा हर एक के लिए एक ईमानदार ख़ज़ांची मुक़र्रर किया। दयालुता और कृषकों की रक्षा के ख़्याल से, सम्राट् ने अधिकारियों को आज्ञा दी कि वे किसानों को ज़रे-ख़ालिस (पूरी तौल के सिक्के) अदा करने के लिए वाध्य न करें और जो कुछ भी वे दें उसके लिए मोहर लगा कर रसीद दे दें। इस उत्तम व्यवस्था द्वारा उसने अधिकारियों के भ्रम का मोरचा घिस दिया, और प्रजा ने नाना प्रकार के अत्याचारों से छुटकारा पाया। सम्पदा बढ़ गई और राज्य समृद्ध हो गया। जब माल (अर्थ) का प्रधान सोता साफ़ हो गया तो एक ईमानदार और परिश्रमी व्यक्ति प्रधान कोषाध्यक्ष के पद के लिये चुना गया, और एक दारोग़ा तथा एक मुहर्रिर उसकी सहायता के लिए नियत किये गये। दूरदर्शिता कार्य रूप में परिणित हुई और कार्य-संचालन के लिए नियम निर्धारित हुए। जैसे, जब प्रत्येक प्रान्तीय कोषाध्यक्ष के पास दो लाख दाम (५००० रु०) जमा हो जांय, तो राज दरबार में लाकर उस (प्रधान कोषाध्यक्ष) को सौंप दें, साथ ही धन के व्योरे की सूची भी साथ लावें। **पेशकश**[१] जमा करने के लिए एक अलग ख़ज़ांची नियुक्त किया गया। लावारिसी माल (उत्तराधिकारी रहित-सम्पत्ति) के लिए एक और कोषाधीश नियत किया। **नज़्र** में आये हुए धन के लिए भी एक निपुण व्यक्ति रक्खा गया। तुलादान एवं दान पुण्य के रुपये देने के लिए एक और शुभ चिन्तक नियुक्त किया। अनेक प्रकार के व्यय के लिए उत्तम नियम बना दिये, और सत्यशील कार्याध्यक्ष, योग्य दारोग़े, ठीक लिखने वाले वितक्ची पृथक पृथक नियत किये। वार्षिक-व्यय का रुपया, जमा का

१—पेशकश का तात्पर्य उस नियत भेंट के धन से है, जो राज्य की अधीनस्थ जागीरें आदि, सम्राट् को अदा करती थीं। भारतवर्ष में इसी तथा ऐसे ही और अनेक नामों से बहुत दिनों तक कर वसूल किया जाता रहा है, यथाः—राज हक़, ज़ोर तलबी, सार्वदेश मुखी, खिचड़ी, कुदनी, घास दाना, पेशकश, और ख़िराज आदि। आजकल इनमें से कई राजकर बन्द हैं। देशी रियासतें जो कर भारत सरकार को देती हैं वह ख़िराज कहलाता है। पेशकश के नाम से अब भी कई राज्यों में कर लिया जाता है। जूनागढ़ राज्य को कई अधीनस्थ छोटे राज्य ज़ोर तलबी नामक कर देते हैं। गुजरात में एक दो राज्यों से अब भी खिचड़ी के नाम से कर लिया जाता है।

ख़ज़ांची (प्रधान कोषाध्यक्ष) प्रत्येक ख़र्च के ख़ज़ांची को देता है और ठीक लिखा पढ़ी करके रसीदें आदि ले लेता है। हिसाब लिखने का तरीक़ा आसान होगया और राज्योद्यान हरा भरा हो गया। थोड़े ही समय में ख़ज़ाने भर गये, सेनाएं बढ़ गईं और कुटिल राजद्रोही आज्ञा-पथ के अनुगामी हो गये।

ईरान और तूरान में केवल एक ख़ज़ांची रहता है, इस से हिसाब-किताब में बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। परन्तु यहां माल और कार्य की अधिकता के कारण उपार्जित-द्रव्य के निरीक्षण के लिए बारह कोषाध्यक्ष नियत किये गये हैं; जिनमें से नौ तरह तरह की नगदी के लिए हैं, और तीन मणि मुक्ता, सोना और जड़ाऊ सामान जमा करते हैं। कोषों का परिमाण इससे कहीं अधिक है कि इस वृत्तान्त के साथ उसका भी उल्लेख किया जा सके। सम्राट्, अपनी गुण-ग्राहकता से, कार्यों के उपलक्ष में लोगों पर कृपा करता अथवा धिक्कारता है; इस लिए काम-काज में चहल पहल रहती है।

हर कारख़ाने के लिए एक अलाहिदा ख़ज़ांची नियत किया गया, और उनकी संख्या सौ के लगभग हो गई है। सावधान कार्य-अभिज्ञ, दिन दिन, मास मास, फ़स्ल फ़स्ल और साल साल के लेन-देन का हिसाब दुरुस्त रखते हैं; जिस से संसार का बाज़ार गर्म रहता है।

पुनः सम्राट् की आज्ञा से, सौभाग्यवान सत्यशील कर्मचारियों में से एक व्यक्ति, दरबार-आम में, सदा रुपये और मोहरें तैयार रखता है, जिस से बहुधा अभिलाषी प्रतीक्षा का बिना कष्ट उठाये सफल मनोरथ हो जाते हैं। एक करोड़ दाम राजभवन के आंगन में प्रस्तुत रहता है। एक एक हज़ार दाम टाट की थैलियों में भरे जाते हैं; ऐसी हर थैली को **सहसा** कहते हैं। इन थैलियों का ढेर **गंज** कहलाता है। इसके अतिरिक्त सम्राट् बहुतसा रुपया अपने ख़ासों[१] को सौंप देता है, जो समय कुसमय के लिए तैयार रहता है, और कुछ लोग **बहले** (थैली) में रखकर हाथ में लिए रहते हैं, इस कारण प्रचलित भाषा में उसको **ख़र्जे-बहला** कहते हैं।

ये समस्त कृपाएं, सम्राट् की अद्भुत उदारता और हर प्रकार से अपनी प्रजा को पालन करने के कारण से हैं। परमात्मा करे, वह हज़ार वर्ष जिये।

---

१ प्रतिष्ठा प्राप्त सम्राट् के ख़ास आदमी।

आईन ३।

रत्नकोष।

वह कितना है और कैसा है—यदि मैं यह वर्णन करने लगूं, तो बहुत समय लगेगा। अतः उसके सम्बन्ध में थोड़ा सा हाल लिखकर ज्ञान का बाज़ार सजाता हूँ और हर खलिहान से एक बाली उठाता हूँ।

सम्राट् ने इस विभाग के लिए एक बुद्धिमान, सन्तोषी और कार्यपरायण कोषाध्यक्ष नियत किया। और उसकी सहायता के लिए एक सद्प्रकृति एवं कार्यपटु बितक्ची, एक भाग्यवान और परिश्रमी दारोग़ा और कई चतुर जौहरी मुक़र्रर किये। उसने इन्हीं चार स्तम्भों के आधार पर इस बड़े कारख़ाने की बुनियाद रखी। इन्होंने हर कोटि के रत्नों को श्रेणी-बद्ध करके सन्देह का मल साफ़ कर दिया।

लाल—जिस लाल का मूल्य १००० मोहर से कम नहीं होता पहली श्रेणी में रखा जाता है; ९९९ से ५०० मोहर तक का दूसरी में; ४९९ से ३०० तक का तीसरी में; २९९ से २०० तक का चौथी में; १९९ से १०० तक का पाँचवीं में; ९९ से ६० तक का छठी में; ५९ से ४० तक का सातवीं में; ३९ से ३० तक का आठवीं में; २९ से १० तक का नवीं में; ९$\frac{३}{४}$ से ५ तक का दसवीं में; ४$\frac{३}{४}$ से १ तक का ग्यारहवीं में; $\frac{३}{४}$ मोहर से $\frac{१}{४}$ रुपए तक का बारहवीं में। लाल के इस से अधिक दर्जे नहीं रखे हैं।

हीरा[१]—पन्ना और लाल-नीले याक़ूत निम्नलिखित रीति से क्रमान्वित होते हैं:— पहली श्रेणी—३० मोहर से अधिक मूल्यवान; दूसरी श्रेणी—२९$\frac{३}{४}$ मोहर से १५ मोहर तक; तीसरी श्रेणी—१४$\frac{३}{४}$ से १२ तक; चौथी श्रेणी—११$\frac{३}{४}$

१—कोहनूर—अकबर के रत्न-कोष में जगत् प्रसिद्ध कोहनूर हीरे का साफ़ साफ़ पता नहीं चलता। यह उस समय किसी और नाम से पुकारा जाता होगा। इसके इतिहास के सम्बन्ध में लोगों के विभिन्न मत हैं। कोई कोई सज्जन तो इसे मूसली-पट्टम में गोदावरी के तट पर मिला हुआ बतलाते हैं और कहते हैं कि यह अंगराज कर्ण के पास था। किसी किसी का कहना है कि श्रीकृष्ण का कौस्तुभ मणि यही है और चलते चलते उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के पास पहुँचा। ('विश्व कोश' तथा शब्द सागर,) जो भी हो, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में ऐसे विलक्षण मणियों का उल्लेख मिलता है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें से कोहनूर का किस से सम्बन्ध है।

कोहनूर का पता बाबर के समय से चलता है, उसने अपने आत्म-चरित में

से १० मोहर तक; पाँचवीं श्रेणी—६$\frac{3}{4}$ से ७ मोहर तक; छठी श्रेणी—६$\frac{3}{4}$ से ५ मोहर तक; सातवीं श्रेणी—४$\frac{3}{4}$ से ३ मोहर तक; आठवीं श्रेणी—२$\frac{3}{4}$ से २ मोहर तक; नवीं श्रेणी—१$\frac{3}{4}$ से १ मोहर तक; दसवीं श्रेणी—८$\frac{3}{4}$ रुपए से ५ रुपए तक; ग्यारहवीं श्रेणी—४$\frac{3}{4}$ रुपए से २ रुपए तक; बारहवीं श्रेणी—१$\frac{3}{4}$ रुपए से $\frac{1}{4}$ रुपए तक।

इसका दो स्थानों पर उल्लेख किया है। एक तो, जब हुमायूं बीमार पड़ा था तब ख़्वाजा ख़लीफ़ा तथा उसके अन्य मित्रों ने उस (हुमायूं) के स्वास्थ्य लाभ के लिए बाबर से कहा था कि अपने पास की संसार की सबसे अमूल्य वस्तु उस हीरे को—जोकि उसको इब्राहीम की पराजय के बाद मिला था और जिसको उसने हुमायूं को देदिया था,—दान करदे। (Memoirs of Zahiruddin Mohammad Baber, 1925, Vol II Appendix D, Page 442). दूसरे ४ मई १५२६ ई० के घटना-क्रम में बाबर लिखता है:—"बिकरमाजीत—एक हिन्दू राजा—जोकि ग्वालियर का राजा था और सौ वर्ष से भी अधिक पहले से उस देश पर (उसका बंश) शासन करता था। ....जिस युद्ध में इब्राहीम पराजित किया गया था उसी में बिकरमाजीत भी जहन्नुम को पहुँचाया गया था। बिकरमाजीत का परिवार तथा उसके वंश के मुख्य मुख्य मनुष्य उस समय आगरे में थे। जब हुमायूं पहुँचा तो बिक्रमाजीत के आदमियों ने भागने की चेष्टा की, किन्तु उन दलों ने जिनको कि हुमायूं ने उक्त परिवार की चौकसी के लिए तैनात किया था,—गिरफ़्तार कर लिया और हिरासत में ले लिया। हुमायूं ने उनको लूटने खसोटने नहीं दिया। उन्होंने स्वेच्छा से हुमायूं को एक पेशकश भेंट की। जिसमें जवाहरात और बहुमूल्य पत्थर थे। उनमें वह प्रसिद्ध हीरा भी था जो सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा प्राप्त किया गया था। यह इतना मूल्यवान है कि एक रत्न-पारखी ने उसका मूल्य संसार भर का आधे दिन का व्यय लगाया। यह तोल में लगभग ८ मिसक़ाल है। जब मैं आया तो हुमायूं ने मुझे उसको पेशकश के तौर पर भेंट किया, किन्तु मैंने उसको पुरस्कार के रूप में देदिया।" (Memoirs of Baber, Vol II. P. 193).

अब प्रश्न है कि ग्वालियर राज विक्रमादित्य को अलाउद्दीन (१२९६-१३१६) से कैसे मिला? "राजपूताना का इतिहास" (जिल्द पहली पृष्ठ २३५, ले० म. म. राय बहादुर पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा) देखने से मालूम होता है:—"दिल्ली की तंवरों के वंशजों की दूसरी शाखा के तंवर वीरसिंह ने विक्रमी संवत् १४३२ (१३७५ ई०) के आस पास दिल्ली के सुल्तान फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ की सेवा में रहकर ग्वालियर पर अपना अधिकार जमाया, और अनुमान १८० वर्ष बाद मानसिंह के पुत्र विक्रमादित्य के समय वह क़िला पीछे मुसलमानों ने ले लिया।" यद्यपि कोई प्रमाण मौजूद नहीं है तथापि अनुमान से मालूम होता है कि तंवर वीरसिंह अथवा उनके और किसी पूर्वज या उनकी संतति ने अपनी सेवा के उपलक्ष में दिल्लीश्वर से उसे पाया होगा अथवा और

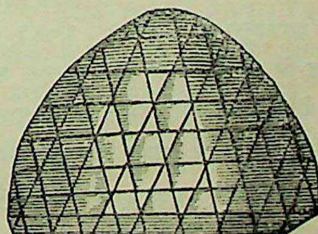
मोती—ये बहुमूल्य रत्न कांति की दृष्टि से १६ श्रेणियों में विभाजित हैं और परख की लड़ियों में पिरोये गये हैं। ३० मोहर तथा उससे अधिक मूल्य वाले, बीस बीस मोती सूत में पिरोकर पहली लड़ी बनाई गई है; २९$\frac{3}{4}$ मो० से १५

किसी उपाय से तुग़लक़ वंश से प्राप्त किया होगा। तुग़लक़ वंश के शासकों को अलाउद्दीन से मिला होगा।

अब विचारणीय विषय यह है कि अलाउद्दीन को मालवा के किस हिन्दू राजा से कोहनूर मिला। मालवा में भी अला-उद्दीन (१०५७ ई०) नामक एक शासक हुआ है। परन्तु यहाँ पर उससे अभिप्राय नहीं है। यहाँ पर तो अलाउद्दीन ख़िलजी से तात्पर्य है (Erskine's Memoirs of Sultan Babur, 1918, Vol. 2 P. 191)। ख़ुसरो अलाउद्दीन का समकालीन था। वह प्रसिद्ध फ़ारसी लेखक और कवि था। उसने अपने ग्रंथ "आशिक़ा" में लिखा है कि जब सुल्तान अलाउद्दीन के वज़ीर ऐनुलमुल्क (फूलमलिक काफ़ूर) ने मालवा के राजा कोका या महलक देव को पराजित किया था, तो अलाउद्दीन ने समाचार पाने पर दिल्ली में सात दिन तक रोशनी करवाई थी (History of India by Elliot and Dowson, Vol. 3 P. 550)। 'आईने-अकबरी' के तीसरे ग्रंथ के अनुसार मालवा के शासकों में उस समय हरनन्द था। कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया जिल्द ३ पृ० १११ के अनुसार इस हरनन्द का ही नाम मुसलमान ऐतिहासिकों ने कोका लिखा है। अनुमान होता है कि इसी हरनन्द से ऐनुलमुल्क ने कोहनूर हीरा लिया होगा।

जो कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि एक विलक्षण हीरा सन् १३०४ ई० के पहले से १५५५ ई० तक मालवा, ग्वालियर और दिल्ली के शासकों के पास रहा है। अकबर और जहाँगीर के समय में उसका पता नहीं चलता। "शाहजहाँ-नामा" के लेखक इनायत ख़ाँ के अनुसार तख़्तताऊस में एक हीरा १४ लाख रुपए का लगा था। पर यह कोहनूर नहीं मालूम होता। "ए फ़ार्गाटेन इम्पायर" (A forgotten Empire by Sewell P. 399) के अनुसार कोहनूर बीजापुर के अली आदिल शाह ने कृष्णा नदी के तट पर कोलूर में पाया था। इतिहासकार फ़ैरिया सूज़ा के अनुसार तालीकोट में १५६५ ई० में राम राजा के मारे जाने के बाद विजयनगर की लूट में एक हीरा अली आदिल शाह को मिला था, जो साधारण अंडे के बराबर था। राम राजा उसे अपने घोड़े के मुंह के श्रृङ्गार में लगाता था। १६५६ ई० में मुग़ल सेनापति मीर जुमला उस तरफ़ साम्राज्य स्थापित कर रहा था। उसने उसे पाकर शाहजहाँ को भेंट के रूप में दिया था। परन्तु 'शब्दसागर' (पृ० ६५१) के अनुसार "सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में यह हीरा ग्वालियर के एक राजा ने गोलकुंडा के एक बादशाह को दिया था।" १६६५ ई० में टैवर-नियर ने इसे सम्राट औरङ्गज़ेब के यहाँ देखा था और उसके सम्बन्ध में लिखा है:—"यह

कोहनूर



जैसा टैवरनियर ने देखा था।

हीरा मुग़ल महान् के अधिकार में है। उसने मुझे अन्य हीरों के साथ इसे भी

मोहर तक दूसरी लड़ी में; १४$\frac{३}{४}$ से १२ मो० तक तीसरी में; ११$\frac{३}{४}$ से १० मो० तक चौथी में; ६$\frac{३}{४}$ से ७ मो० तक पांचवीं में; ६$\frac{३}{४}$ से ५ मो० तक छठी में; ४$\frac{३}{४}$ से ३ मो० तक सातवीं में; २$\frac{३}{४}$ से २ मो० तक आठवीं में; १$\frac{३}{४}$ मो० से १ मो० तक नवीं में; १ मो० से कम ५ रु० तक दसवीं में; ५ रु० से कम २ रु० तक ग्यारहवीं में; २ रु० से कम १$\frac{१}{४}$ रु० तक बारहवीं में; १$\frac{१}{४}$ रु० से कम ३० दाम तक तेरहवीं में; ३० दाम से कम

दिखलाने की कृपा की।······मुझे इसे तौलने की भी आज्ञा मिली। मैंने निश्चय किया कि यह ३७६$\frac{१}{२}$ रत्ती या २१६$\frac{६}{१६}$ कैरट का है। जब यह कटा नहीं था तो मेरे पूर्व कथनानुसार ६०७ रत्ती या ७१३$\frac{५}{८}$ कैरट का था। यह पत्थर वैसी आकृति का है जैसी कि अंडे को बीच से काटने पर होजाती है" (Travels In India by Tavernier 1925 Vol. 11, P. 97)। २७६$\frac{६}{१६}$ फ़्लोरेनटाइन कैरट २६८$\frac{१६}{५०}$ इंग्लिश कैरट के बराबर होते हैं। हारटेनज़ियो बोर्जियो (Hortensio Borgio) नामक एक विनीशियन के बुरी तरह से खरादने के कारण उसकी तौल में कमी होगई।

१७३६ ई० में औरंगज़ेब के दुर्बल वंशज मुहम्मद शाह से उसे नादिर शाह फ़ारस ले गया। उसीने इसका नाम कोहनूर रक्खा। १७४७ ई० में नादिर शाह के क़त्लात में मारे जाने पर कोहनूर उसके पौत्र शाहरुख़ को मिला। १७५१ ई० में काबुल में दुर्रानी वंश के संस्थापक अहमद शाह के पास आया। उससे उसके पुत्र तैमूर को, जो काबुल में आकर रहा था, मिला। फिर उसके बाद १७६३ ई० में उसके पुत्र शाहज़मां और फिर उसके तीसरे भाई सुल्तान शुजा को मिला। शाह शुजा को काबुल की गद्दी पर बैठने और मुहम्मद के गद्दी से उतारे जाने तथा क़ैद किये जाने के बाद १८०६ में इलफिंस्टन ने उसे शुजा को कंकण में पहने हुये देखा था। उसने लिखा है कि कोहनूर उसी शक्ल का था, जैसा कि टैवरनियर का लेख है। (Account of the Kingdom of Kabul, Ed. 1907, Vol. II, P. 325, note.) अन्त में शुजा को दोस्त मुहम्मद ने गद्दी से उतार दिया। शाहशुजा भाग कर काश्मीर पहुँचा, जहां के शासक अता मुहम्मद ने उसे क़ैद कर लिया।

१८१२ में शाह शुजा और ख़ान ज़मां के परिवार लाहोर पहुँचे। पंजाब के शासक रणजीत सिंह से शुजा की बेगम ने प्रार्थना की—"यदि आप मेरे पति को छुड़ादें तो मैं आपको कोहनूर हीरा दे दूंगी।" बन्धन से मुक्त होने पर शुजा बातें बनाने लगा। अन्त में एक दूसरे ने पगड़ी बदली। रणजीत सिंह ने उसके जीवन-निर्वाह के लिए पंजाब में जागीर नियत करदी और उसने उसे कोहनूर देदिया।

रणजीत सिंह बहुधा राज कार्यों में उसे अपनी भुजा पर बांधे रहते थे। अपनी मृत्यु के समय रणजीत सिंह ने उसे जगन्नाथ धाम भेजवाने की इच्छा प्रकट की, उस समय यह १० लाख पौण्ड का था। (The Punjab by Steinbach, 1846, P. 16) किन्तु अन्त में वह कहीं नहीं भेजा जा सका। १८३६ ई० में उनकी मृत्यु के पश्चात् यह रत्नागार में रख दिया गया। फिर रणजीत सिंह की विधवा महिषी

२० दाम तक चौदहवीं में ; २० से कम १० दाम तक पन्दरहवीं में ; १० से कम ५ दाम तक सोलहवीं में। प्रत्येक मोती अपनी श्रेणी के गणनानुसार उतने ही धागों में पिरोया गया है ; जैसे सोलहवीं श्रेणी के मोती सोलह धागों में पिरोये गये हैं। हर लड़ी के धागों के सिरे पर ख़ास शहंशाही मोहर होती है। इस कारण,

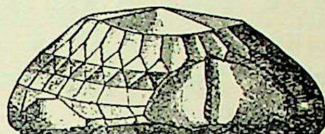
---

झिन्दन उसको दिलीपसिंह की भुजा पर बांधने लगीं। (विश्वकोश)

जब पंजाब पर १८४६ ई० में ब्रिटिश-सरकार का अधिकार हुआ, और दिलीप सिंह को ५० हज़ार पौण्ड वार्षिक पेन्शन देकर पंजाब के बाहर रहने की आज्ञा दी गई तथा सिक्खों की जागीरें ज़ब्त करके उनकी पेन्शनें नियत की गईं, उसी समय पंजाब के शासन प्रबन्ध के लिए एक बोर्ड बनाया गया था। लार्ड डलहौसी ने उसका प्रेसीडेण्ट लार्ड लारेन्स को बनाया। तभी यह हीरा लार्ड लारेन्स के पास आया। वे उसको एक टीन के बक्स में बन्द करके भूल गये। जब उनसे मांगा गया तब २६ मार्च १८४६ ई० को इंग्लैण्ड भेजा गया और ३ जून १८४६ ई० को वह वहाँ पहुँचा।

१८५१ ई० में हाइड-पार्क की प्रदर्शिनी में वह प्रदर्शित किया गया। उस समय उसका वज़न १८६$\frac{१}{१६}$ कैरट था और उसका मूल्य १४ लाख पौण्ड निर्धारित हुआ था। १८५२ ई० में क्विन विक्टोरिया की इच्छा से अधिक आब लाने के लिए इसके तराशने का काम मेसर्स गैरड्‌स को सौंपा गया। उन्होंने ऐम्स्टर्डम के वूर सेंजर नामक हीरा तराश से ३८ दिन तक इसे तरशवाया। इसमें उसके तीन टुकड़े होगये। बड़े टुकड़े को गुलाब जैसा बनाने के लिए उसे फिर तराशा गया। (विश्व कोश)। इसमें ८००० पौण्ड व्यय हुए। घटते घटते अब १०६$\frac{१}{१६}$ कैरट का रह गया है और उसकी आकृति इस प्रकार की

कोहनूर



वर्तमान रूप।

है। आज कल कोहनूर टावर आफ़ लण्डन के स्टेट-ज्वेलरी रूम में, साम्राज्ञी मेरी के ताज में जड़ा हुआ, रक्खा है।

कितने ही ऐतिहासकों के मत से यह हीरा (जो अब इंग्लैण्ड में है) बाबर वाला हीरा नहीं है, वरन् मीर जुमला वाला है, जिस पर कटने के निशान लोगों ने बराबर देखे हैं, और उनका उल्लेख अपने ग्रंथो में किया है। उनके अनुसार १६५६ ई० में वह ६०० रत्ती या ७८७$\frac{१}{२}$ कैरट का था। टैवर-नियर ने १६६५ ई० में इसे ३१६$\frac{१}{२}$ रत्ती या २७१$\frac{९}{१६}$ फ्लोरैन्टाइन कैरट या २६८$\frac{१९}{५०}$ इंग्लिश कैरट का देखा था। किन्तु बाबर का हीरा ८ मिस्क़ाल या ३२० रत्ती या १८६$\frac{९}{१६}$ कैरट का था। मि० बाल के अनुसार टैवरनियर की रत्ती २·६६ ट्राय ग्रेन के बराबर थी और बाबर की १·८४२ ग्रेन की। मि० बाल (Travels in India, translated by V. Ball, 1925, Vol II, P. 338-339) के अनुमानानुसार बाबर का हीरा उस समय शाहजहां के अधिकार में रहा होगा, जब कि टैवरनियर ने औरंगज़ेब के जवाहरात देखे थे। जब शाहजहां मर गया तब वह उसके अधिकार में आगया होगा।

प्रत्येक मोती बदल जाने के गड़बड़ से बच जाता है। इसके अतिरिक्त हर मोती में एक विवरण लगाकर भ्रम का मल साफ़ कर दिया गया है।

दैनिक और मासिक वेतन पर काम करने वालों के अतिरिक्त, दूसरे

नादिरशाह उसे दूसरे जवाहरात के साथ फ़ारस लेगया होगा। यह हीरा अब तक फ़ारस के बादशाह के पास है। यह तौल में भी बाबर के हीरे के बराबर अर्थात् १८६ कैरट का है। इसका नाम 'दरियाय-नूर' है।

कोहनूर भी जब इंग्लैण्ड गया था तो $१८६\frac{१}{६}$ कैरट का था। बाल के मत से टैवरनियर के समय से १८५० ई० तक लगभग $८२\frac{१२७}{४००}$ कैरट ($२६८\frac{१९}{५०}$—$१८६\frac{१}{१६}$) की जो उसमें कमी हो गई है उसका कारण उसका विभिन्न शासकों के पास जाना तथा उनकी आवश्यकता के अनुसार उसका तराशा जाना है। यह कमी शाहरुख़, शाह शुजा या शाह ज़मां के समय में हुई है (Travels in India, Translated by Ball, Vol. II, P. 345)।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopædia Britannica, 1929, Ed. 14, Vol. 13, P. 474] में लिखा है:—"कोहे-नूर—एक प्रसिद्ध हीरा, जिसके इतिहास का पता निश्चय पूर्वक चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ से लगाया जा सकता है।" इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि यह मीर जुमला से दो ढाई सौ वर्ष पूर्व अर्थात् मालवा के हिन्दू शासक के समय का है इसी आईन के अन्तिम पैरे में $९\frac{१}{२}$ टांक ४ रत्ती ($९२२\frac{१}{२}$ रत्ती) तक के हीरों का उल्लेख हुआ है। तोल के विचार से अकबर के हीरे $९२२\frac{१}{२}$ रत्ती तक के थे; किन्तु औरङ्गज़ेब का हीरा कटने के पहले केवल ९०० रत्ती का था। संभव है शाहजहां ने अधिक आब लाने के लिए किसी उत्तम कारीगर से अकबरी हीरे को ही कटवाया हो और टैवरनियर ने इसी को ९०० रत्ती का लिखा हो। 'विश्व कोश' के अनुसार रणजीतसिंह का हीरा ही बाबर का हीरा है।

बाल ने "ट्रैविल्स-इन-इण्डिया" के भाषान्तर में कई स्थानों पर टैवरनियर की इस बात की सख़्त शिकायत की है कि उन्होंने रत्ती को कैरट और कैरट को रत्ती लिख दिया है और उनकी तौल में भी सन्देह है। साथ ही शाहजहाँ को बन्दी गृह में यह हीरा कैसे मिला होगा? यह बात भी समझ में नहीं आती। इतना ही नहीं बाल ने उनकी भूलों को जगह जगह पर प्रकट किया है। जहाँ तक टैवरनियर की नाप जोख का सम्बन्ध है वह तो बाल के शब्दों से ही विश्वसनीय नहीं है। अब रही बाल के ऐतिहासिक ज्ञान की बात—इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि उन्होंने दोस्त मुहम्मद को शुजा का भाई बतलाया है (Travels in India, Appendix 2), जो कि बिल्कुल ग़लत है। वास्तव में मुहम्मद बारकज़ाई ख़ानदान का था और शाह शुजा दुर्रानी बंश का (Oxford History of India by Vincent Smith, 1923, P. 675.)। ऐसी अवस्था में कोहनूर की ऐतिहासिक शृङ्खला तथा उसके परिमाण का ठीक निश्चय होना कठिन है।

जो कुछ भी हो इस विरोधाभासात्मक सामग्री की उपस्थिति में तथा प्रमाणों की व्यवस्थित शृङ्खला न मिलने की अवस्था में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि शाह फ़ारस का हीरा ही बाबर का हीरा है और विक्रमादित्य का हीरा कोहनूर हीरा नहीं है।

कर्मचारियों को मोती बेधने का परिश्रम-पुरस्कार निम्नलिखित क्रमानुसार दिया जाता है :—जो प्रथम श्रेणी के मोती को बेध कर लड़ी के योग्य बनाता है १ चरन[१] ($\frac{१}{४}$ रु०) पाता है ; दूसरी श्रेणी के मोती का बेधक अष्ट ($\frac{१}{८}$ रु०) ; तीसरी श्रेणी का दसा ($\frac{१}{१०}$ रु०) ; चौथी श्रेणी का ३ दाम ; पांचवीं श्रेणी का सूकी[१] ; छठी श्रेणी का १ दाम ; सातवीं श्रेणी का $\frac{३}{४}$ दाम ; आठवीं श्रेणी का $\frac{१}{२}$ दाम ; नवीं श्रेणी का $\frac{१}{४}$ दाम ; दसवीं श्रेणी का $\frac{१}{५}$ दाम ; ग्यारहवीं श्रेणी का $\frac{१}{६}$ दाम ; बारहवीं श्रेणी का $\frac{१}{७}$ दाम ; तेरहवीं श्रेणी का $\frac{१}{८}$ दाम ; चौदहवीं श्रेणी का $\frac{१}{९}$ दाम ; पन्द्रहवीं श्रेणी का $\frac{१}{१०}$ दाम ; सोलहवीं श्रेणी का $\frac{१}{११}$ दाम (११ मोती के दाने बेधने पर १ दाम) तथा कम ।

इन अनमोल रत्नों के मूल्य की अपूर्वता इतनी अधिक प्रसिद्ध है, कि उसके सम्बन्ध में कुछ लिखना व्यर्थ है। पर आज कल जो मणिमुक्ता सम्राट् के कोष में हैं, उनका ब्योरा इस प्रकार है :—**लाल**—११ टांक[२] २० रत्ती भर का, और **हीरा**—५$\frac{१}{२}$ टांक ४ रत्ती भर का ; हर एक का मूल्य एक लाख रुपए। **पन्ना**—१७$\frac{३}{४}$ टांक ३ रत्ती भरका, मूल्य ५२००० रुपए। **याक़ूत**—४ टांक ७$\frac{३}{४}$ रत्ती भर का, और **मोती**—५ टांक भर का ; हर एक का मूल्य ५०००० रुपए।

आईन ४ ।
टकसाल ।

यतः टकसाल की समृद्धि कोष की पूंजीवर्द्धक होती है और प्रत्येक कार्य उसी से शोभा प्राप्त करता है, अतः मैं उसका कुछ हाल लिखता हूँ और वाग्वाटिका को परितृप्त करता हूँ।

१—इन सिक्कों का पूरा हाल आगे है।

२—संस्कृत भाषा में इसे टंक कहते हैं। यह तौल में ४ माशे भर का होता है। पर अकबरी टांक ४ माशे से कुछ अधिक था ; क्योंकि सिक्कों का जो ब्योरा अबुल फ़ज़्ल ने आगे दिया है, उससे प्रकट होता है कि एक दाम का वज़न ५ टांक या १ तोला १ माशा ७ रत्ती था। इस हिसाब से एक टांक, तौल में ४ माशा १$\frac{२}{५}$ रत्ती भरका होता है।

नागरिकों और ग्रामीणों का कार्य द्रव्य से चलता है और हर एक अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग करता है। विरक्त उसको अपने जीवन-स्थिरता की सामग्री बनाता है, और साँसारिक अपने अभीष्ट सिद्धि का अंतिम पड़ाव जानता है। निदान, सबका प्रयोजन उससे सफल होता है। बुद्धिमान उसको लौकिक और पारलौकिक आशाओं की पूर्ति का प्रधान सोता जानता है। मनुष्य जाति के लिए तो वह परमावश्यक है; क्योंकि जीवन-अस्तित्व के आधार, भोजन और वस्त्र का वह विशेष साधन है। उपरोक्त दोनों वस्तुएं बहुत कष्ट और परिश्रम से प्राप्त होती हैं, जैसे बोना, सींचना, काटना, साफ़ करना, गूंधना, पकाना, कातना, ताना तनना और बुनना इत्यादि। इन कार्यों के साधन, बिना अनेक सहायकों के पूरे नहीं हो सकते; क्योंकि उनके करने के लिए एक मनुष्य का बल पर्याप्त नहीं होता, और नित्यप्रति एक आदमी के लिए उक्त कार्यों का करना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है। मनुष्य के लिए एक घर का होना भी आवश्यक है, जिसमें कि वह कुछ दिन का सामान रख सके। फिर चाहे वह तम्बू हो या खोह, उसे घर कहते हैं। मनुष्य की उत्पत्ति और उसके जीवन की स्थिरता निम्न लिखित पांच पदार्थों पर निर्भर है,—पिता, माता, पुत्र, सेवक और आहार; इनमें से अन्तिम पदार्थ सबका कार्य-साधक है। इसके अतिरिक्त अधिकतर सामान टिकाऊ नहीं होता और टूट फूट जाता है; अतएव प्रत्येक दशा में द्रव्य की आवश्यकता होती है। द्रव्य, पदार्थ की प्रौढ़ता और कठोर गढ़ाई के कारण, बहुत समय तक दृढ़ रहता है, और थोड़े से भी बहुत काम निकलता है। यात्राओं में भी काम आता है; क्योंकि थोड़े दिनों का भी भोजन ले जाना कठिन होता है, फिर महीनों और सालों के लिए क्या कहा जाय!

ईश्वर की कृपा सहायक हो गई, और यह बहुमूल्य मुक्ता (सुवर्ण) अस्तित्व-तट पर आगया तथा बिना परिश्रम किये जीवन-सामग्री तैयार हो गई। इसके सबब से मनुष्य के साहस का मस्तक अयोग्यता की धूल से नहीं सौंदता और ईश्वरोपासना भली भांति वन पड़ती है। इसके गुण वर्णन नहीं हो सकते; यह कोमल शरीर, स्वादिष्ट और सुगन्धित होता है। इसके मिश्रित अवयव[1] प्रायः तौल में बराबर होते हैं। चारों तत्वों[2] में से प्रत्येक के लक्षण इसकी अवस्था

१—मध्य युग के रासायनिकों का मन्तव्य है कि सोने में, गन्धक और पारा समभाग में मिले होते हैं। गंधक से ही सोने में रंग आता है। देखिये आईन १३।

२—मुसलमान तत्वज्ञ केवल चार तत्व मानते हैं। आकाश की गणना वे तत्वों में नहीं करते।

के मुखड़े से प्रकट होते हैं। रूप से अग्नि, शुद्धता से वायु, कोमलता से जल और गुरुत्व से पृथ्वी का ज्ञान होता है; और इसी लिए इसमें जीवन-दायक अनेक चमत्कार होते हैं। अन्य धातुओं के प्रतिकूल, चारों तत्वों में से कोई भी तत्व, उसे क्षति नहीं पहुँचा सकता। पावक से वह जलता नहीं, वायु उसमें असर नहीं करती, पानी युगों तक उसका रूप नहीं बदलता और मिट्टी उसे खाती नहीं है। इसी कारण तत्वज्ञान सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों में बुद्धि को—जिस से हर कार्य की युक्ति कार्य-रूप में परिणित होती है—**नामूसे-अकबर**[1] कहा है; और सुवर्ण को—जिस पर जीवन-सामग्री निर्भर है—**नामूसे-असग़र**[2] बतलाया है। गुण वाचक दो शब्दों में, सोना न्याय-रक्षक एवं लोक-व्यवस्थापक है। वस्तुतः वस्तुओं की सुव्यवस्था उसी से होती है और न्याय की नीव भी उसी पर आधारित है। अद्वैत ईश्वर ने उसकी सुश्रूषा के लिए चांदी और तांबे को प्रचलित किया, और इनको मनुष्य के सम्पन्न होने का सहायक साधन बनाया है। इन्हीं दूरदर्शी विचारों से, न्यायी शासकों और जाग्रतभाग महीपालों ने इन नगदों के प्रचार में उत्साह दिखलाया है, और इस कार्य की उन्नति के लिए टकसालें स्थापित की हैं। इस कार्यालय की सफलता इस बात पर निर्भर है कि सत्यनिष्ठ, परिश्रमी और बुद्धिमान कर्मचारी नियुक्त हों, और विश्वधाम का स्तम्भ उन्हीं के स्थिर विचारों और निरीक्षण पर निर्मित हो।

आईन ५

टकसाल के सहायक।

पहला **दारोग़ा**—एक बुद्धिमान सचेत व्यक्ति होता है, जो अपने विचार-गांभीर्य और साहस विशालता से अपने साथियों का कष्टकर कार्य-भार शीघ्र संचालन के कंधे पर रखता है, हर एक को उसके काम काज में लगाये रखता है और अपने परिश्रम तथा सत्यता द्वारा कार्य को पूरा करता है।

१—बड़ा देव दूत। २—छोटा देव दूत। 'हरीरी' अरबी भाषा का प्रामाणिक-ग्रंथ है। उसमें लिखा है, "यदि यह बात धर्म के विरुद्ध न होती, तो मैं सोने को शीश नवाता और केवल 'ज़र' न कह कर 'ज़र-अले-उस्सलाम' कहता।"

संस्कृत में सोने को हिरण्य और चाँदी को रजत कहते हैं। सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति; अर्थात समस्त गुण कंचन के आश्रित हैं। (भर्तृहरि)

दूसरा सैरफ़ी—इस महत्वपूर्ण विभाग की सफलता इसके अनुभव पर निर्भर है, और मुद्राओं की खराई के अनुसार उनकी श्रेणियां निश्चय करने का भार उसके कर्तव्यपरायण सत्याचारी हाथों पर अवलम्बित है। सुसमय के कारण, इस राज्य में बहुत से कार्य कुशल सर्राफ़ एकत्र हो गये हैं और सम्राट् के ध्यान देने से सोना और चांदी खराई के सर्वोच्च पद पर पहुंच गये हैं। अजम (ईरान) में सब से खरे सोने को **दहदही** कहते हैं, परन्तु वहां के लोग सोने की खराई दस अ़यारों[1] (अंशों) से अधिक नहीं जानते। हिन्दी भाषा में खरे सोने को **बारह बानी** कहते हैं, क्योंकि यहाँ के लोग खराई बारह प्रकार की मानते हैं।

१—अ़यार शब्द अ़रबी भाषा का है। इसका अर्थ सोने और चांदी की चाश्नी (बानगी) है। चांदी और सोने के तौलने और कसौटी पर कसने को भी अ़यार कहते हैं। इस स्थल पर यह शब्द खराई के अंशों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो १० अंश मानी गई है।

अकबर के समय में खराई के लिए बान शब्द प्रचलित था। सब से खरे सोने को १२ बान का सोना कहते थे। उससे कम दर्जे का ११, १० और ९ आदि अंशों का होता था।

आज कल इसके लिए कई शब्द व्यवहृत होते हैं। जैसे—कैरट (Carat), टच (touch) और बट्टा आदि। सब से खरा सोना २४ कैरट का, १०० टच का, पक्का सोना, पांसा, ख़ालिस, शुद्ध, बीस बिस्वा, सोलह आने पक्का, बिना छीज बट्टा आदि आदि नामों से पुकारा जाता है। परन्तु जो खराई में जितना कम होता है वह उसी के अनुसार उतने ही कम कैरट, टच या बट्टे का सोना कहलाता है।

कैरट के सम्बन्ध में "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका का" (Encyclopædia Britannica, 1929, Ed. 14 Vol. 4 P. 827) में लिखा है—"कैरट एक छोटा सा बांट है (जो पहले बीज़ के रूप में था) जो हीरों और मूल्यवान पत्थरों के तौलने तथा सोने की शुद्धता के निश्चय करने के लिए परखने में काम आता है·········इस समय भिन्न भिन्न स्थानों में कैरट की तौल में अन्तर है। १८७७ ई० में लण्डन, पैरिस और ऐम्सटर्डम के जौहरियों के सिण्डीकेट ने कैरट का वज़न २०५ मिलीग्राम (३·१६३ ट्राय ग्रेन) नियत किया था। दक्षिणी अफ्रीका का कैरट गार्डनर विलियम्स के अनुसार ३·१७९ ग्रेन का होता है। सोने की शुद्धता निश्चित २४ कैरट के अनुपात से जांची जाती है। इस प्रकार निकृष्ट धातु के २ भाग मिलने पर २२ कैरट का सोना बनता है।" जिस सोने में तांबा मिला होता है, कैरट का प्रयोग प्रायः उसी के लिए होता है। कैरट की तौल साधारणतः ४ ग्रेन की मानी जाती है। कदाचित् कैरट अ़रबी के क़ीरात शब्द से निकला हो। क़ीरात की तौल आधा दांग या ४ जौ होती है, (ग़यासुल्लुग़ात)।

टच का अर्थ परख और कमी है। जिस सोने में चाँदी और ताँबा दोनों धातुएँ मिली रहती हैं, अधिकतर उसके लिए टच शब्द प्रयोग होता है। जन साधारण हर प्रकार के सोने के लिए टच और कैरट प्रयोग करते हैं।

बट्टे का प्रयोग आम तौर से होता है, जैसे कहते हैं—यह पक्का सोना नहीं है, यह एक आने बट्टे या ६ रत्ती बट्टे का है।

लोग पहले, पुराने **हुन** के सोने को—जो एक सिक्का है और दक्षिण में प्रचलित है—सब से बढ़िया जानते थे और उसका खरापन १० अंश मानते थे; परन्तु सम्राट् की जांच में उसकी खराई केवल $८\frac{१}{२}$ अंश स्थिर की गई है। अलाउद्दीन के गोल छोटे दीनार के सोने की खराई, लोग १२ अंश मानते थे; पर आज के दिन वह $१०\frac{१}{२}$ अंश की सिद्ध हुई है।

इस कला के निपुण व्यक्ति आज कल के सोने से इतिहास तैयार करते हैं और लोगों को उसकी कथाएं सुनाते हैं तथा इसको रसायन का सोना ख्याल करते हैं। वे कहते हैं कि खान का सोना इस दर्जे को नहीं पहुंचता है। परन्तु सम्राट् के ध्यान देने से वह उस दर्जे पर पहुँच गया और अनुभवी व्यक्ति विस्मित हो गये। वास्तव में अब उसकी खराई का दर्जा न इससे घटेगा और न बढ़ेगा। सत्यशील, वाक्पटु एवं तथ्यवादी पृथ्वी-पर्यटक इस श्रेणी के सोने का पता कहीं नहीं बतलाते हैं। परन्तु जब उसे गलाते हैं, तो सूक्ष्म कण उससे अलग हो जाते और राख में मिल जाते हैं। मूर्ख उस सोने को मल ख्याल करते हैं, परन्तु गुणी उसे राख से निकाल लेते हैं। यद्यपि आघात वर्द्धनीय खनिज-स्वर्ण[१], गलाने से गल जाता और राख होजाता है तथापि विशेष क्रिया द्वारा वह (सोना) अपनी मूल अवस्था को लौट आता है किन्तु उसमें कुछ कमी होजाती है। सम्राट् के दृष्टि-प्रकाश से उस कमी की असलियत प्रकट होगई और छलियों की धूर्तता पकड़ ली गई।

१—कौटिल्य ने सोने के आठ भेद लिखे हैं—१ जाम्बूनद, जोकि जम्बू नदी में निकलता है; भट्ट स्वामी के मत से यह गुलाबी सेब के रंग का होता है। २ शातकुम्भ, यह शात कुम्ब पर्वत से प्राप्त होता है; इसका रंग कमल-पुष्प-दल के समान होता है। ३ हाटक, जो कि हाटक नाम की प्रसिद्ध खानों से निकाला जाता है। ४ वैणव, जो कि वेणु पर्वत की उपज है; इसका रंग कनक चम्पा के समान होता है। ५ शृङ्गशुक्तिज, जो कि शृङ्गशूक्ति से निकाला जाता है; इसका रंग लाल संखिया के समान होता है। ६ जातरूप। ७ रसविद्ध। ८ आकरोद्गत, जो खान से निकलता है।

जो सोना कमल के फूल की पंखुड़ियों के रंग का, मृदु चमकीला और ठनठनाने वाला हो, श्रेष्ठ होता है। साथही रंग में एक समान हो, कसौटी पर कसा जाकर एक जैसी लकीर दे। खोखला तथा पोला न हो। पक्का, चिकना तथा शुद्ध हो। पहनने पर शोभा बढ़ावे। सदा ही नया मालूम पड़े, तथा चमकता रहे। आंखों तथा हृदय को प्रिय मालूम पड़े। लाल पीले रंग का सोना मध्यम कोटि का, और केवल लाल रंग का निकृष्ट होता है।

आईन ६।

बनवारी।

बनवारी शब्द बानवारी का संक्षिप्त रूप है। यद्यपि इस देश में बुद्धिमान सर्राफ़ अपने अनुभव द्वारा रंग और सफ़ाई से धातु के खरेपन का दर्जा जान लेते हैं तथापि दूसरों के प्रबोध के लिए यह प्रशंसनीय व्यवस्था जारी की गई है।[1]

ताँबे और इसी प्रकार की दूसरी धातुओं के कुछ क़लम बनाये हैं, जिनमें से हर एक के सिरे पर थोड़ा सा सोना लगा दिया है, और हर क़लम पर उसके सोने के खरेपन का दर्जा लिख दिया है। जब नए आये हुये सोने की जाँच करते हैं, तो उस सोने से और क़लमों से कसौटी[2] पत्थर पर कई रेखाएँ खींचते हैं। जिस क़लम की लकीर से नए सोने की रेखा का रंग रूप मिल जाता है वह उसी खराई का सोना समझा जाता है। परन्तु यह आवश्यक है कि रेखाएँ एक ही प्रकार की खींची जाँय और खींचने में एक हो सा बल प्रयोग किया जाय, उसमें छल छिद्र की धूल का संसर्ग न हो।

इस नियम का संचालन तरह तरह के बानों का सोना बनाने पर निर्भर है। इसकी क्रिया इस प्रकार है—एक माशा ख़ालिस चांदी और उतना ही

१—कौटिल्य ने सुवर्णाध्यक्ष के कर्तव्यों में लिखा है:—कसौटी पर कसने पर जब सोने का रंग हल्दी की तरह हो तो उसको सुवर्ण कहते हैं। जब इस सुवर्ण (१६ मापक वाला) के एक से सोलह काकणी तक के परिमाण में एक से सोलह काकणी तक क्रमशः तांबा मिलाते हैं, तो सोलह प्रकार का सोना तैयार हो जाता है। कसौटी पर पहले उत्तम सोने की रेखा बनाकर फिर दूसरे सोने की रेखा खींची जाय। कसौटी पर जो रेखा खींची जाय वह नाख़ून या अंगूठे से मिट जानी चाहिये। यदि उसके मिटाने के लिए गेरु प्रयुक्त करना पड़े तो बेईमानी का अनुमान करना चाहिये। गो मूत्र में जाति हिंगुलुक (इंगुर) या पुष्प कासीस डाल कर सोना डाला जाय और उसको अंगूठे से रगड़ा जाय तो सोना सफ़ेद हो जाता है।

२—केसर की तरह, चिकनी मृदु और चमकीली कसौटी श्रेष्ठ होती है। कलिंग देश की मूंगे के रंग की भी कसौटी श्रेष्ठ मानी जाती है। एक समान लाल रंग की कसौटी ख़रीदने और बेचने के ही काम में आती है। हाथी के रंग की या हरे रंग की कसौटी बेचने के और स्थिर, कठोर भिन्न वर्ण एवं काले रंग की (कसौटी) ख़रीद करने में लाभदायक होती है। इनमें भी सफ़ेद, चिकनी, बराबर रंग वाली, मृदु तथा चमकीली श्रेष्ठ मानी जाती है। (कौटलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण २)।

ख़ालिस तांबा इकट्ठा गला कर थकिया बनाते हैं, और फिर उस मिश्रण को ६ माशे ख़ालिस सोने के साथ—जो १०$\frac{१}{२}$ बान खरा हो—गलाते हैं, खोटे सोने का टुकड़ा बन जाता है। इस टुकड़े में से एक माशा सोना लेकर उसके सोलह भाग करते हैं, प्रत्येक भाग आधी रत्ती का होता है। जब ७$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोना (१०$\frac{१}{२}$ बान का) इस मिश्रण के एक भाग ($\frac{१}{२}$ रत्ती) के साथ मिलाते हैं, तो १०$\frac{१}{४}$ बान का सोना तैयार होता है। यदि ७ रत्ती ख़ालिस सोने को मिश्रण के दो भागों के साथ मिलावें तो १० बान का सोना बनेगा। अगर ६$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोने को मिश्रण के तीन भागों के साथ गलावें तो ६$\frac{३}{४}$ बान का सोना तैयार होगा। यदि ६ रत्ती विशुद्ध सोने को खोटे सोने के चार भागों से मिलावें, ६$\frac{१}{२}$ बान का सोना बनेगा। अगर ५$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोने को खोटे सोने के पांच भागों के साथ मिश्रित करें तो ६$\frac{१}{४}$ बान का सोना तैयार होगा। जब ५ रत्ती शुद्ध सोने को उसके छे भागों के साथ मिला देते हैं तो ६ बान का सोना तैयार होता है। यदि ४$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोना खोटे सोने के सात हिस्सों के साथ मिलावें, तो ८$\frac{३}{४}$ बान का सोना बनेगा। अगर ४ रत्ती शुद्ध सुवर्ण को उसके आठ भागों के साथ गलाते हैं तो ८$\frac{१}{२}$ बान का सोना तैयार होता है। जब ३$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोने को उसके नौ हिस्सों के साथ मिलाते हैं तो ८$\frac{१}{४}$ बान का सोना बनता है। जब ३ रत्ती ख़ालिस सोना उसके दस भागों के साथ गलावें, तो ८ बान का सोना बनता है। जब २$\frac{१}{२}$ रत्ती ख़ालिस सोना, मिलावटी टुकड़े के ग्यारह भागों के साथ गलाया जाता है तो ७$\frac{३}{४}$ बान का स्वर्ण हाथ लगता है। यदि २ रत्ती ख़ालिस सोना, उसके बारह भागों के साथ गलावें तो ७$\frac{१}{२}$ बान का सोना तैयार होता है। यदि १$\frac{१}{२}$ रत्ती शुद्ध सोने को मिश्रित के तेरह भागों में मिलावें तो ७$\frac{१}{४}$ बान का सोना बनेगा। जब १ रत्ती ख़ालिस सोने को उसके चौदह भागों के साथ गलावें तो ७ बान का सोना रह जायगा। जब आधी रत्ती ख़ालिस सोने को उसके पन्द्रह भागों से मिलाते हैं, तो ६$\frac{३}{४}$ बान का सोना तैयार होता है। इस क्रिया का सारांश यह है, कि खोटे सोने की प्रति आधी रत्ती की मिलावट असली सोने के खरेपन में चौथाई बान की कमी पैदा कर देती है। उस खोटे

सोने के टुकड़े का मान, जो दूसरे प्रयोग द्वारा तैयार हुआ है, ६½ बान होता है।

जब चाहते हैं कि ६½ बान से भी कम मान का सोना तैयार हो तो पहले मिश्रण की ½ रत्ती को जो तांबा और चांदी मिला कर तैयार किया गया था—दूसरे मिश्रण की ७½ रत्ती के साथ (जो सोने, चांदी और तांबे के मिश्रण से बना है) मिलादें तो ६¼ बान का सोना तैयार होगा। जब पहले मिश्रण की १ रत्ती दूसरे मिश्रण की ७ रत्तियों से मिलावें तो ६ बान का सोना रह जायगा। यदि उसका मान इससे भी कम करना चाहें, तो मिश्रणों में आधी आधी रत्ती बढ़ाते जांय। बानवारी में ६ बान तक की साख मानते हैं। इस से कम बानों के सोने का हिसाब किताब नहीं होता। यह सब कार्य **साहबे--अयार** (प्रधान—पारखी) की देख रेख से होता है, और शोभा बढ़ाता है[1]।

तीसरा, अमीन[2]—उसके निस्वार्थी और निर्लोभी होने से शत्रु मित्र निर्भीक रहते हैं। मत भेद सम्बंधी वार्तालाप के समय वह दारोग़ा और दूसरे लोगों का सहायक होता है। वह सत्य सत्य कहता है और झगड़ा शांत कर देता है।

चौथा, मुशरिफ़—जो हिसाब लिखने, मामला समझने और ईमानदारी से आय व्यय की शाखा को दृढ़ रखता है, और बुद्धि प्रिय रोज़नामचा भरता है।

पांचवां, सौदागर—सोना चांदी और तांबा लाकर लेन देन करता है और अपना नफ़ा लेता है। और इस प्रकार कारख़ाने की शोभा बढ़ाता है। कर चुकाकर कोष की वृद्धि में प्रयत्न करता है। इस समुदाय की बढ़ती और व्यापार की उन्नति, न्याय की व्यापकता और कर्मचारियों की तृष्णाहीनता से होती है।

छठा, गंजूर[3]—लाभ के रुपये की चौकसी करता और लेन देन में सत्यता के साथ व्यवहार करता है।

१—कौटिल्य ने भी इस विषय में "खनिज पदार्थों के व्यवसाय संचालन" तथा "सुवर्णाध्यक्ष के कार्य" में प्रकाश डाला है।

२—अमीन का अर्थ अमानतदार अर्थात् वह व्यक्ति जिसके पास किसी अवधि के लिए धरोहर के रूप में कोई वस्तु रक्खी जाय। यहां पर आज कल के उस अदालती अमीन से आशय नहीं है, जो मौक़े की तहक़ीक़ात करता है, ज़मीन नापता, बटवारा करता या डिगरी आदि का अमलदरामद कराता है।

३—ख़ज़ांची।

छठे और प्रथमोक्त चार अधिकारियों के वेतनों में एक दूसरे के वेतन से अन्तर रहता है। इन में सब से छोटा अहदी[1] पद पाकर संसार में सफल होता है।

सातवां, तराज़ूकश[2]—सिक्कों को तौलता है। यदि सोने की १०० जलाली मोहरें जोखता है तो १$\frac{३}{४}$ दाम मज़दूरी लेता है; चांदी के १००० रुपया तौलने में ६$\frac{१९}{२५}$ दाम; और तांबे के १००० दाम तौलने में एक दाम का $\frac{११}{२५}$ पाता है। सिक्कों के कमोवेश होने पर तुलाई में भी उसी हिसाब से कमी बेशी हो जाती है।

आठवां, गुदाज़गर ख़ास[3]—वह मिट्टी के तख्ते पर छोटी बड़ी नालियां बनाता और उन पर तेल चुपड़ देता है। फिर सोना चांदी गलाकर, उन नालियों में डाल देता है, सलाख बन जाती है। पर तांबे के लिए तेल से चिकना करने के स्थान में केवल राख छिड़कना ही पर्याप्त होता है। पूर्वोक्त तौल (१०० मोहर जलाली) का सोना गलाने की मज़दूरी २ दाम १५ जीतल; पूर्वोक्त तौल की चांदी गलाने पर ५ दाम १३$\frac{१}{४}$ जीतल; और उपर्युक्त तौल का तांबा गलाने पर ४ दाम २१$\frac{१}{२}$ जीतल पाता है।

नवां, वर्क़ कश—वह मिलावटी सोने के वर्क़ बनाता है; जिनमें से हर एक की तौल छे या सात माशे और लंबाई चौड़ाई छे अंगुल होती है। उनको वह पारखी के पास लाता है। वह उनको एक सांचे में, जो तांबे का बना होता है, डालकर जांचता है। जिनको वह ठीक पाता है, उन पर अद्ल[4] की छाप लगा देता है, जिससे उनमें परिवर्तन न होने पावे और यह जान लिया जाय कि इन पर कार्रवाई हो चुकी है। पूर्वोक्त सोने की तौल के वर्क़ बनाने पर उसको ४२$\frac{१}{३}$ दाम मजदूरी मिलती है।

१—अहदी अरबी भाषा के 'अहद' शब्द से—जिसका अर्थ 'एक' होता है—बना है। अहदी से आशय उस व्यक्ति का है, जो अकेला ही कठिनतर कार्यों को कर सके। अकबर के समय में ये सिपाही का काम करते थे और बड़ी आवश्यकता के समय इन से काम लिया जाता था, बाक़ी दिन ये बैठे बैठे खाते थे। पड़े पड़े खाने के कारण ही 'अहदी' शब्द आलसियों, निठल्लुओं और अकर्मण्यों के लिये प्रयुक्त होने लगा है। ये राज दरबार में मुहर्रिरों के पदों पर, दरबार के चित्रकारों और कारख़ानों में भी रहते थे। मालगुज़ारी न देने वाले व्यक्तियों के दरवाज़ों पर ये डट जाते थे और उनसे बिना वसूल किये नहीं उठते थे। द्वितीय ग्रन्थ के चौथे आईन में इनके कर्तव्यादि का सविस्तर उल्लेख है।

२—डंडीदार।

३—कच्ची धातु गलाने वाला।

४—न्याय की छाप, ठीक होने का ठप्पा।

आईन ७।

खोटे सोने को साफ़ करने की रीति[1]।

जब वरक़ों पर अद्ल की छाप हो चुकती है, तो सोने का मालिक, पारखी की कार्यपटुता से उनकी खोटाई इस प्रकार दूर करता है :—वह १०० जलाली मोहरों की तौल के सोने के लिए ४ सेर शोरा नमक और ४ सेर कच्ची ईंटों का चूरा प्रयोग करता है। पहले वह वरक़ों को शुद्ध जल में धोता है, फिर उनको

१—कौटिल्य ने सोने को शुद्ध करने तथा उसको रंगीन बनाने की कई रीतियां लिखी हैं। जैसे, खोटा सोना सफ़ेद रंग का होता है। इसमें चौगुना जस्त मिलाया जाय और पत्र के आकार में पीटकर तपाया जाय। लाल पड़ने तथा पिघलने पर इसको तेल तथा गोमूत्र में डाल दिया जाय।

जो सोना खान से निकला हो, जस्त मिलाकर उसके पत्र पीटे जांय, और उनको खरल में पीटा जाय। फिर उनको तपाया तथा पिघलाया जाय। अन्त में उस गलित पदार्थ को केला तथा वज्रकन्द में डाल दिया जाय।

जो सोना तपाने के बाद अन्दर बाहर से केसरिया रंग का या कारण्ड (हंस की जाति का एक पक्षी) के रंग का हो वह उत्तम है, और जो काला या नीला पड़ जाय उसे मिलावटी समझना चाहिये।

चमकीला तथा तपनीय सोना तपनीय कहलाता है। इसमें जस्त और सेंधा नमक मिलाकर बिनवां कण्डों से तपाया जाय। इस क्रिया से इसका रंग नीला, लाल, पीला, सफ़ेद, हरा, तोते तथा कबूतर के रंग का हो जाता है। सोने में रंग देने के लिये मोरपंखी सफ़ेद चमकीले पीले रंग का तीक्ष्ण (संभवतः हीराकसीस) नामक मसाला प्रयोग किया जाय।

शुद्ध या खोटी चांदी तूतिया, जस्त, हड्डी, (शुद्ध मृत्तिका) आदि में क्रमशः चार चार बार, गोमय में तीन बार, और फिर १७ बार तूतिया तथा नमक में मिला कर तपाया जाय। इस मिश्रण को एक काकणी (घुंघची, पण या माशे का चौथाई भाग) से दो माशे तक यदि सुवर्ण में डाला जाय तो सुवर्ण का रंग सफ़ेद हो जाता है, और श्वेत तार कहलाता है। सफ़ेद रंग के सोने के ३० भाग यदि तपनीय सोने के ३ भागों के साथ मिलाकर तपाया जाय तो सोना लाल रंग का, और लाल सोना पीले रंग का हो जाता है। तपनीय सोने को गरम कर यदि उस में रंग के तीन भाग दिये जांय तो उसका रंग लाल पीला हो जायगा। तपनीय सोने का एक भाग अगर सफ़ेद के दो भागों से मिलाया जाय तो वह मूंग के रंग का बनेगा। यदि वह काले लोहे के आधे भाग के साथ मिलाया जाय तो उसका रंग काला पड़ जायगा। यदि उपर्युक्त तपनीय योग में पारा मिलाने के बाद दो बार तपाया जाय तो उसका रंग तोते के पंख की तरह हरा हो जाता है। भिन्न रंग के सोने को प्रयोग में लाने के पहले उसको कसौटी पर कस लेना चाहिये।

उसी मसाले में (शोरा नमक और ईंटों के चूरे के मसाले में) सौंद देता है। इसके बाद वर्क़ों को एक दूसरे पर रखकर, बिनवाँ कंडों से जिनको हिन्दी भाषा में उपला कहते हैं और जो जंगली गाय का सूखा गोबर है--ढांक देता है। फिर आग जलाता और धीरे धीरे जलने देता है। उपले राख हो जाते हैं। जब आग बुझ जाती है तो उसके इधर उधर की राख उठा कर रख छोड़ते हैं। फ़ारसी भाषा में उसको **ख़ाके-ख़लास** और हिन्दी में **सलोनी** कहते हैं। इस राख से चाँदी निकाल लेते हैं, जिसके निकालने की क्रिया अलग लिखी जायगी। नीचे की राख वर्क़ों सहित ज्यों की त्यों रहने देते हैं, और दो बार फिर आग जलाते हैं तथा पहली क्रिया का उपयोग करते हैं। जब तीन आंचें दे चुकते हैं, तो उसको **सिताई**[1] कहते हैं। फिर साफ़ पानी से धो डालते हैं, और वही मसाला लगा कर पुनः तीन बार आँचें देते हैं तथा राख अलग कर लेते हैं। इसी प्रकार छे बार मसाला मिलाते, अठ्ठारह आँचें देते और फिर धोते हैं। पारखी उनमें से एक तोड़ता है, यदि नरम और मुलायम आवाज़ आती है तो वह उसके पूर्णतया शुद्ध होने का लक्षण मानता है। अगर आवाज़ सख़्त होती है, तो मसाला मिलाकर तीन आंचें और देते हैं। पुनः प्रत्येक पत्र से एक एक माशा काट कर एक पृथक पत्र बनाते हैं और उसे कसौटी पत्थर पर कसते हैं। यदि वह ख़ालिस नहीं हुआ होता, तो एक दो बार फिर तपाते हैं। बहुधा तीन चार आंचों से उद्देश्य सिद्ध हो जाता है।

इस तरह से भी परीक्षा करते हैं। दो तोला ख़ालिस सोना लेते हैं और दो तोला तपाया हुआ सोना। दोनों सोनों के बराबर तौल के बीस बीस पत्र बनाते हैं। फिर मसाला सौंद कर आँच देते हैं। तत्पश्चात् उनको धोकर तौलते हैं। यदि दोनों प्रकार के वर्क़ तौल में बराबर होते हैं तो यह उनके ख़ालिस होने का लक्षण होता है।

दसवां, गुदाज़गर पुख़्ता[2]—वह ख़ालिस सोने के वर्क़ों को गलाता है और पहली रीति से सलाख़ें बनाता है। १०० सोने की मोहरों में उसकी मज़दूरी ३ दाम होती है।

ग्यारहवां, ज़र्राब[3]—वह अपनी दृष्टि के बल से सोने, चांदी और तांबे की सलाख़ों से सिक्कों के अनुरूप गोल टिकियां काटता है। सोने की १००

१—तीन बार तपाई या ताई हुई धातु।
२—पक्की धातु गलाने वाला।
३—टिकिया बनाने वाला।

मोहरों की टिकियां तैयार करने पर वह २१ दाम और १ १/४ जीतल मज़दूरी पाता है। यदि चांदी की सलाखों से १००० रुपए की टिकियां बनाता है, तो ५३ दाम ८ ३/४ जीतल मज़दूरी लेता है। यदि उतनी ही चांदी से चवन्नियें की टिकियां तैयार करता है तो उसकी मजदूरी में २८ दाम और बढ़ जाते हैं। १००० तांबे के दाम बनाने में २० दाम मज़दूरी लेता है। उतने ही वज़न के तांबे से आधे दाम और चौथाई दाम की टिकियां काटने में २५ दाम पाता है; अष्टांश दाम बनाने में, जिसको दमड़ी कहते हैं, ६६ दाम लेता है।

ईरान और तूरान में ज़र्राब, बिना सांचे की निहाई के सिक्कों की नाप भर टिकियां नहीं काट सकते; हिन्दुस्तान के गुणी बिना उसके इस उत्तमता से कार्य करते हैं कि बाल भर फ़र्क़ नहीं पड़ता; और यह बड़े आश्चर्य की बात है।

बारहवां, मोहरकन—वह सिक्के के नक़्शों को फ़ौलाद और उसी प्रकार की दूसरी धातुओं पर खोदता है। उसके आकार रुपए और अशरफ़ी आदि पर बन जाते हैं। आज कल इस काम पर मौलाना अली अहमद देहलवी[1] (दिल्ली निवासी) हैं। किसी देश में उनका सानी नहीं बतलाया जाता। वह फ़ौलाद पर तरह तरह की ऐसी सुन्दर लिपियां लिखते हैं, जो प्रसिद्ध सुलेखाचार्यों के क़तओं[2] की बराबरी करती हैं। वह **यूज़बाशी**[3] के पद पर हैं। इनके दो प्यादे टकसाल में रहते हैं, जिन में से हर एक का वेतन ६०० दाम है।

तेरहवां, सिक्कची—टिकियों को दो ठप्पों के बीच में रखता है। हथौड़े के बल से उनमें दोनों तरफ़ नक़्श हो जाते हैं। उसकी मज़दूरी १०० सोने की मोहरों के ठप्पा करने में १ दाम २/५ जीतल होती है; चांदी के १००० रुपयों के सिक्कों के नक़्श करने में ५ दाम ६ १/२ जीतल; और १००० रुपए की रेज़गारी बनाने में १ दाम ३ जीतल और बढ़ जाते हैं। तांबे के १००० दाम बनाने में उसकी मज़दूरी ३ दाम होती है; २००० आधे दाम और ४००० चौथाई दाम तैयार करने में ३ दाम १८ ३/४ जीतल; और ८००० अष्टांश दाम बनाने में १० १/२ दाम। सिक्कची अपनी मज़दूरी का छठा भाग घनहा को देता है; क्योंकि उसके लिये पृथक मज़दूरी नियत नहीं होती।

१—इसी ग्रंथ का २० वाँ आईन देखिये।

२—सुलिखित वाक्य।

३—सौ आदमियों का सरदार। ख़ास ख़ास अहदी इस फ़ौजी पद पर पहुँचते थे। यूज़बाशी को ५०० से ७०० रु० तक मासिक वेतन मिलता था। इस का वर्णन द्वितीय ग्रंथ के तीसरे आईन में है।

चौदहवां, सब्बाक़—साफ़ की हुई चांदी की टिकियां बनाता है और १००० रुपए भर के लिए ५४ दाम लेता है।

चांदी की सफ़ाई—उसमें सीसा, जस्त और तांबे का मेल होता है। ईरान और तूरान में चांदी की सब से ज्यादा खराई को **दहदही** कहते हैं और हिन्दुस्तानी सर्राफ़ उसे **बीस्तबिस्वा** (बीस बिस्वा) कहते हैं। मिलावट के अनुसार उसका दर्जा घट जाता है। पांच से अधिक कम दर्जे की चांदी नहीं बनाई जाती है। दस दर्जे से कम वाली चांदी पर कोई ध्यान नहीं देता। अनुभवी परखिये मिलावटी चीज़ के रंग से उसके न्यूनाधिक अंश को जान लेते हैं। रेती से रगड़ कर या छेद करके, उसका भीतरी हाल मालूम कर लेते हैं; और आग में तपाकर और पानी में बुझाकर उसका खरापन जान लेते हैं। कालेपन में सीसा, ललाई में तांबा, मटमैली सफ़ेदी में जस्त और सफ़ेदी में चांदी क्रमशः अधिक मिली रहती है।

चांदी को शुद्ध करने की विधि।

एक गढ़ा खोदते हैं उसमें बिनवाँ कंडे का थोड़ासा चूरा डालते हैं। फिर उसे बबूल की लकड़ी की राख से भरते हैं और तर करके रकेबीदार बना लेते हैं। मिश्रण (खोटी चाँदी) उसी में रख देते हैं और उसी के अनुसार सीसा मिला देते हैं। पहले सीसे का चतुर्थांश चाँदी के ऊपर रखकर, कोयला भरते हैं और धौंकनी से धौंक कर गलाते हैं। बहुधा यह क्रिया चार बार की जाती है। धातु के ख़ालिस हो जाने की पहचान यह है कि गलाया हुआ पदार्थ साफ़ चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है और किनारों की ओर से जमने लगता है। जब जमते जमते बीच में भी कठोर होने लगता है तो उस पर पानी के छींटे देते हैं। उस समय उस से मेंढ़े के सींग की तरह लपट उठती है। अब उसकी थकिया जम जाती है और चांदी पूर्णतया शुद्ध होजाती है। यदि यह थकिया फिर गलाई जाय, तो हर तोले में आधी रत्ती माल जल जायगा, अर्थात् सौ तोले में ६ माशा २ रत्ती माल घट जायगा। चांदी एवं सीसा मिली हुई वह राख मुर्दाशंख के सदृश हो जाती है; हिन्दी में उसे **कहरल**[1] कहते हैं और फ़ारसी में **कोहना**; इसका प्रयोग आगे बतलाया जायगा। इसके पहले कि ज़रीब उसकी टिकियां बनावे, प्रति सौ

१—इसका उच्चारण खरल भी होता है।

तोले शुद्ध किये हुये माल में से ५ माशे ५ रत्ती ख़ालसा के लिये निकाल लिये जाते हैं। फिर पारखी साफ़ टिकियों पर न्यायतुला के ठप्पों से निशान लगाता है जिस से वह बदलने न पावे।

प्राचीन काल में चांदी की खराई जानने के लिए भी लोग बानवारी क्रिया का प्रयोग करते थे, परन्तु अब निम्नलिखित साधन के उपस्थित होने के कारण वे उसमें प्रवृत्त नहीं होते। यदि १०० तोले शाही चांदी, जिसका इराक़ और ख़ुरासान में चलन है और लारी एवं मिसक़ाली चांदी जो तूरान में प्रचलित है, में से ३ तोले १ रत्ती निकल जाय, और उतनी ही तौल की फ़िरंगी तथा रूमी नारजील की चांदी में से, एवं गुजरात और मालवा की महमूदी और मुज़फ़्फ़री चांदी में से १३ तोले ६$\frac{1}{2}$ माशे घट जाय, तो इन चांदियों की खराई शहंशाही चांदी के खरेपन से मिल जायगी।

पन्द्रहवां, क़ुर्सकूब—साफ़ चांदी को तपा कर इतना कूटता है कि उसमें सीसे की गंध तक नहीं रहती। १००० रुपए की चांदी की मज़दूरी ४॥ दाम है।

सोलहवां, चाशनीगीर—ख़ालिस किये हुये सोने और चांदी की जांच करता है और निम्नलिखित रीत्यनुसार शुद्ध होने की सनद देता है। वह २ तोले सोना लेता है, और ८ वर्क़ बनाता है। फिर पूर्वोक्त विधि से मसाला चुपड़ कर उनको तपाता है। हवा से बचाये रखता है और फिर धोकर गलाता है। यदि वे तौल में कम नहीं होते तो वह शुद्ध जानता है। प्रधान पारखी उनको कसौटी पर कसकर निजको और दूसरों को सन्तोष देता है। उपर्युक्त माल की जांच कराई वह १$\frac{2}{5}$ दाम लेता है। चांदी की परीक्षा करने के लिए १ तोला चांदी लेता है, और उतने ही सीसे के साथ उसे हड्डी की घरिया में गलाता है, और इतनी आंच देता है कि सीसा बिल्कुल जल जाता है। फिर उसे पानी में बुझाकर इतना कूटता है कि सीसे का संसर्ग नहीं रहता। इसके बाद नई घरिया में गलाकर तौलता है। यदि चांदी तीन चावल कम होती है तो यह पूर्ण खरे होने की पहचान होती है; अन्यथा वह उसे फिर गलाता है, यहां तक कि वह उसी दर्जे को पहुँच जाती है। इतनी चांदी जांचने की मजदूरी ३ दाम ४$\frac{1}{2}$ जीतल होती है।

सत्रहवां, न्यारिया—ख़ाके-ख़लास (सलोनी) इकट्ठी करके दो दो सेर धोता है। सोना भारी होने के कारण तह में बैठ जाता है। धोई हुई राख को हिन्दी में **कुकरा** कहते हैं। उसमें भी कुछ सोना मिला रहता है। दूसरी क्रिया

द्वारा, जो आगे बतलाई जायगी, सोना निकाला जाता है। नीचे बैठे हुये मिश्रण में पारा मिलाकर मलते हैं। प्रति सेर में ६ माशे सीसा प्रयोग करते हैं। पारा प्रेम के आकर्षण से सोने को अपने में खींच लेता है। उसको शीशे के बर्तन में डालकर आंच देकर सोना अलग कर लेते हैं। उतने परिमाण की राख से सोना निकालने में न्यारिया को २० दाम २ जीतल मिलते हैं।

कुकरे की क्रिया—कुकरे के बराबर **पुनहर** मिलाते हैं, और **रसी** को गाय के गोबर में सानते हैं। फिर पहले मिश्रण को पीस कर दूसरे में सौंद देते हैं; और उसके दो दो सेर के गोले बनाकर कपड़े पर सुखा लेते हैं।

पुनहर की क्रिया—एक गढ़े को बबूल की राख से इस प्रकार भरते हैं कि एक मन सीसे के प्रयोग करने में राख की उंचाई ६ अंगुल रहती है। उसका पेंदा बराबर करके सीसा रख देते हैं और कोयले चुनकर उसे गलाते हैं। फिर कोयले हटाकर उस पर काँटे दार दो मिट्टी के तख्ते लगा देते हैं। धौंकनी की तरफ़ का सूराख़ बन्द करके दूसरी ओर का छेद खुला रखते हैं। पर इस छेद को भी एक ईंट से उस समय तक ढांपे रहते हैं, जब तक कि राख सीसे को बिलकुल नहीं सोख लेती। कर्मचारी उस ईंट को क्षण क्षण उठाकर सीसे का हाल मालूम करते रहते हैं। सीसे के उपर्युक्त परिमाण के लिए वे चार माशे चांदी राख में मिला देते हैं। राख को पानी से ठंढा कर लेते हैं, उसी को **पुनहर** कहते हैं। उतने में से २ सेर सीसा जल जाता है और राख ४ सेर बढ़ जाती है। सब सामान तौल में १ मन २ सेर होता है।

रसी—एक प्रकार का तेज़ाब है, जिसको सज्जी और शोरा-मिट्टी से बनाते हैं।

यतः पुनहर और रसी का हाल निवेदन कर चुका, अब मुख्य विषय पर आता हूँ और कुकरे की क्रिया पूर्ण करता हूँ। तन्दूर की तरह एक भट्ठी बनाते हैं, जिसके दोनों मुँह छोटे, पेट बड़ा और उंचाई डेढ़ गज़ होती है। उसकी पेंदी में छेद करके भूमि में एक गढ़ा खोदते हैं और उसी पर उसे रखते हैं। इस भट्ठी को कोयलों से इस प्रकार भरते हैं कि वह चार अंगुल ख़ाली रहती है। फिर दो धौंकनियों से आग जलाते हैं। जब आग दहकने लगती है तो उन गोलों में से एक एक को तोड़कर उस अग्निकुंड में डालते और गलाते हैं। सोना, चांदी, तांबा तथा सीसा छिद्र द्वारा उस गढ़े में आ जाता है। उसकी बची हुई सामग्री बाहर निकाल लेते हैं, और मुलायम बनाकर धोते हैं, सीसा अलग निकल आता

है। इसी प्रकार राख इकट्ठी कर लेते हैं और दूसरी क्रिया द्वारा उससे भी लाभ उठाते हैं। धातु (खनिज) को गढ़े से निकाल कर पुनहर की तरह गलाते हैं। सीसा राख में मिल जाता है, जिसमें से ३० सेर निकल आता है और १० सेर जल जाता है। सोना, चांदी, तांबा एवं थोड़ा सीसा अपनी हालत में (पिण्ड में) रह जाता है, उसको **बुगरावटी** कहते हैं, और कुछ लोग **गुबरावटी** पुकारते हैं।

बुगरावटी की क्रिया—एक गढ़ा खोदते हैं, और उसमें सौ तोले बुगरावटी के लिए आध सेर बबूल की राख भरते हैं। उस राख को रकेबीदार बनाते हैं और बुगरावटी उसमें भर देते हैं; साथ ही १ तोला तांबा और २५ तोले सीसा उसमें बढ़ा देते हैं। फिर कोयला भर कर ईंटें ढक देते हैं। जब मिश्रण गल जाता है, तो कोयला और ईंटें हटा कर बबूल की लकड़ी यहाँ तक जलाते हैं कि तांबा और सीसा राख में मिल जाता है, और मिला हुआ सोना चाँदी अलग हो जाता है। उस राख को भी **कहरल** कहते हैं। उससे सीसा और तांबा निकल आता है, जिसकी क्रिया आगे बतलाई जायगी।

आईन ८

सोने से चांदी अलग करने की रीति।

मिश्रित सोना चांदी छे बार गलाते हैं, तीन बार तांबे के साथ और तीन बार छाछिया गंधक के साथ। एक तोला मिश्रण के लिए एक माशा तांबा और दो माशे दो रत्ती गंधक लेते हैं। पहले, तांबे के साथ गलाते हैं, फिर गंधक के साथ। यदि मिश्रण १०० तोले हो तो तांबा भी १०० माशे प्रयोग करते हैं। पहले उसमें ५० माशे मिलाकर गलाते हैं, शेष आधे को फिर दो बार (पच्चीस पच्चीस माशे मिला कर) टिघलाते हैं। गंधक को भी इसी क्रम से गलाते हैं। उस मिश्रण (सोना चांदी) को चूरा चूरा करके घरिया में भरते हैं और ५० माशे तांबा मिला कर गलाते हैं। उसके पास ठंढे पानी से भरा हुआ एक बर्तन रख लेते हैं। उसके ऊपर एक खस का कूंचा बिछा देते हैं। गलित धातु उसी पर उड़ेल देते हैं और एक लकड़ी से चलाते रहते हैं, जिससे उसकी थकिया नहीं बँधने पाती है। फिर उन टुकड़ों को अन्य आधे मसाले के साथ मिला कर घरिया में भरते

और गलाते हैं। जब माल पिघल जाता है तो उसे उठा कर साये में सुखाते हैं, जिससे वह ठंढा हो जाता है। मिश्रण के प्रति तोले के लिए दो माशे दो रत्ती गंधक अर्थात् सौ तोले मिश्रण के लिए १$\frac{३}{८}$ सेर गंधक इस्तेमाल करते हैं। तीन बार उसी प्रकार क्रिया करते हैं। फिर उस पर हलके सफ़ेद रंग की राख दिखलाई पड़ती है। वह असल में चाँदी है जो इस प्रकार निकली है। उसको उठाकर अलग रख छोड़ते हैं, उसकी क्रिया आगे बतलाई जायगी। जब मिश्रण तांबे और गंधक के साथ तीन तीन बार गलाया जा चुकता है तो शेष भाग सोने का थक्का हो जाता है। पंजाबी भाषा में उसे **कैल** कहते हैं, और दिल्ली प्रदेश में **पिंजर**। यदि मिश्रण में सोना अधिक मिला होता है तो साधारणतया ६$\frac{१}{२}$ बान का निकलता है, परन्तु अधिकतर ५ बान प्रत्युत ४ ही बान का निकला करता है।

उसकी खराई बढ़ाने के लिए इन दो क्रियाओं में से एक का करना आवश्यक है। चार सौ तोले खरे सोने में इस सोने के पचास तोले मिलाते हैं और **सलोनी** क्रिया द्वारा उसकी पूर्ति करते हैं या **अलोनी** क्रिया से काम चलाते हैं। **अलोनी,** दो हिस्सा जंगली गोबर और एक हिस्सा शोरा नमक का मिश्रण है। पिंजर की सलाखें तैयार करके पत्र बनाते हैं। हर पत्र तौल में डेढ़ तोले से कम नहीं होता, पर चौड़ाई में उससे अधिक होता है जितना चौड़ा कि सलोनी के लिए बनाया जाता है। उनको सफ़ेद और काले तिलों के तेल से चुपड़ कर मसाला लगाते हैं। फिर हर बार मसाला लगाने में उसे दो बार मंद मंद आँच से तपाते हैं। इसी प्रकार तीन चार बार सौंदते और तपाते हैं। यदि इससे भी अधिक खरा चाहते हैं तो उक्त क्रिया को कई बार करते हैं, यहाँ तक कि वह ९ बान का हो जाता है। उसकी भी राख रख लेते हैं, वह **कहरल** के समान होती है।

आईन ९।

राख से चांदी निकालने की रीति।

अलोनी क्रिया के पहिले और पीछे जो राख और मैल जमा किया है उसका दुगना ख़ालिस सीसा मिलाकर उसे घरिया में भरते हैं, और कोयलों की आग

पर रख कर एक पहर (३ घंटे) भर जलाते हैं। जब ठंढा हो जाता है तो सब्बाकी[1] के तरीक़े से साफ़ कर लेते हैं। इसकी भी राख कहरल होती है। सलोनी क्रिया अन्य रीतियों से भी की जाती है जोकि गुणियों से छिपी नहीं हैं।

अठारहवां, पनीवार—कहरल गलाकर चांदी को तांबे से अलग करता है। एक तोला चांदी में उसकी मज़दूरी १½ दाम होती है। लाभ प्राप्ति के उपलक्ष में कृतज्ञता प्रकाशन के रूप में वह ३०० दाम प्रति मास दीवान को देता है। कहरल को चूरा चूरा करता है और एक मन (कहरल) में १½ सेर सुहागा और तीन सेर सज्जी कूटकर ख़मीर बनाता है। फिर उक्त भट्ठी में सेर सेर भर डालता और गलाता है। चांदी मिला हुआ सीसा उस गढ़े में आजाता है और सब्बाकी क्रिया द्वारा साफ़ हो जाता है। जो सीसा इस से अलग होकर मिट्टी में मिल जाता है वह फिर पुनहर हो जाता है।

उन्नीसवां, पैकार—सलोनी और कहरल शहर के सुनारों से ख़रीदता है, और टकसाल घर में गलाता एवं सोने और चांदी से लाभ उठाता है। एक मन सलोनी में १७ दाम और एक मन कहरल में १४ दाम ख़ालसा को देता है।

बीसवां, निचुई वाला—चांदी मिले हुये तांबे के पुराने सिक्के गलाता है, और १०० तोला चांदी से ३½ रु० दीवान को देता है। जब चांदी पर सिक्का करता है, तो उसका नियत कर पृथक चुकाता है।

इक्कीसवां, ख़ाक शोई—जब माल के स्वामी विभिन्न प्रकार से, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, चांदी और सोना ले लेते हैं, तो ख़ाकशोई टकसाल झाड़ कर राख घर ले जाता है, और उनको धो कर लाभ उठाता है। बहुतेरों का इस पेशे से उद्यम चमक जाता है। लाभ उठाने के उपलक्ष में कृतज्ञता प्रकाशनार्थ वह राज्य को प्रतिमास १२½ रुपए अदा करता है।

टकसाल के सभी पेशेवर राज्य को प्रति १०० दामों की आय पर, ३ दाम प्रतिमास कर स्वरूप देते हैं।

१—इसका उल्लेख पहले हो चुका है।

आईन १०

अचल राज्य के मुद्रा'।

जिस प्रकार सम्राट् के ध्यान देने से सोने और चाँदी ने अधिकाधिक शुद्धता प्राप्त की, उसी प्रकार मुद्रों की विपुल आकृतियों से भी उनका मुख

---

१ मुद्रा—भारतवर्ष में मुद्रा बनना कब प्रारम्भ हुआ यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है। परन्तु पुरातत्वविदों के मतानुसार "भारतवासी बहुत ही प्राचीन काल से विनिमय के लिए धातुओं के बने हुये सिक्कों का व्यवहार करते आये हैं। हिन्दुओं, बौद्धों और जैनों के सर्व प्राचीन धर्म-ग्रन्थों से भी पता चलता है कि प्राचीन-काल में भारत में सोने, चांदी और तांवे के सिक्कों का बहुत प्रचार था। सोने के सिक्कों का नाम सुवर्ण वा निष्क, चांदी के सिक्कों का नाम पुराण वा धरण और तांबे के सिक्कों का नाम कार्षापण था (प्राचीन मुद्रा ले० राखालदास बनर्जी)।

ऋग्वेद संहिता में निष्क का उल्लेख तीन स्थानों पर है; पहले, दूसरे और आठवें मण्डल में। पहले में ऋषि-कक्षिवान् ने सिन्ध नद के समीपवर्ती राजा भावयव्य से १०० निष्क, १०० घोड़े और १०० सांड़ उपहार में लिये थे, (शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान्छतमश्वान्प्रयतान्सद्य आदम्। शतं कक्षीवां असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान। ऋक्० मं० १ सूक्त १२६ मंत्र २। इस पर सायणाचार्य का भाष्य इस प्रकार है—नाधमानस्य स्वीकर्तव्यमित्युच्चैर्याचमानस्य असुरस्य धनानां निरसितुः दानशीलस्य राज्ञः स्वतेजसा दीप्यमानस्य स्वनयस्य निष्कान् आभरण विशेषान् इयत्ताविशेषविशिष्टानि वा सुवर्णानि शतं शत संख्याकानि शतं सहस्रमित्यपरिमित वचनः अपरिमितान् सद्यः प्रार्थनानन्तरमेव कक्षीवानहं आदं आत्तवानस्मि स्वीकृत वानस्मी त्यर्थः। तथा प्रयतान् शुद्धान् लक्षणोपेतान श्वानध्वगमन समर्थान् हयान् शतं शत संख्याकान् आदं आत्तवान्। तथा गोनां पुंगवानां बलीवर्दानामित्यर्थः। उत्तर मंत्रे स्त्री गवीनामभिधानात्। तेषां शतं आदम् एवं प्रदाता राजा दिवि द्युलोके श्रवः कीर्तिं अजरं शाश्वतीं आततान विस्तारितवान् गवादि प्रतिगृहीताहं स्वर्गे कीर्तिमकरवमित्यर्थः)। दूसरे स्थल में रुद्र का वर्णन है जिसमें ऋषि गृत्समद ने एक माला का उल्लेख किया है, जो निष्कों का बना हुआ था, (अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्। अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति। ऋक्० मण्डल २ सूक्त ३३ मंत्र १०। इसका अर्थ सायणाचार्य के शब्दों में इस प्रकार है—हे रुद्र! त्वं अर्हन् अर्हो योग्य एव सन् सायकानि शरान् धन्व धनुश्च बिभर्षि धारयसि तथा अर्हन्नेव यजतम् यजनीयं पूजनीयं विश्वरुपं बहुविधरुपयुक्तं निष्कं हारं बिभर्षि तथा अर्हन्नेव इदं विश्वं सर्वं अभ्वं महन्नामैतत् अति विस्तृतं जगत् दयसे रक्षसि देङ् रक्षणे। हे रुद्र! त्वत्त्व-त्तोऽन्यत् किञ्चित् ओजीयः ओजस्वितरं बलवत्तरं नवाअस्ति। न खलु विद्यते। अतस्त्वमेवोक्तव्यापारेषु योज्य इत्यर्थः। इसी प्रकार "निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा

द्युतिमान हुआ। धनागार विभूषित होगया और जनता को सुख प्राप्त हुआ। मैं उसका कुछ वृत्तान्त वर्णन करता हूँ और उनकी विलक्षणताएं चित्रित करता हूँ।

दुहितर्दिवः, त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परिदद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ऋक्० मण्डल ८ सूक्त ४७ मंत्र १५, है। इसका अर्थ सायणाचार्य ने इस प्रकार किया है—हे! दिवो दुहितरुषो निष्कंवा घ आभरणविशेषं वा कृणवते कुर्वते स्वर्णकाराय यत् दुःष्वप्न्यं दृष्टं स्वर्णकारेण निर्माणसमये दृष्टमित्यर्थः। वेति पूरणः वा शब्दश्चार्थेवा अथवा स्रजं माल्यं कृणवतेकुर्वाणेइत्यर्थः। तस्मिन्नपि मालाकारे मालानिर्माणसमये यत् दुःष्वप्न्यं दृष्टं तदुभय विषयं स्वप्नं आप्त्ये अपांपुत्रे त्रिते वर्तमानं परिदद्मसि परिदद्मो वयं त्रिताः परित्यजामेत्यर्थः। अथवा त्रिते मयि यद्दुःष्वप्न्यं दृष्टं तत्स्वर्णकाराय मालाकाराय वा परिदद्मसि अस्मत्तोपिनिष्कृष्य तयोरुपरि स्थापयामः। वो युष्माकमूतयो रक्षणानि अनेहसः अपापानि अनुपद्रवाणि च ऊतयो वो युष्माकं रक्षणानिः सऊतयः शोभन लक्षणानि पुनरुक्तिरादरार्था। इन ऋचाओं में निष्क शब्द आना तथा उसका मुद्राभरण के रूप में प्रयोग होना प्रकट करता है कि ऋग्वेद के समय में निष्क का प्रचार था। कितने ही विद्वानों का मत है कि वैदिक काल में राजा लोग सोने के विशेष परिमाण में बराबर टुकड़े करा लेते थे। यज्ञ में उन्हीं को दक्षिणा में देते थे वही "निष्क" कहलाते थे। उन पर यज्ञस्तूप आदि भी बनाये जाते थे। उनको गूथ कर हार बनाते थे तथा ऋषि और ब्राह्मणादि आज कल की मोहरों के हार हमेलों की तरह पहनते थे। इन मंत्रों में आभूषण से आशय निष्कों के हार से है, और निष्क से आशय विनिमय के काम में आने योग्य मुद्रा से है। यह सब स्वीकार करते हैं कि ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। अतः निष्क उतनाही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद।

"शतपथ ब्राह्मण" में एक स्थान पर हिरण्यं सुवर्णं शतमानम् (अर्थात् पीले रंग की 'शतमान' नामक सुवर्ण मुद्रा) का उल्लेख है। यह तौल में एक पल था। किसी किसी विद्वान् के मत से निष्क का दूसरा नाम शतमान है।

मनुस्मृति के आठवें अध्याय (श्लोक १३१-१३८) में पुराने मुद्रों का मान इस प्रकार दिया हुआ है। मनु ने रोशनदान के प्रकाश में उड़ते हुये दिखलाई पड़ने वाले ज़र्रों को सबसे छोटा माना है। उनको त्रसरेणु कहते हैं।

८ त्रसरेणु = १ लिक्षा
३ लिक्षा = १ राई
३ राई = १ सफ़ेद सरसों
६ सरसों = १ मंझला जौ
३ जौ = १ कृष्णल रत्ती
५ कृष्णल = १ माष
१६ माष = १ सुवर्ण
४ सुवर्ण = १ पल
१० पल = १ धरण
२ कृष्णल = १ रौप्य (चाँदी का) माषक
१६ माषक = १ रौप्य धरण या पुराण
तांबे के कर्ष भर के पण (पैसे) का नाम "कार्षापण" है।
१० धरण = १ चांदी का शतमान
४ सुवर्ण = १ निष्क।

निष्क का मान भिन्न भिन्न समयों में "शब्द सागर" के अनुसार इस प्रकार रहा है:—

१ निष्क = १ कर्ष (१६ माशे)
१ ,, = १ सुवर्ण ,,
१ ,, = १ दीनार ,,

स्वर्ण मुद्रा।

(१) सहँसा—एक गोल मुद्रा है; तौल १०१ तोले ६ माशे ७ रत्ती;

१ निष्क = १ पल (४ या ५ सुवर्ण)
१ „ = ४ माशे
१ „ = १०८ या १५० सुवर्ण

सुवर्ण भी एक सिक्का था। बौद्धों के त्रिपिटक में "पभुतम् हिरञ् ञ सुवराणं" एक पद है। इसमें हिरण्य और सुवर्ण दोनों शब्द आये हैं। हिरण्य से असुद्रित सोने का और सुवर्ण से 'सुवर्ण' नामक सिक्के से तात्पर्य है।

जो लोग यह कहते हैं कि प्राचीन भारतीयों ने सिक्का बनाना विदेशियों से सीखा, वे भूल में हैं। यह सब जानते हैं कि सन् ३२६ ईसा के पूर्व जब सिकन्दर ने इस देश पर आक्रमण किया था तो राजा आम्भि ने उपहार स्वरूप उसको चाँदी के बहुत से सिक्के, १००० भेड़ें और ३००० बैल दिये थे। ये सिक्के भारतवर्ष में ही निर्मित हुये थे। इसके अतिरिक्त रोम के इतिहासज्ञ क्विन्टस कर्टियस के अनुसार सिकन्दर जब तक्षशिला पहुँचा था तो वहां के राजा ने उसको ८० टेलेण्ट के मूल्य का अङ्कित किया हुआ चांदी का टुकड़ा उपहार में दिया था (Coins of Ancient India)। यह अङ्कित मुद्रा भारतवर्ष का ही था। सर अलेक्ज़ण्डर कनिङ्घम तथा रैप्सन का मत है कि प्राचीन भारत के सिक्के इसी देश के तौल के अनुसार बने हैं, क्योंकि इनका आकार प्रकार संसार की अन्य जातियों से भिन्न है।

मुद्रों के निर्माण काल के अन्वेषण के सम्बन्ध में, तक्षशिला की खुदाई में पुरातत्व विभाग के प्रधान अधिकारी सर जान मार्शल ने जो बहुत से पुराण तथा चाँदी के कार्षापण निकाले हैं, वे दूसरे दियादात के समय के हैं। दियादात का समय, ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी के अन्तर्गत माना जाता है। पादरी लोवेनथाल के मतानुसार दक्षिण भारत में पुराणों का चलन बहुत प्राचीन काल से रहा है और वे तीसरी शताब्दी तक चलते रहे हैं। अनेक पुरातत्वविदों के मतों का सार यही है कि भारतवर्ष में मुद्रा का चलन ईसा के १००० वर्ष पूर्व से चला है। पर, यह मत अन्तिम और निश्चित है, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मोहनजोदाड़ो (ज़िला लरकाना, सिन्ध) तथा हरप्पा (ज़िला माण्टगुमरी, पंजाब) में जो खुदाई हुई है, उसमें बड़ी बड़ी विलक्षण वस्तुएं निकली हैं, यथा—मिट्टी के बर्तन, खिलौने, नीले कांच और लेई तथा सीपी की चूड़ियां, चाकू, चक़माक़ की कीलें, पांसे और शतरंज के मुहरे, पत्थर की अंगूठियों का अद्भुत अनुक्रम, लाल पत्थर और सीप आदि का बना हुआ हार और नए नमूने के सिक्के या सील मुहरें आदि।

मोहेनजोदाड़ो की सभ्यता ईसा से ३००० या ३५०० वर्ष पहले की मानी जाती है। इससे यह सिद्ध ही होगया कि भारतीय आज से ५००० वर्ष पहले ऐसी वस्तुएँ तैयार करते थे जो संसार के लिए अनोखी थीं। इनमें सब से अपूर्व वस्तु सिक्के या निशान हैं जिनके सम्बन्ध में "इण्डियन हिस्टरिकल क्वार्टरली" में लिखा है कि भारतवर्ष के बाहर दूसरे प्राचीन स्थानों में जितनी सीलें अनुसन्धान में अभी तक पाई गई हैं उनमें से कोई भी आकार, प्रकार तथा चित्रण में इन सीलों के समान नहीं हैं (None of the seals discovered

मूल्य १०० लाल जलाली। उसके एक ओर, बीच में, सम्राट् का नाम लिखा हुआ

in other ancient sites outside India bear resemblance to these seals in shape devices or pictographs. The Indian Historical Quarterly, March 1932. P. 131)। उन सीलों पर जो लेख हैं वे संसार की सभी लिपियों से भिन्न लिपि में लिखे हुये हैं। विद्वान उनको पढ़ रहे हैं। संभव है उनमें तथा अन्य स्थानों की खुदाई में मुद्रा निकल आवें।

'प्राचीन मुद्रा' के अनुसार खुदाइयों में सोने के पुराने निष्क, सुवर्ण अथवा पल नामक सिक्के अभी तक कहीं नहीं मिले हैं; किन्तु चाँदी के चौकोर और गोल लाखों सिक्के प्राप्त हुये हैं। पुरातत्वविदों के अनुसार यही प्राचीन पुराण वा धरण हैं। ये कदाचित् चाँदी के पत्रों को काट कर बनाये गये हैं। इनके पश्चात् ही अङ्क चिह्न युक्त (Punch marked) सिक्कों का चलन चला है।

विदेश वालों में यूनानियों के जो सोने चाँदी तथा तांबे के सिक्के मिले हैं, उनसे मालूम होता है कि वहाँ के पचीस शासकों ने अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब पर शासन किया था। इन पर प्राचीन ग्रीक लिपि के लेख के साथ साथ खरोष्ट्री लिपि में उसका अनुवाद दिया हुआ है। जिससे एक दूसरी की सहायता से दोनों लिपियाँ पढ़ी जा सकती हैं।

क्षत्रप वंशी राजाओं के प्राप्त सिक्के कलदार चवन्नी के बराबर हैं। उन पर क्षत्रप या महाक्षत्रप का नाम, उपाधि और संवत् दिया हुआ है। इन सिक्कों से दो दर्जन के लगभग राजाओं का पता चलता है। इन से यह भी मालूम हुआ है कि राजा के मरने पर पुत्र के बजाय क्रमशः उसके भाई राज्य करते थे। अन्तिम भाई के मरने पर जेठे भाई का लड़का राज्य का अधिकारी होता था।

कुशन वंशियों के सिक्कों से उनका शीत प्रधान देश का निवासी होना सिद्ध होता है। राजतरङ्गिणी के अनुसार वे तुर्किस्तान के रहने वाले थे। इसी लिए शीत निवारणार्थ उनके शरीर पर लंबे लबादे आदि देख पड़ते हैं। वे शिव, बुद्ध और सूर्य आदि के उपासक थे। यज्ञ प्रेमी होने के कारण राजे अग्निकुण्ड में आहुति देते हुये दिखलाई पड़ते हैं।

गुप्त वंश के सिक्के सर्वोत्तम हैं और वे सोने, चांदी तथा तांबे के प्राप्त हैं। इन में से किसी में एक अश्व यज्ञ स्तम्भ से बंधा हुआ है, जो दक्षिणा देने या अश्वमेध यज्ञ की स्मृति दिलाने के लिये है। दूसरे प्रकार के सिक्कों में राजा बाजा बजा रहा है। तीसरे प्रकार के सिक्कों में राजा तीर से शेर का शिकार कर रहा है। इस वंश के समुद्रगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त आदि ने संसार भर में सब से पहले अपने सिक्कों पर छंदोवद्ध लेख लिखवाये थे। इसी प्रकार अन्य वंशों के सिक्कों का भी विवरण जानना चाहिये।

मध्यकाल के भारतीय सिक्कों पर विदेशी सिक्कों का भी काफ़ी प्रभाव पड़ा था। कितने सिक्के तो उनकी हूबहू नक़ल हैं। नक़ल बुरी बात नहीं है यदि उसका उपयोग समझदारी से किया जाय; किन्तु यहाँ कई सिक्कों की नक़ल से बड़ा अनर्थ हुआ है। जैसे हूण तोरमाण ईरान का ख़ज़ाना लूट कर भारतवर्ष में ले आया था। मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और राजपूताना आदि में कई सदियों तक उन्हीं सिक्कों की नक़लें बनती रहीं। उनमें राजा की आकृति

है; और पाँचों तरफ़ की महराबों में—"अस्सुल्तानुलआज़म अलख़ाक़ानुलमोअज़्ज़म ख़ल्लदअ अल्लाहुमुल्कहू व सुल्तानहू ज़र्ब दारुलख़िलाफ़त आगरा"१। उसके दूसरी

बिगड़ते बिगड़ते यहां तक ख़राब हुई कि लोगों ने राजा का चेहरा गदहे का खुर समझ लिया, और उन सिक्कों को गधीया या गदैया सिक्के कहने लगे। "अजमेर बसाने वाले राजा अजयदेव चौहान तथा उनकी रानी सोमल देवी के चांदी के सिक्कों के एक तरफ़ वही माना हुआ गधे के खुर का चिन्ह और दूसरी तरफ़ उनके नाम अंकित हैं।" किन्तु बापा रावल के स्वर्ण मुद्रों तथा प्रतिहार वंशी भोजदेव आदि के सिक्कों से मालूम होता है कि उन्होंने किसी की, नक़ल नहीं की, वरन् वे पुरानी शैली के सिक्के बनवाते रहे।

"ये सिक्के अनेक राजवंशों के जैसे ग्रीक्, शक, पार्थियन, कुशन, क्षत्रप, गुप्त, अर्जुनायन, औदुंबर, कुनिन्द, मालव, नाग, राजन्य, योधेय, आंध्र, हूण, गुहिल, चौहान, कलचुरि (हैहय), चंदेल, तोमर, गाहड़वाल, सोलंकी, यादव, पाल, कदंब, आदि के तथा काश्मीर के भिन्न भिन्न वंशों के; कांगड़े, नेपाल, आसाम, मणिपुर आदि के भिन्न भिन्न राजाओं के तथा अयोध्या, उज्जैन, कौशांबी, तक्षशिला, मथुरा, अहिछत्रपुर आदि नगरों के राजाओं के एवं मध्यमिका आदि नगरों के मिलते हैं।.... भारतवर्ष के प्राचीन सोने, चाँदी और तांबे के सिक्कों के कई बड़े बड़े संग्रह इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, और रूस आदि यूरोप के देशों में, कलकत्ता, बम्बई आदि की एशियाटिक सोसायिटियों के संग्रहों में, तथा इण्डियन म्यूज़ियम् (कलकत्ता), बंगीय साहित्य परिषद् (कलकत्ता), लखनऊ म्यूज़ियम्, राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर), सरदार म्यूज़ियम् (जोधपुर), वाट्सन म्यूज़ियम् (राजकोट), प्रिन्स आफ़ वेल्स म्यूज़ियम् (बंबई), मद्रास म्यूज़ियम्, पेशावर म्यूज़ियम्, लाहौर म्यूज़ियम्, पटना म्यूज़ियम्, नागपुर म्यूज़ियम् आदि कई एक संग्रहालयों में तथा कई विद्यानुरागी गृहस्थों के निजी संग्रहों में विद्यमान हैं" (हिन्दी प्राचीन मुद्रा की भूमिका पृ० ७-९)।

मुसलमान बादशाहों के सिक्कों में महमूद ग़ज़नवी ने अपने सिक्कों पर बड़े विचित्र लेख लिखवाये। उनमें देव नागरी लिपि में लिखा था—"अथ अव्यक्तमेक मुहम्मद अवतार नृपति महमूद" तथा, "अयं टंक महमूद संवत् ४१२।" ऐसा मालूम होता है कि उसके दरबार में कुछ भारतीय पंडित थे, उन्होंने उसको पैग़म्बर मुहम्मद का अवतार बना दिया था। ये सिक्के लाहौर के बने हुये थे। उन दिनों लाहौर, ग़ज़नी और नीशापुर में टकसालें थीं, इनके अतिरिक्त तीन चार जगहें और थीं। काबुल में उन दिनों कोई टकसाल न थी, (Thomas, in "Journal of Royal Asiatic Society", Vol. IX P. 67, and Vol. XVII P. 157, quoted by C. B. Vaidya in his 'Downfall of India' P. 143)।

अन्य मुसलमान बादशाहों के सिक्के आसानी से मिल जाते हैं और उनका हाल भी लोगों को मालूम है, इस लिए उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा गया है।

१—महाराजाधिराज, महाराजराजेश्वर, उसका राज्य और शासन सदा बना रहे; राजधानी आगरा में अङ्कित किया गया।

तरफ़ बीच में पाक कलमा[१] और यह आयत—"[२]अल्लाहु यर्जु क़ो मँइयशाउ बिग़ैरे हिसाब" और उसके आसपास पहले चार[३] ख़लीफ़ों के नाम।

पहले, मौलाना मक़सूद मोहरकन ने, उपर्युक्त वाक्य खोदने में कार्य पटुता दिखलाई थी, उनके बाद मुल्ला अली अहमद ने निम्नलिखित वाक्य लिखकर विचित्रता प्रकट की। मुल्ला ने एक ओर—"[४]अफ़ज़लो दीनार यनफ़क़हू-अर्रजुलु दीनार यनफ़क़हू अ़ला असहाबिही फ़ी सबीलिल्लाह" बढ़ा दिया; और दूसरी तरफ़—"[५]अस्सुलतानुलआ़ली अलख़लीफ़तुलमुतआ़ली ख़ल्लदअ़अल्लाहु तआ़ला मुलकहू व सुल्तानहू व अब्बदअ़ अ़दलहू व एहसानहू।"

पीछे से उसने सब इबारत साफ़ करदी, और कवि सम्राट् एवं दार्शनिक शेख़ फ़ैज़ी की दो रुबाइयाँ खोद दीं। सहँसा के एक ओर:—

"[६]ख़ुर्शीद कि हफ़्त बह्र अज़-ओ गौहर याफ़्त;
संगे सियह अज़ परतवे आं जौहर याफ़्त।
कान अज़ नज़रे तर बियते ऊ ज़र याफ़्त;
वां ज़र शरफ़ अज़ सिक्कए शाह अकबर याफ़्त।"

और बीच में, "[७]अल्लाहु अकबर, जल्ल जलाल हू।" दूसरी ओर यह रुबाई:—

"[८]ईं सिक्का कि पीरायये उम्मीद बुअद;
बा नक़्श-दवाम-ओ नाम-ए जावीद बुअद।

१—"लाइलाह इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलल्लाह।"

२—ईश्वर, जिसको चाहता है, बिना हिसाब रोज़ी देता है।

३—बकर, उमर, उसमान और अली।

४—सबसे बढ़कर वह दीनार है, जिसको कोई व्यक्ति अपने धर्म बन्धुओं पर ईश्वर के मार्ग में व्यय करता है।

५—श्रेष्ठ सुलतान और उच्च पदस्थ ख़लीफ़ा; परमेश्वर सर्वदा उसका देश और उसकी बादशाही स्थिर रक्खे, और उसका इन्साफ़ और एहसान हमेशा बनाये रक्खे!

६—यह सूर्य है जिससे कि सात समुद्रों ने मोती पाया, काले पत्थर ने जिसकी द्युति से प्रतिभा प्राप्त की, जिसकी पोषण-दृष्टि से खान ने सोना पाया और सोने ने बादशाह अकबर के सिक्के से प्रतिष्ठा प्राप्त की।

[मध्यकाल के प्राकृतिक तत्ववेत्ताओं के मतानुसार, सूर्य के प्रभाव से ही धातु, मोती और बहुमूल्य मणियों का आविर्भाव होता है। देखिये तेरहवां आईन।]

७—ईश्वर महान है, उसका ऐश्वर्य महान है।

८—यह मुद्रा, जोकि आशा का भूषण है, अमिट आकारों और चिरस्थायी नाम के साथ स्थिर रहेगा। उसकी भागवानी के चिह्न के लिए इतना ही पर्याप्त है कि संसार में सूर्य का भेंट किया हुआ एक परमाणु चिरस्थायी रहेगा।

सीमाएसआदतश हमीं बस कि बदह ;
यक ज़र्रा नज़र करदए ख़ुर्शीद बुअद।"

और स्थायित्व का चिह्न इलाही साल और महीना बीच में अंकित कर दिया।

(२) इसी नाम और इसी शक्ल का एक और स्वर्ण मुद्रा है, ६१ तोले ८ माशे का। इसका मूल्य ग्यारह माशे वाली १०० गिर्द[१] मोहरें हैं। इस पर भी पहले वाले ही अङ्क हैं।

(३) **रहस**—पूर्वोक्त दोनों मुद्राओं का अद्धा। कभी चार कोने का भी बनता है। उसके एक तरफ़ वही सौ मोहर वाली (सहँसा) के चिह्न हैं; और दूसरी ओर मलिकुश्शोअ़रा शेख़ फ़ैज़ी की यह रुबाई :—

"[२]ईं नक़दे रवाने गंजे शाहिंशाही;
बा कौकबे इक़बाल कुनद हमराही।
ख़ुर्शीद बिपरवरिश अज़ांरु किबदह;
याबद शरफ़ज़ सिक्कए अकबर शाही।"

(४) **आत्मा**—सहँसा का चतुर्थांश; गोल और चौकोण। इसके कुछ मुद्रों पर सहँसा के अंक हैं, और कुछ पर मलिकुश्शोअ़रा की यह रुबाई :—

"[३]ईं सिक्का कि दस्ते-बख़्त रा ज़ेवर बाद;
पीराया-ए नोह सिपह्रो हफ़्त अख़्तर बाद।
ज़रीं नक़देस्त कारअज़ो-चुं ज़र बाद;
दर दहरे रवाँ बनामे शाह अकबर बाद।"

—और दूसरी ओर पहली रुबाई।

(५) **बिसत**—आत्मा की दोनों शक्लों के समान। इसे पहले सिक्के के पञ्चमांश के बराबर बनाते हैं।

इसी प्रकार सहँसा के आठवें, दसवें, बीसवें और पच्चीसवें, भागों के भी सिक्के हैं।

१—गोल।

२—यह शाही ख़ज़ाने का प्रचलित मुद्रा, सौभाग्य नक्षत्र के साथ रहता है। सूर्य उसका पोषण इस लिये करता है कि वह संसार में अकबर शाही सिक्के द्वारा सुकीर्ति प्राप्त करे।

३—यह मुद्रा, जो भाग्य-कर का भूषण है, नौ आकाशों और सप्त ग्रहों का शृङ्गार हो। यह एक सोने का सिक्का है, इससे सोने के सदृश कार्य सिद्ध हों। संसार में अकबर बादशाह के नाम से प्रचलित हो।

(६) **जुगुल**[१]—चौकोन, सहँसा का पचासवां हिस्सा, मूल्य दो मोहर।

(७) **लाल जलाली गिर्द**—तौल और मूल्य में दो गिर्द मोहरों के समान। एक ओर "अल्लाहो अकबर" और दूसरी ओर 'या मुईन'[२]।

(८) **आफ़ताबी**—गोल, तौल १ तोला २ माशे ४$\frac{३}{४}$ रत्ती, मूल्य १२ रुपए। एक ओर "अल्लाहो अकबर जल्ल जलाल हू," और दूसरी ओर महीना, इलाही साल और सिक्का लगाये जाने का स्थान।

(९) **इलाही**—गोल, तौल १२ माशे १$\frac{३}{४}$ रत्ती, इस पर आफ़ताबी के समान लिखावट है। मूल्य १० रुपए।

(१०) **लाल जलाली चहार गोशा**—चौकोण, तौल और मूल्य इलाही के समान। एक ओर "अल्लाहो अकबर", दूसरी ओर "जल्ल जलाल हू"।

(११) **अ़दूल गुटका**—गोल, तौल ११ माशे, मूल्य ९ रुपए। एक ओर "अल्लाहो अकबर" दूसरी तरफ़ "या मुईन"।

(१२) **मोहर**[३] **गिर्द**—गोल, तौल और मूल्य में अ़दल गुटका के सदृश पर लिखावट और प्रकार की।

१—मूल ग्रन्थों में इस शब्द के अक्षर-न्यास भ्रमात्मक हैं। इसे चुगुल भी पढ़ा जा सकता है। तौल और मूल्य में भी भिन्नता है। किसी किसी में लिखा है चौकोर चुगुल की तौल ३ तोले ५$\frac{१}{४}$ रत्ती और मूल्य ३० रु० है। जो चुगुल गोल है, वह २ तोले ९ माशे भर की है। उसका मूल्य ११ माशे वाली ३ मोहरें अर्थात् २७ रु० है। लिखावट दोनों पर एक सी है।

२—हे सहायक !

३—अधिकतर सिक्के के रूप में यही मोहर चलती थी। मोहर फ़ारसी भाषा का शब्द है। "हाब्सन् जाब्सन्" के अनुसार यह 'मेहर' शब्द से, जिसका अर्थ सूर्य होता है, निकला है; इसका दूसरा अर्थ, छाते के सिरे पर का सुनहला छोटा घेरा, होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह मुद्रा शब्द से जो सिक्का और छाप दोनों अर्थों में व्यवहृत होता है, निकला है। राजपूताने में सोने के सिक्कों को पुराने समय में सुवर्ण, निष्क, शतमान, पल, दीनार, गद्याणक आदि कहते थे (राजपूताने का इतिहास जिल्द पहली)। भारतवर्ष के अन्य भागों में भी सोने के सिक्कों के क़रीब क़रीब ऐसे ही नाम थे। पर इनमें मुद्रा के अतिरिक्त कोई नाम ऐसा नहीं है, जिससे मुहर शब्द निकला हुआ जान पड़े। यद्यपि सोने के सिक्के और मुसलमान बादशाहों ने भी बनवाये थे, किन्तु मोहर नाम से उनकी अधिक ख्याति ग़ज़नी के ग़ोरी बादशाहों के समय में ही हुई। उन्होंने सन् १२०० ई० में १०० रत्ती (१७५ ग्रेन) की मोहर बनाई, और उसका मूल्य रुपए का दस गुना नियत किया। मुहम्मद तुग़लक़ की

(१३) **महराबी**[१]—तौल, मूल्य और लिखावट में मोहर गिर्द के समान।

(१४) **मुईनी**—चौकोर और गोल; तौल और मूल्य में लाल जलाली और मोहर गिर्द के सदृश। "या मुईन" खुदा हुआ।

(१५) **चहार गोशा**—अंक और तौल आफ़ताबी के समान।

(१६) **गिर्द**—इलाही का अद्धा और वही अंक।

(१७) **धन**—लाल जलाली का अद्धा।

(१८) **सलीमी**—अद्‌ल गुटका का अद्धा।

(१९) **रबी**—आफ़ताबी का चौथाई।

(२०) **मन**—इलाही और जलाली का चौथाई।

मोहर २०० ग्रेन की थी। कम्पनी की सरकार ने सब से पहली मोहर सन् १७६६ ई० में बनाई और उसका मूल्य १४ सिक्का रुपया क़रार दिया। आजकल भारतवर्ष में सोने का सिक्का नहीं बनता है।

१—यह महराबी क़दीम है। इसी तरह का एक और सिक्का था, जिसको महराबी जदीद कहते थे। क़दीम की तरह यह भी छे कोने का सिक्का था। इसकी तौल ११ माशे २ रत्ती थी। इसके एक ओर "अल्लाहु अकबर जल्ल जलाल हू", और दूसरी ओर "इमुरदाद इलाही ज़र्ब आगरा ४९" अंकित है। 'आईने अकबरी' में इस मुद्रा का उल्लेख नहीं है। पर नवलकिशोर प्रेस से 'आईने-अकबरी' का जो संस्करण १ नवम्बर सन् १८९३ ई० को प्रकाशित हुआ था उसमें सिक्कों के सम्बन्ध में एक परिशिष्टांश है, उसमें महराबी जदीद का उल्लेख है। किन्तु परिशिष्ट की टिप्पणी में यह बात लिखी है कि 'आईने-अकबरी' में इसका ज़िक्र नहीं है। जुलाई सन् १९३१ ई० के 'हिन्दुस्तानी' में इसी सिक्के के सम्बन्ध में लिखा है,—"एक और मुहर आगरा टकसाल से अकबर के उनचासवें (४९वें) सन् इलाही में जारी हुई थी। इसका एक नमूना लखनऊ के अजायब घर में भी है।" यह सिक्का सन् १६०४ का है, और 'आईने अकबरी' के लेखक की हत्या १२ अगस्त सन् १६०२ को हो चुकी थी। संभवतः इसी से "आईने अकबरी" में इसका समावेश नहीं होसका।

उसी 'हिन्दुस्तानी' में एक और सिक्के के बारे में लिखा है,—"ब्रिटेन के अजायब घर में एक बहुत ही नायाब मोहर इलाही सन् ५० की मौजूद है। उस पर एक ओर एक बतख़ बनी हुई है और दूसरी ओर "अल्लाहु अकबर, ५० ख़ुरदाद, ज़रब आगरा लिखा हुआ है।" इसका भी उल्लेख आईने अकबरी में नहीं है।

नवलकिशोरी के परिशिष्टांश में एक दूसरे प्रकार की मोहर-गिर्द जदीद का उल्लेख है। वह ११ माशे की थी। उसके एक ओर रामचन्द्र और सीता का चित्र और देवनागरी लिपि में शब्द "राम" तथा दूसरी ओर "फ़रवर्दीन इलाही ५०" अङ्कित है।

इसी प्रकार अकबर के और भी नाना प्रकार के सिक्के हैं, जो संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, परन्तु 'आईने-अकबरी' में उनका उल्लेख नहीं है।

(२१) **निस्फ़ी सलीमी**—अ़दूल गुटके का चौथाई।

(२२) **पंज**—इलाही का पंचमांश।

(२३) **पाण्डौ**—लाल जलाली का पांचवां भाग एक ओर 'लाला'[१] और 'नसरीन'[२] खुदा हुआ है।

(२४) **समनी**—इसे **अष्ट सिद्ध** भी कहते हैं। यह मोहर इलाही का अष्टमांश है। एक ओर 'अल्लाहो अकबर' और दूसरी ओर 'जल्ल जलाल हू'।

(२५) **कला**—इलाही का सोलहवां भाग; दोनों ओर नसरीन के फूल खुदे हुये हैं।

(२६) **ज़र्रा**—इलाही का बत्तीसवां हिस्सा; इसमें आकार कला के समान हैं।

नियम यह है, कि सम्राट् की टकसाल में सोने से प्रति मास, लाल जलाली, धन और मन के सिक्के मुद्रित किये जाते हैं, परन्तु अन्य मुद्रा बिना नई आज्ञा के अङ्कित नहीं होते।

रौप्य मुद्रा।

(१) **रुपया**[३]—चांदी का नगद है, गोल ११½ माशे भर का। यह पहले, शेर ख़ाँ के समय में प्रविष्ट हुआ और इस प्रतापी राज्य में पूर्णता को पहुँचा, एवं नवीन अंक खोदे गये। एक ओर "अल्लाहो अकबर जल्ल जलाल हू"; और दूसरी तरफ़ तारीख़। यद्यपि इसका भाव ४० दाम से घटता बढ़ता रहता है; परन्तु वेतनादि के सम्बन्ध में इसकी यही दर स्थिर रहती है।

१—पोस्त का लाल रंग का फूल, जिसमें प्रायः काली ख़स ख़स पैदा होती है।

२—सेवती।

३—"एक ओर चांदी का सिक्का है, जोकि बहुत ही दुष्प्राप्य है, परन्तु सौभाग्य से लखनऊ अजायब घर के लिए प्राप्त कर लिया गया है। उस पर रुपया शब्द लिखा हुआ है। इसके संबन्ध में मुख्य बात यह है कि किसी चांदी के सिक्के पर रुपया शब्द नहीं लिखा है। यद्यपि साधारणतः चांदी के विशेष तौल के सिक्के को रुपया कहते हैं" (हिन्दुस्तानी जुलाई सन् १९३१) 'आईने-अकबरी' में इसका भी उल्लेख नहीं है।

रुपया, संस्कृत में रूप्य शब्द से निकला है। कौटिल्य ने लिखा है—"लक्षणाध्यक्ष लोहा, रांगा, जस्त, काला सुरमा, आदि में से किसी एक का एक माशा, चौथाई तांबा तथा चांदी लेकर रुपया (रूप्य रूप) बनवावे" (कौटिल्य का अर्थ शास्त्र, अधिकरण २)। हिन्दुओं के अनेक प्राचीन चांदी के सिक्के मिल चुके हैं। विल्सन के मतानुसार रुपए का चलन शेरशाह ने १५४२ ई० में चलाया। "हाब्सन जाब्सन"

(२) **जलाला**—वर्गाकार, इस वैभवशाली राज्य में इस प्रकार का बनाया गया। तौल और अङ्क रुपए के सदृश।

(३) **दर्ब**—जलाला का अद्धा।

(४) **चरन**—जलाला का चौथाई।

(५) **पाण्डौ**—जलाला का पाँचवाँ भाग।

(६) **अष्ट**—जलाला का आठवाँ भाग।

(७) **दसा**—जलाला का दसवाँ भाग।

(८) **कला**—जलाला का सोलहवाँ हिस्सा।

(९) **सूकी**—जलाला का बीसवाँ भाग।

जलाला की तरह गोल रुपए की भी उपर्युक्त रेज़गारी बनाई जाती है, पर उनकी सूरत शकल में भिन्नता होती है।

ताम्र-मुद्रा।

१—**दाम**[१]—तांबे का सिक्का है, ५ टांक का, जिसका वज़न १ तोला ८ माशे ७ रत्ती होता है। यह रुपए का चालीसवां भाग है। पहले इसे **पैसा** कहते

के अनुसार मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं की तरह पर रुपया बनाया था। परन्तु रुपया शब्द शेरशाह के समय में ही प्रसिद्ध हुआ। यह सम्भव भी है। फ़ारसी अक्षरों में यदि रुप्य शब्द लिखें तो रुप्य का शुद्धोच्चारण न जानने वाला व्यक्ति उसे रुपया, 'रुपियह' आदि पढ़ेगा। अनुमान होता है, पढ़ाई लिखाई में ही रुप्य का नाम रुपया पड़ गया।

मोरलैण्ड लिखते हैं अकबर का "चाँदी का मुख्य मुद्रा १७२$\frac{1}{2}$ ग्रेन का रुपया था, जो वज़न में आज कल के रुपए के बराबर था। तांबे का ख़ास सिक्का दाम था। इनमें से प्रत्येक के खंड मुद्रा भी थे। रुपए का सबसे छोटा खंड मुद्रा उसका बीसवाँ भाग (सूकी) था, और दाम का अष्टमांश या दमड़ी।.... रुपए का तुलनात्मक मूल्य अंग्रेज़ी सिक्कों में २ शिलिङ्ग ३ पेन्स था" (India at the Death of Akbar, P. 55)।

ब्रिटिश सरकार के प्रारम्भिक सिक्कों के चार नमूने ब्रिटिश म्यूज़ियम में हैं। उनमें से एक पर एक तरफ़ The rupee of Bombaim. 1677. By authority of Charles the Second; और दूसरी तरफ़ King of Great Buritaine, France and Ireland लिखा हुआ है। यह तौल में १६७.८ ग्रेन है (हाब्सन जाब्सन)। चांदी के भाव के घटने बढ़ने के अनुसार, शिलिङ्ग के मुक़ाबले में, रुपए का तुलनात्मक मूल्य घटता बढ़ता रहता था। १८९८ ई० में पार्लामेण्ट के एक ऐक्ट के अनुसार इसकी दर १ शिलिङ्ग ४ पेंस नियत हुई थी। प्रचलित कलदार रुपए की तौल १८० ग्रेन है; जिसमें १६५ ग्रेन चांदी और १५ ग्रेन अन्य धातुएं रहती हैं।

१—कई लेखकों के मतानुसार ग्रीक भाषा के "मुख्य सिक्कों के नाम भारतीय

थे और **बहलोली** भी। आज कल यह दाम के नाम से प्रसिद्ध है। इसके एक ओर अंकित होने का स्थान, और दूसरी तरफ़ साल और महीना खुदा हुआ है। हिसाब करने वाले हर दाम को २५ भागों में विभाजित करते हैं, और हर भाग को **जीतल**[१] कहते हैं। यह काल्पनिक विभाजन हिसाब किताब में काम आता है।

२—**अधेला**—दाम का आधा।

३—**पावला**—दाम का चौथाई।

४—**दमड़ी**—दाम का आठवां भाग।

इस शासन के आरम्भ में, सोना, अनेक स्थानों पर सम्राट् के श्रेष्ठ नाम से उच्च पद प्राप्त करता था, अर्थात् बहुत जगहों पर सिक्के बनाये जाते थे; पर आज कल वे चार स्थानों के अतिरिक्त और कहीं नहीं अंकित होते हैं, यथाः—राजधानी, बंगाला, अहमदाबाद और काबुल। चांदी और तांबे के सिक्के उपर्युक्त चार जगहों

भाषाओं में समाविष्ट हो गये। द्रम्म (वर्तमान दाम) ग्रीक शब्द ड्रैकमी (θραχμη) का विकृत रूप है और दीनार दीनारियस का रुपान्तर है" (Rawlinson's Intercourse Between India and the Western world, P. 167, Ed. 1916)। आप्टे के कोष में भी उपर्युक्त मत का समर्थन किया गया है। द्रम्म शब्द भास्कराचार्य के प्रसिद्ध ग्रंथ लीलावती में आया है—वराटकानां दशकद्वयं यत् साकाकिणी ताश्च पणश्चतस्रः; ते षोडश द्रम्म इहाव गम्यो द्रम्मैस्तथा षोडशभिश्च निष्कः—अर्थात् बीस कौड़ियों की एक काकिणी, ४ काकिणी का १ पण, १६ पण का १ द्रम्म और १६ द्रम्म का १ निष्क। अकबर के राजत्व काल में दाम आज कल के पैसे की तरह चलता था। पीछे से जीतल की तरह दाम भी एक काल्पनिक मुद्रा रह गया। कारनेगी (Carnegie) ने अवध के काल्पनिक सिक्कों की तालिका इस प्रकार निर्मित की है :—

२६ कौड़ी = १ दमड़ी
१ दमड़ी = ३ दाम
२० दमड़ी = १ आना
२५ दाम = १ पैसा।

अकबर के समय में सिक्कों में दाम एक विशेष महत्व की चीज़ था। "शाही रजिस्टरों के अनुसार दिल्ली के बादशाहों के सब प्रदेशों का राजस्व ६ अरब ३० करोड़ दाम या २ करोड़ ५० लाख रुपए था" (Muhammad Sharif, in Elliot, vii. 138.)। 'आईने - अकबरी' में भी वेतन, राजस्व आदि सबका उल्लेख दामों में है।

१—जीतल भारतवर्ष का बहुत पुराना तांबे का सिक्का है। पश्चिमी घाट पर यह बहुत दिनों तक चलता रहा था; परन्तु अब इसका पता नहीं है। ई० टामस के अनुसार अलाउद्दीन का जीतल तंगा का (जिसका पीछे से रुपया नाम पड़ गया) $\frac{१}{६४}$ भाग या वर्तमान समय के पैसे के बराबर था। परन्तु इसका चलन अलाउद्दीन के पहले से था, जैसा कि नीचे के उदाहरणों से प्रकट होता है। "क़ुतबुद्दीन (११९३—९४) की आज्ञा से निज़ामुद्दीन मुहम्मद जब दिल्ली लौटा था,

में तथा निम्नलिखित दस और स्थानों में बनाये जाते हैं,—इलाहाबास (इलाहाबाद), आगरा, उज्जैन, सूरत, देहली, पटना, काश्मीर, लाहौर, मुल्तान और टांडा। पर निम्नलिखित अट्ठाइस स्थानों पर केवल तांबे के सिक्कों का मुद्रण होता है,—अजमेर, अवध, अटक, अलवर, बदायूं, बनारस, भक्कर, बहेरा, पटन, जौनपुर, जालन्धर, हरिद्वार, हिसारफ़ीरोज़ा, कालपी, ग्वालियर, गोरखपुर, कलानोर, लखनऊ, मंदू, नागोर, सरहिन्द, स्यालकोट, सरोंज, सहारनपुर, सारंगपुर, संबल, क़न्नोज, रणथम्भोर।[१]

इस समृद्धिशाली देश में अधिकतर लेन देन मोहर-गिर्द, रुपया[२] और दामों से होता है। लालची चोट्टे सिक्कों के माल को घिसकर तथा दूसरे उपायों से ख़राब करके मनुष्यों को बड़ी हानि पहुँचाते हैं। इस लिए सम्राट् समय की गति पहचान कर सदा कार्य कुशल व्यक्तियों के मतानुसार नए क़ानून बनाता रहता है, और इस हानिप्रद व्यवहार का इलाज कर देता है।

सिक्कों के आईनों में कई बार परिवर्तन हुये[३]। पहले, (जलूसी सन् २७, १५८२ ई०) में, जब कि शासन का प्रबन्ध-भार **राजा टोडरमल**[४] के हाथों में था,

---

तो वह अपने साथ दो .गुलाम राजधानी दिल्ली में लाया था। मलिक .कुतबुद्दीन ने उन दोनों तुर्कों को १००००० जीतल को ख़रीद लिया था" (Raverty. Tabkat-i-Nasiri, P. 603)। १२६० ई० में "दिल्ली में दुर्भिक्ष पड़ा था, उस समय अन्न एक जीतल का केवल सेर भर मिलता था" (Zia-ud-din Barni, in Elliot, iii. 146)। अकबर के समय में यह काल्पनिक-मुद्रा रह गया था। मध्य काल में पुर्तगीज़ों का सेइटिल (Ceitile या Zoitoles) नामक तांबे का एक छोटा सिक्का था। कदाचित् यह और जीतल शब्द एक हो (Fernandes, in Memorias da Academia Real das Sciencias de Lisboa, 2 da Classe, 1856)। "ग़यासुल्लुग़ात" के अनुसार जीतल शब्द हिन्दी का है।

१—"बाबर ने सात टकसालें स्थापित कीं और हुमायूं के समय में नौ और अकबर के समय में बहत्तर तक हो गईं, परन्तु औरंगज़ेब के समय में वे केवल अड़सठ रह गई थीं।" (हिन्दुस्तानी)

२—मुग़लों का मुद्रा निर्माण-कार्य साधारणतया उस समय के यूरोपीय सम्राटों से अत्यधिक उत्तम था; और अकबर के सिक्के धातु की शुद्धता, तौल की पूर्णता एवं कला की दृष्टि से विशेष रूप से उत्कृष्ट थे [Mughal Rule in India, by H. L. O. Garret, M. A., 1930, P. 218]।

३—यह वाक्य मूल ग्रंथ में नहीं है। प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए इसे ब्लाक्मैन के अनुवाद के अनुसार जोड़ दिया गया है।

४—राजा टोडरमल का जन्म लाहोर में एक खत्री के घर में हुआ था। अकबर के राजत्व काल के अट्टारहवें वर्ष में, संभवतः वह नौकर हुआ। पहले पहल उसको गुजरात का झगड़ा तय करने का काम सौंपा

सम्राट् ने चार प्रकार की मोहरें प्रचलित की थीं। पहली—लाल जलाली, उस पर सम्राट् का नाम खुदा हुआ था; उसकी तौल १ तोला १$\frac{३}{४}$ रत्ती, खराई में पूरी, और मूल्य ४०० दाम था। दूसरी वह मोहर थी, जिसको सम्राट् ने अपने शासन के आरम्भिक काल में जारी किया था। इसका वज़न ११ माशे था। यह तीन प्रकार की थी। पूर्णतया खरी और तौल में भी पूरी होने पर उसका मूल्य ३६० दाम होता था। चलन के अनुसार यदि वह तीन चावल तक घिस जाती थी, तो उसी कोटि की मानी जाती और मूल्य में कम नहीं की जाती थी। पर जो मोहर चार चावल से छे चावल तक घट जाती थी, वह दूसरे दर्जे का नगद ख़्याल किया जाता था, और उसका मूल्य ३५५ दाम होता था। अगर छे से नौ चावल तक घट जाती, तो लोग उसको तीसरे दर्जे का मुद्रा मानते थे, और उसका मूल्य ३५० दाम रह जाता था। इससे भी अधिक घिसी हुई मोहर को बिना सिक्का किया हुआ सोना मानते थे।

रुपया, तीन प्रकार का चलता था। पहला, चौकोण—ख़ालिस चांदी का, तौल ११$\frac{१}{२}$ माशे, नाम **जलाला,** मूल्य ४० दाम। दूसरा, गोल, पुराना **अकबर शाही** रुपया—तौल में पूरा या एक रत्ती तक कम होने पर मूल्य ३९

गया। उन्नीसवें वर्ष में उसने बंगाल में मुनीम खाँ के साथ काम किया, और पीछे से तीन साल फिर गुजरात में। सत्ताइसवें वर्ष वह राज्य का दीवान बनाया गया। इस साल उसने राजस्व सम्बन्धी नई व्यवस्था जारी की। बत्तीसवें वर्ष किसी खत्री ने उसपर आक्रमण किया। इसी साल वह बीरबल की मृत्यु का बदला चुकाने के लिए, यूसुफ़ज़इयों पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया। अब टोडरमल वृद्ध हो चुका था, इस लिए चौंतीसवें साल में उसने त्यागपत्र दे दिया। अकबर ने उसको अनिच्छा से स्वीकार किया। अंतिम जीवन उसने गंगातट पर व्यतीत किया; जहाँ १० नवम्बर सन् १५८९ ई० को उसका स्वर्गवास हो गया। राजा टोडरमल ने अपनी बुद्धि प्रखरता से चार हज़ारी पद प्राप्त किया था। वह माली मामिलों की समझदारी के लिए जितना प्रसिद्ध था, वैयक्तिक साहस के लिए भी उतना ही ख्यातिनामा था। उसके ज्येष्ठ पुत्र का नाम दहारु था। वह भी वीर था। जैसे उसका पिता ४००० सैनिकों का स्वामी था, वैसे ही उसका पुत्र भी ७०० का मंसबदार था। ठट्ठ के युद्ध में वह वीर गति को प्राप्त हुआ था।

अबुल फ़ज़्ल, टोडरमल को व्यक्ति गत रूप से पसन्द नहीं करता था, परन्तु उसने उसकी दृढ़ता और योग्यता की प्रशंसा की है। वह उसपर हिन्दुओं का कट्टर पक्षपाती होने का लांछन लगाता था। यहाँ तक कि उसने इसकी शिकायत खुल्लम खुल्ला अकबर से की थी। पर सम्राट् ने टोडरमल की राजभक्ति और सेवाओं का स्मरण करके उत्तर दिया कि "मैं एक वृद्ध सेवक को पृथक् नहीं कर सकता हूं।"

टोडरमल हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी

दाम; और दो रत्ती तक कम होने पर मूल्य ३८ दाम। इससे अधिक घिसा हुआ रुपया चांदी के भाव में लिया जाता था।

दूसरी बार, १८ मेहर सन् २६ इलाही में, जब अज़दुद्दौला अमीर फ़तहउल्ला शीराज़ी[1] राज्य का अमीन नियुक्त हुआ, तो शाही फ़रमान (राजाज्ञा-पत्र) जारी हुआ, कि मोहर में तीन चावल और रुपये में छे चावल तक की घिसावट को, कम न माना जाय। इससे अधिक कम होने पर, न्यूनता के अनुसार मूल्य काटा जाय। यह नहीं, कि नौ चावल तक की कमी को यकसांही ख़्याल किया जाय। इस कारण से एक रत्ती कम वाली मोहर का मूल्य ३५५ दाम और कुछ भिन्न नियत हुआ। और एक रत्ती अंकित सोने की दर चार दाम और कुछ भिन्न मानी गई। पहले (टोडरमल के)

था। एक बार बादशाह के साथ उसको पंजाब जाना पड़ा। प्रस्थान की शीघ्रता में उसकी उपास्य श्री मूर्तियां खो गईं। वह बिना पूजन किये कोई कार्य नहीं करता था। इस लिए अब की बार उसको कई दिन बिना अन्न जल के रहना पड़ा। जब इस घटना की सूचना सम्राट् को मिली, तो उसने बड़ी कठिनाई से उसको सान्त्वना दी। उसके और बीरबल के धार्मिक विचारों में कुछ अन्तर था। बीरबल स्वर्ग-यात्रा के पहले ही 'दीन इलाही' मत का सदस्य हो चुका था, परन्तु टोडरमल ने अन्त तक उसको स्वीकार नहीं किया था। [विशेष विवरण के लिये द्वितीय ग्रंथ में मंसबदार नं० ३६ के जीवनचरित को देखिये।]

१—अमीर फ़तहउल्ला, शीराज़ (फ़ारस) का रहने वाला था। तत्वज्ञान और पदार्थ विज्ञान इसका चढ़ा बढ़ा था। यंत्र कला में वह विशेष दक्ष था। उसके गुणों पर मुग्ध होकर अबुल फ़ज़्ल कहा करता था, "यदि प्राचीन ग्रन्थ नष्ट हो जांय, तो अमीर उनका पुनर्निर्माण कर सकता है।" बीजापुर के आदिलशाह ने उसे फ़ारस से दक्षिण प्रदेश में बुलाया था। सन् ६९१ हि० में जब आदिल शाह का स्वर्गवास हो गया, तो सम्राट् अकबर ने उसे बुला लिया, और सद्र (प्रधान) का पद प्रदान किया। तीन साल बाद उसने उसको अमीनुलमुल्क की उपाधि प्रदान की। वह राजा टोडरमल की सहायता के लिए नियत किया गया। उसने उक्त कार्य बड़ी तत्परता से किया। अकबर ने प्रसन्न होकर उसकी उपाधि बदल दी और अज़दुद्दौला (राज्य की भुजा) की पदवी से उसे विभूषित किया। इसके बाद वह ख़ानदेश गया। सन् ६९७ में जब वह वापस आ रहा था, अकबर उस समय काश्मीर में था, अमीर फ़तहउल्ला को ज्वर आ गया। यह सोचकर कि "मैं हिकमत का ज्ञाता हूं, सब बातें जानता हूं, जो कुछ भी उपचार करुंगा, ठीक होगा", हकीम अली के विरोध करने पर भी हरीसा (एक प्रकारका हरीरा—जो गेहूं, मांस, घी, नमक और मसाला आदि से बनता है) खा लिया, जिससे वह मर गया।

अबुल फ़ज़्ल, फ़ैज़ी और बीरबल के बाद बादशाह सबसे अधिक प्रेम अमीर

क़ानून के अनुसार, मोहर में एक रत्ती कम होने पर पांच दाम घटाते थे, और तीन चावल से अधिक की कमी में भी यदि वह कमी आधा चावल होती, तो पाँचही दाम का हिसाब लगाते थे। १½ रत्ती की कमी के लिए, लेन देन में १० दाम कम किये जाते थे। यदि इतनी कमी न भी होती, तो भी दस दाम का ही हिसाब लगाते थे। परन्तु नए क़ानून (अज़दुद्दौला के क़ानून) के अनुसार वह ६ दाम और कुछ भिन्न घटाई गई और उसका मूल्य ३५३ दाम और कुछ भिन्न रह गया[१]। अज़दुद्दौला ने उस क़ानून को भी रद्द किया, जिसके द्वारा गोल रुपए का मूल्य, उसके पूर्णतया खरे होने और तौल में पूरे होने पर भी, चौकोर रुपए से एक दाम कम माना जाता था। एक रत्ती तक कम होने पर भी, उस गोल रुपए का मूल्य ४० दाम नियत किया। पहले यदि रुपया दो रत्ती कम होता, तो उसका मूल्य दो दाम कम समझा जाता था। पर अब उतनी ही कमी के लिए, उसके मूल्य में एक दाम और कुछ भिन्न कम किया जाता है।

तीसरे, जब अज़दुद्दौला ख़ानदेश गया, तो राजा टोडरमल ने मोहर का मूल्य, जो जलाला रुपयों में लगाया जाता था, गोल रुपयों में नियत कर दिया; और अपने स्वाभाविक पक्षपात तथा हठधर्मी से मोहर और रुपए की कमी को पहली रीति के अनुसार मुक़र्रर किया।

चौथे, जब राज्य की रक्षा का भार क़ुलीज ख़ाँ[२] पर आपड़ा, तो उसने मोहरों के मूल्य कूतने का नियम वही स्वीकार किया, जो कि राजा टोडरमल ने

फ़तहउल्ला से करता था। कई आविष्कार भी उसने किये थे, परन्तु अबुल फ़ज़्ल ने उनको अकबर के नाम से विख्यात किया हैं। अमीर की अबुल फ़ज़्ल से अच्छी बनती थी। उसके पुत्र को अमीर ने शिक्षा दी थी। "मीरातुल आलम" के लेखक के मतानुसार वह एक संसारी जीव था। बहुधा जब वह बादशाह के साथ शिकार में जाता था, तो कंधे पर बन्दूक़ और फेंट में बारूद रखकर शक्ति का प्रदर्शन करता हुआ चलता था।

"मआसिरुल उमरा" के लेखक का कथन है कि कुछ लोगों के मतानुसार वह तीन हज़ारी मंसबदारों में था। उसका नाम "तबक़ाते-अकबरी" अथवा "आईने-अकबरी" के मंसबदारों की सूची में नहीं है।

१—अज़दुद्दौला ने १ रत्ती मुद्रित सोने का मूल्य चार दाम और कुछ भिन्न नियत किया था। इसलिए पूरी तौल अर्थात् ११ माशे भर की मोहर का मूल्य (११ माशे × ८ रत्ती × ४ + कुछ भिन्न = ३५२ + कुछ भिन्न या लगभग ३५३ दाम या उससे कुछ अधिक) अबुल फ़ज़्ल के मतानुसार ३५३ दाम और कुछ भिन्न था। पहले इसी का मूल्य ३६० दाम था।

२—क़ुलीज अकबरी शासन के १७ वें वर्ष में, सबसे पहले सूरत के दुर्ग का शासक बनाकर भेजा गया था; जिसको अकबर ने ४७ दिन के घेरे के बाद जीत लिया

निश्चित किया था। परन्तु राजा मोहर की जितनी कमी के लिए, पांच दाम कम करता था, क़ुलीज ख़ां ने उसके लिए १० दाम घटाकर क्रय-विक्रय का बाज़ार परिचालित किया। जिस मोहर में राजा दस दाम कम करता था, उसने उसके लिए दुगना (२० दाम) घटाया जाना नियत किया। जो मोहर १½ रत्ती से अधिक कम होती थी, उसकी गणना उसने बिना सिक्का किये हुये सोने में की। जो रुपया[1] एक रत्ती से अधिक कम होता उसको वह बिना अंकित की हुई चांदी ख़्याल करता था।

सम्राट् राजाज्ञा-रक्षकों पर विश्वास करता था, और कार्यों की अधिकता के कारण वह पहले इस ओर बहुत कम ध्यान देता था। जब इस कारख़ाने के कुप्रबन्ध

था। क़ुलीज ख़ां तेइसवें वर्ष गुजरात भेजा गया; और शाह मंसूर की मृत्यु के बाद वह पिछले दो साल के लिए दीवान नियत हुआ। अट्ठाइसवें वर्ष गुजरात की विजय में फिर उसने भाग लिया। चौंतीसवें वर्ष उसे संभल की जागीर मिली। टोडरमल की मृत्यु के बाद, वह फिर दीवान बनाया गया। इसी समय उसने सिक्कों के मूल्य में हेर फेर किया। सन् १००२ हिजरी में वह काबुल का गवर्नर नियुक्त हुआ। परन्तु वहां वह असफल रहा। सन् १००५ हिजरी में वह अपने जामात्र शाहज़ादा दानियाल का शिक्षक बना। सन् १००७ हिजरी में, जब कि बादशाह ख़ानदेश में था, वह आगरे की गवर्नरी पर तैनात था। दो वर्ष बाद वह पंजाब और काबुल का सूबेदार नियुक्त किया गया। जहांगीर के गद्दी पर बैठने के बाद वह गुजरात भेजा गया, परन्तु दूसरे ही वर्ष पंजाब वापस गया। जहां उसको रौश-नाइयों से युद्ध करना पड़ा। सन् १०३५ हिजरी में उसकी मृत्यु हो गई। अपनी योग्यता द्वारा उसने चार हज़ारी की पदवी प्राप्त की थी। वह पक्का सुन्नी था। वह कवि भी था। उसका कविता सम्बन्धी नाम 'उलफ़ती' था।

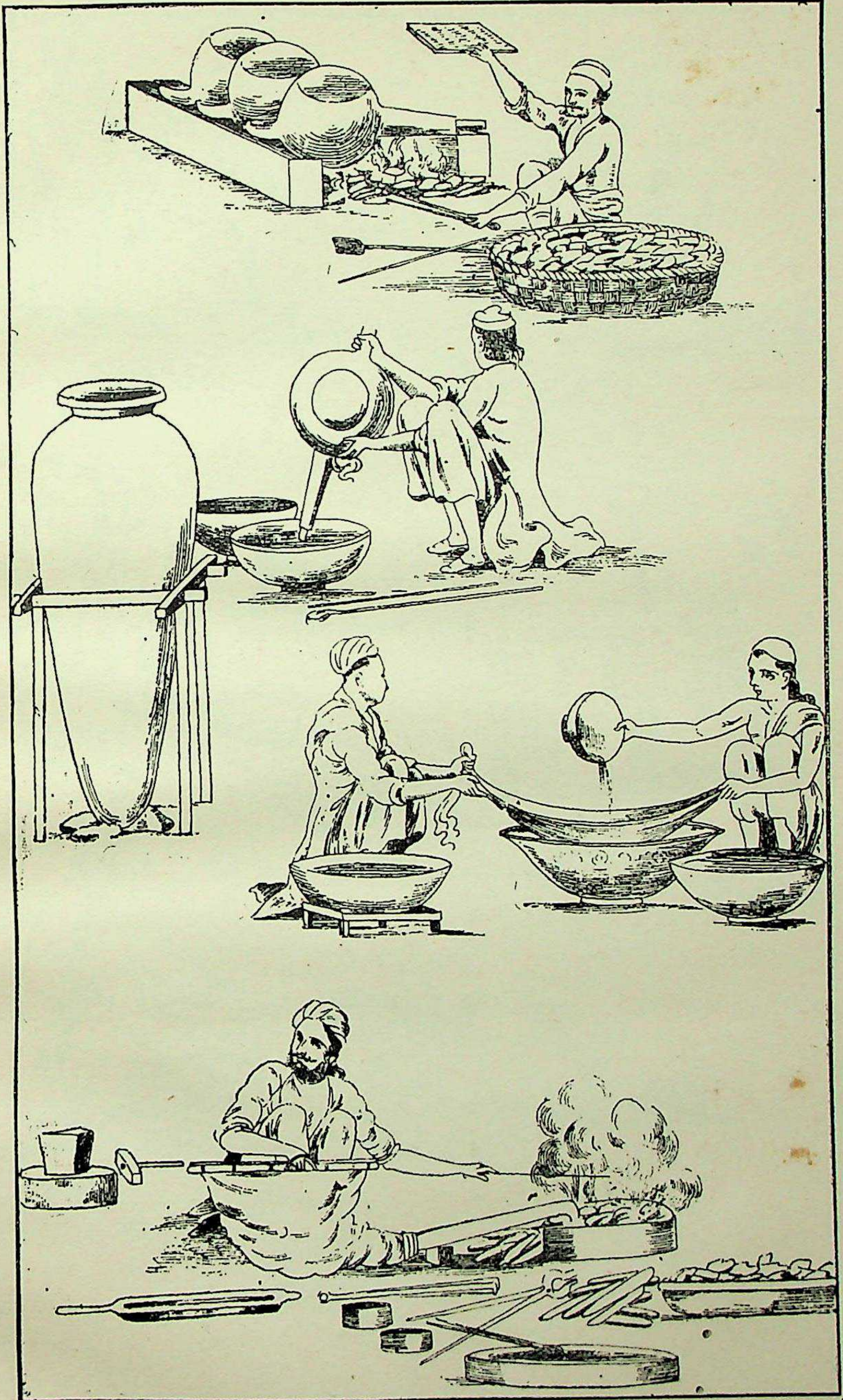
१—संसार के वर्तमान समय के मुख्य सिक्कों और अकबरी रुपए में कितना अन्तर है, यह इस तालिका से जाना जाता है। इस में सब सिक्कों का तुलनात्मक मूल्य शिलिङ्ग और पेंसों में है। अकबरी रुपया आज कल के हिसाब से लगभग २ शिलिङ्ग ३ पेंस का था, और भारतवर्ष का प्रचलित कल्दार रुपया इस तालिका के अनुसार इंग्लैण्ड के १ शिलिङ्ग ६ पेंस के बराबर है। विनिमय तथा सोने चांदी के घटने बढ़ने के अनुसार इनके मूल्य में भी कमी बेशी होती रहती है।

देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य शि०	पेंस
अर्जेनटिना	पेसो (काग़ज़) = १०० सेन्तावो	१	८
	,, (स्वर्ण) = ,, ,,	४	०
आस्ट्रिया	शिलिङ्ग = १०० ग्रोशेन	०	७
बेलजियम	फ्रैंक = १०० सेण्टाइमस्	०	१½

की ख़बर उस तक पहुँची, तो उसने एक उत्तम व्यवस्था निर्धारित की, जिससे सुदूरवर्ती और निकटवर्ती आनन्दित हुये और संसार हानि उठाने से बच गया।

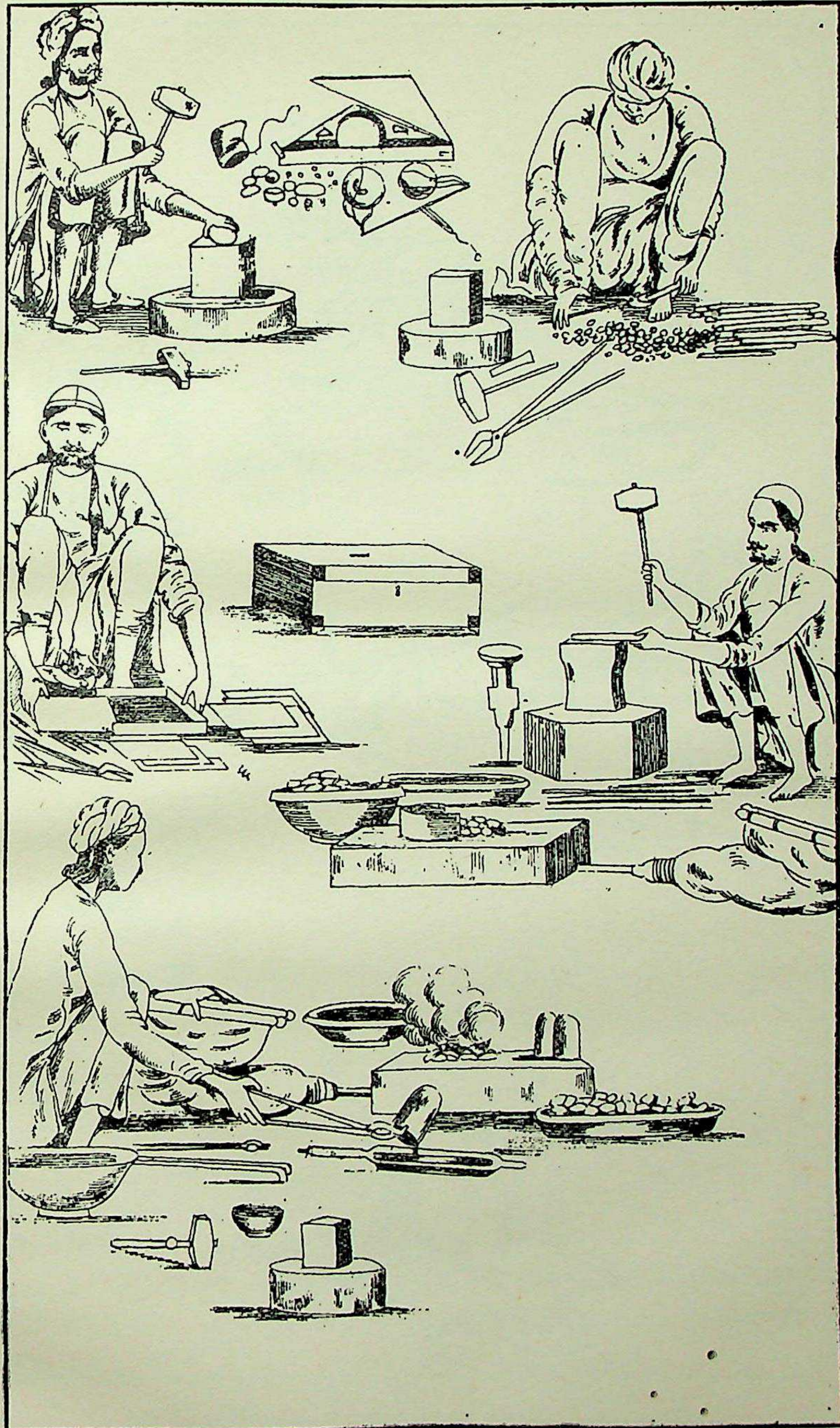
देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य शि०	पेंस
बेलजियम	बेल्गा = ५ .फ्रैंक	०	७
ब्रेज़िल	क्रूज़ीरो = ४ मिलरेई	२	०
	मिलरेई (काग़ज़) = १००० रेई	०	६
ब्रिटिश हण्डूरास (अमेरिका)	डालर (स्वर्ण) = १०० सेण्टस्	४	१
बुलगेरिया	लेव = १०० स्टोटिंकी	०	०½
कनाडा	डालर (स्वर्ण) = १०० सेण्टस्	४	१
लङ्का	रुपया = १६ आना	१	६
चिली (दक्षिणी अमेरिका)	पेसो (स्वर्ण) = १०० सेन्तावो	०	६
चीन	टाएल (Tael) (डालर) = १०० ताम्र मुद्रा	२	८
क्यूबा (मैक्सिको की खाड़ीमें)	पेसो (स्वर्ण) = १ डालर (अमेरिका)	४	१
चेको-स्लोवाकिया	क्रोन	०	१½
डेनमार्क	क्रोन = १०० ऊर	१	१¼
मिस्र	मिस्री पौण्ड = १०० पियास्टरस्	२०	६¼
फ़िनलैण्ड	मर्का = १०० पेनी	०	१¼
फ्रान्स	फ्रैंक = १०० सेन्टाइमस्	०	२
जरमनी	राइशमार्क = १०० .फेनीक (Pfennige)	०	११¾
ग्रीस	ड्राकमा = १०० लेप्टा	०	०½
हालैण्ड	.फ्लोरिन = १०० सेण्टस्	१	८
हंगेरी	पेंगो = १०० फ़िलर	०	८½
हिन्दुस्तान	रुपया = १६ आना	१	६
इटली	लीरा = १०० सेण्टाइमस्	०	२½
जापान	येन = १०० सेन	२	०½
मारिशस	रुपया = १६ आना	१	६
मैक्सिको	डालर (स्वर्ण) = १०० सेन्तावो	२	०½
	पेसो (स्वर्ण) = ५० सेण्टस् (अमेरिका)	२	०½
न्यूफ़ाउण्डलैण्ड	डालर (स्वर्ण) = १०० सेण्टस्	४	१
नार्वे	क्रोन = १०० ऊर		१½

टकसाल के कर्मचारी



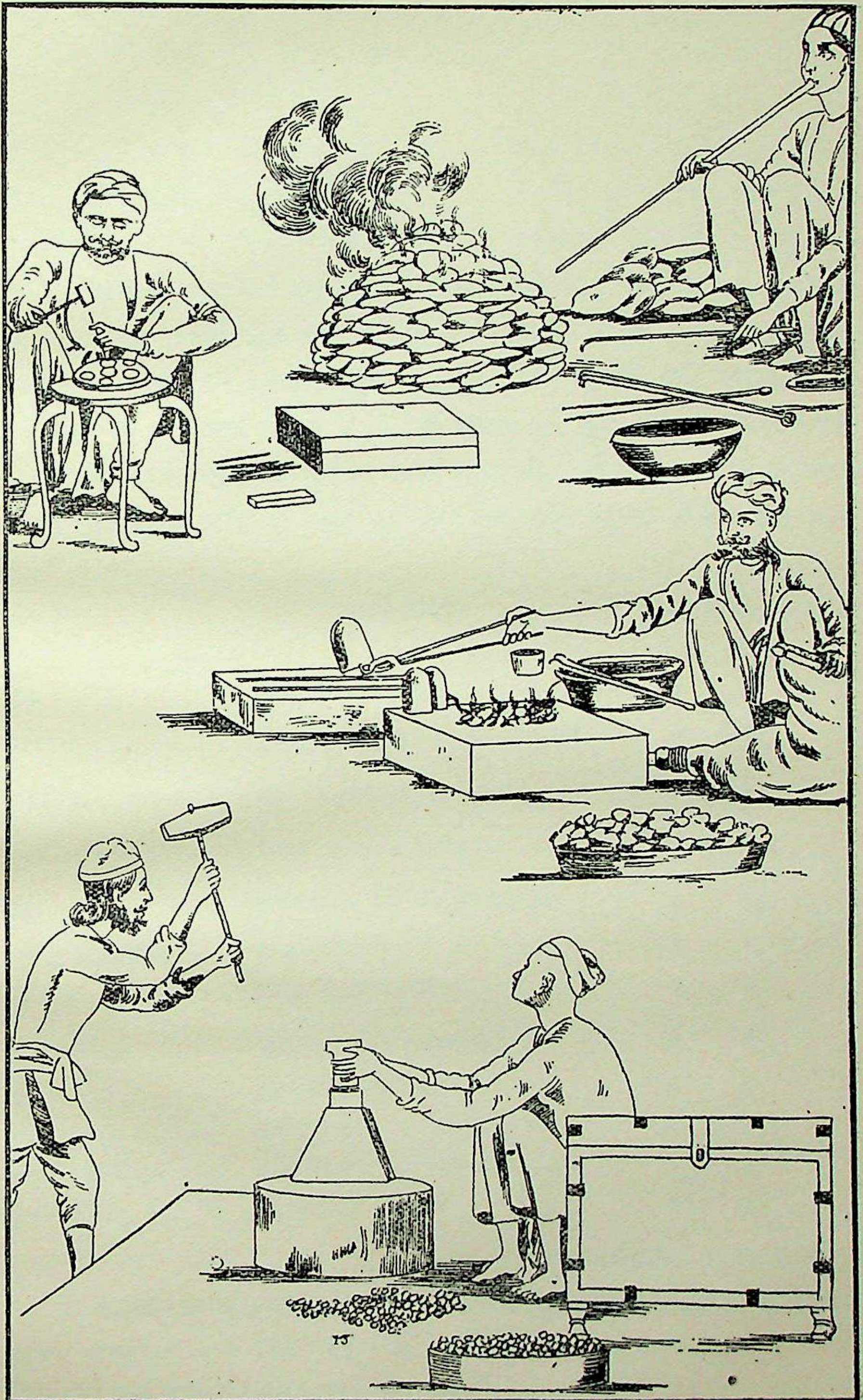
पृ० ३७ से ४६ तक देखिये

टकसाल के कर्मचारी



पृष्ठ ३७ से ४६ तक देखिये

टकसाल के कर्मचारी



पृष्ठ ३७ से ४६ तक देखिये।

तारीख़ २६ बहमन[१] सन् ३६ इलाही (१५९२ ई०) को दूसरा क़ानून (अर्थात् अज़दुदौला का क़ानून) स्वीकार किया गया। पर उसके अनुसार तीन चावल तक घिसी हुई मोहर और छे चावल तक कम रुपया, जो पहले पूरे वज़न का शुमार किया जाता था, पूरी तौल का माना जाना स्वीकार नहीं किया गया। इससे कमीने चोट्टों की शक्ति क्षीण हो गई। यदि टकसाल के कर्मचारी ही सिक्का उतनी तौल में कम बनाते अथवा ख़ज़ाने के अधिकारी उतना वज़न कम कर देते, तो पहले के क़ानूनों में इसका कोई उपचार नहीं था। पर इस नई व्यवस्था से सचाई का बाज़ार सज गया और संसार सुखी हो गया। इसके अतिरिक्त, निर्लज्ज चोट्टे छांट कर हलके चावलों से सिक्का तौलते थे और तीन चावल घिसी हुई मोहर को छे चावल ठहराते थे, एवं छे चावल कम होने पर नौ चावल घटाते थे। इसी प्रकार वह कमी बराबर बढ़ती जाती थी, और बहुत सा सोना बीच में ही हड़प लिया जाता था तथा धूर्त लोग सदा क्षति पहुँचाने में लगे रहते थे।

देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य	
		शि०	पेंस
पेरू	लिब्रा = १० सोल	२०	०
पुर्तगाल	इस्क्यूडो (स्वर्ण) = १०० सेण्टावो	४	५$\frac{१}{४}$
रूमानिया	लेउ = फ़्रैंक = १०० बनी	०	$\frac{१}{४}$
रूस	रूबल = १०० कापेक	२	१$\frac{१}{२}$
स्पेन	पिएसटा = फ़्रैंक = सेण्टाइमूस	०	९$\frac{१}{२}$
स्ट्रेट्स सेटूलमेण्ट्	डालर (चांदी)	२	४
स्वीडेन	क्रोना = १०० ऊर	१	१$\frac{१}{२}$
स्वीट्ज़रलैण्ड	फ़्रैंक = १०० सेण्टाइमूस	०	९$\frac{१}{२}$
टर्की	लीरा = १०० पियास्टर	१८	०
अमेरिका (यू० स्टेट्स)	डालर (स्वर्ण) = १०० सेण्टस्	४	१
उरूवे (अमेरिका)	पेसो (स्वर्ण) = १०० सेण्टाइमूस	४	३
युगो-स्लेविया	दीनार = १०० परस	०	९$\frac{१}{२}$

(Nelson's World Gazetteer, 1932, P. 575).

१—फ़ारसी का ग्यारहवां महीना जो बहुधा फाल्गुन के इधर उधर पड़ता है और कभी कभी फाल्गुन में ही। हर सौर मास के प्रति दूसरे दिन का नाम भी बहमन होता है।

इस लिए सरकारी हुक्म से **बाबाग़ोरी**[१] चावल बनाये गये, और उनसे सिक्के तौला जाना निश्चित हुआ। उसी वर्ष और उसी मास में इस बात का भी बहुत प्रयत्न किया गया कि ख़ज़ांची और अमल परदाज़ प्रजा से किसी ख़ास तरह के सिक्के न मांगें। लोग, जो कुछ भी दें, उसकी तौल और खराई में जो कमी हो, हाल की दर के अनुसार हिसाब करके—विना कुछ और घटाये बढ़ाये—लेलें। इस पवित्र आज्ञा ने झूठे व्यौहारियों की जड़ काट दी, लोभियों को सन्तोष की शिक्षा दी और सम्पूर्ण प्रजा को अत्याचारियों की दुष्टता से मुक्ति दिलाई।

आईन ११।

दिरहम और दीनार।

राजकीय मुद्राओं की विलक्षणता लिखी जा चुकी, अब इन दो नगदों का कुछ वृत्तान्त वर्णन करता हूँ, और प्राचीन मुद्राओं का पद प्रकाश-शिखर पर लाता हूँ।

१—बाबा शब्द तुर्की भाषा का है, जो पिता, प्रपिता, नाना, सरदार, सफ़ेद दाढ़ी वाले व्यक्ति तथा स्वतन्त्र मुसलमान फ़क़ीर के लिए प्रयुक्त होता है। ऐंग्लो इण्डियन् कुटुम्बों में बाबा शब्द बच्चे के लिए प्रयोग किया जाता है। ऐंग्लो इण्डियनों का बाबा शब्द अंग्रेज़ी के बेबी (Baby = बच्चा) शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। ग़ोरी से तात्पर्य ग़ोर के रहने वाले से है।

बाबाग़ोरी वह रक्षक फ़क़ीर या शहीद कहलाता था, जिसके संरक्षण में अपने को देकर कर्मचारी खान में प्रवेश करते थे। कापलैण्ड ने १८१८ ई० में ऐसे एक साधू की क़ब्र के होने का उल्लेख किया है। उसका कहना है कि यह क़ब्र इस देश में एक चोटी पर बनी हुई है, जिसकी पूजा फ़क़ीर के बजाय देवता के रूप में अधिक होती है? (Copland in Transactions of the Literary Society of Bombay, i. 294)। इसके अतिरिक्त एक किंवदन्ती है कि बाबा ग़ोरी नामक एक युवराज ग़ोरवंश का था। जो उस देश में युद्ध में मारा गया था। किन्तु इतिहास में इस युवराज का कहीं पता नहीं चलता? (Hobson Jobson, P. 43)।

यहां पर इन बाबा ग़ोरियो में से किसी का अभिप्राय नहीं है। वरन् यहां पर उस उत्तम श्वेत मणि से आशय है, जिसके गुरियों की मालाएं गुजरात के लिमदुरा में सन् १५१६ में पहनी जाती थीं, (Barbosa, 67)। ब्लाकमैन के मतानुसार अकबरी दरबार के जवाहरात तौलने के सभी बांट इन्हीं बाबाग़ोरी मणियों के बने हुये थे, (Blochmann's Text Edition of Ain-i-Akbari, II, 60)।

दिरहम[१]—लोग इसे दिरहाम भी कहते हैं। यह एक चांदी[२] का सिक्का था, जिसकी शक्ल खजूर की गुठली के समान थी, ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ के शासन काल में यह गोल बनाया गया, और ज़ब्बीर के राजत्व काल में उस पर "अल्लाह" और "बरकत" शब्द खोदे गये। हज्जाज ने उस पर इख़लास[३] की सूरत खुदवाई। अनेक व्यक्ति कहते हैं कि उसने उस पर अपना नाम भी अङ्कित कराया था। बहुत लोग कहते हैं कि दिरहम पर, जिसने सब से पहले सिक्का लगाया, वह उमर फ़ारूक़ था। कुछ लोगों का कथन है कि मर्‌वान-सुत अब्दुल मलिक के समय में रूमी दीनार और हमीरी एवं क़िसरवी दिरहम प्रचलित थे। अब्दुल मलिक की आज्ञा से यूसुफ़-सुत हज्जाज ने दिरहम पर छाप लगाई। कुछ लोग ऐसा अलापते हैं कि हज्जाज ने खोटे दिरहमों के माल को खरा किया और उन पर "अल्लाहु अहद्[४]" तथा "अल्लाहुसमद्[५]" का ठप्पा लगाया। इन दिरहमों का नाम मकरूहा (अपवित्र) पड़ा; क्योंकि इन से ईश्वर के पवित्र नाम की प्रतिष्ठा नहीं होती थी। अथवा परिवर्तन होने के कारण लोग उनको इस नाम से पुकारने लगे थे। हज्जाज के बाद, हुबैरा-पुत्र उमर ने, अब्दुल मलिक-सुत यज़ीद के शासन काल में, इराक़ राज्य के अन्तर्गत, दिरहमों को उससे (हज्जाज से) बहुत बढ़िया बनाया। पश्चात् इराक़ के शासक, अब्दुल्ला क़सरी के पुत्र ख़ालिद ने उसको और भी साफ़ बनाया। उसके बाद यूसुफ़-सुत उमर ने उसकी शुद्धता पराकाष्ठा को पहुँचादी। यह भी कहते हैं कि दिरहम को जिसने पहले पहल मुद्रित किया वह ज़ब्बीर-सुत मसअ़ब था। उसकी तौल तरह तरह की बतलाते हैं, जैसे १० या ६ या ६ या ५ मिसक़ाल। पर अन्य व्यक्ति कहते हैं कि उनका वज़न २० क़ीरात[६]

१—इसका नाम दिरम भी है। कोई कोषकार इसे अ़रबी भाषा का और कोई फ़ारसी भाषा का बतलाता है। किसी किसी का मत है कि लोअर रोम साम्राज्य के सिक्के ड्रैहम या ड्रैकमा (Drachma) का यह विकृत रूप है। कलाममजीद के सूरए यूसुफ़ में दिरहम का बहुवचन दिराहम शब्द आया है। साधारणतया दिरहम ३॥ माशे तौल को कहते हैं।

२—संसार में बहुत दिनों से कई धातुओं के सिक्के चल रहे हैं। ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व लाइकर्गस ने स्पार्टा में लोहे का सिक्का चलाया था। मलय उपद्वीप में टीन का सिक्का चलता रहा है। भारत में दक्षिण पथ के अन्ध्र राजा सीसे के सिक्के बनवाते थे। चीन का पीतल का सिक्का तो प्रसिद्ध ही है।

३—क़ुरान में एक सूरत है।

४—ईश्वर एक है।

५—ईश्वर नित्य है।

६—कैरट क़ीरात का ही रूपान्तर है। इसका उल्लेख ३२ पृष्ठ के नोट में हो चुका

१२ क़ीरात और १० क़ीरात था। उमर फ़ारुक ने हर प्रकार का एक एक दिरहम लिया, और इन सब के तौल का तिहाई, अर्थात् चौदह क़ीरात का एक दिरहम बनाया। अनेक व्यक्तियों का यह कहना है कि उमर के समय में कई प्रकार के दिरहम प्रचलित थे; उनमें से एक प्रकार का ८ दांग का था, जिसे बग़ाली कहते थे, यह शब्द रासबग़ल के नाम से सम्पर्क रखता था, जोकि एक पारखी था, और जिसने उमर ख़त्ताब की आज्ञा से दिरहम पर सिक्का लगाया था। किसी किसी ने कहा है कि इसका सम्बन्ध शब्द बग़ल से है, जो कि एक गांव का नाम है। दूसरे प्रकार का चार दांग का था, जिसको **तबरी** कहते थे। तीसरे प्रकार का दिरहम तीन दांग का था, जो **मग़रबी** कहलाता था। चौथे क़िस्म का एक दांग का था, वह **यमनी** नाम से प्रसिद्ध था। उमर ख़त्ताब ने चारों प्रकार के दिरहमों को लेकर, उनके आधे वज़न का यकवज़ना दिरहम चलाया। **फ़ाज़िल ख़ुजन्दी**[1] का कहना है कि प्राचीन समय में दिरहम दो

है। कुछ लोगों का मत है कि अरबी क़ीरात शब्द ग्रीक भाषा के Kepátlov शब्द से, जो कि एक पेड़ की (जिसको अंग्रेज़ी में Carob कहते हैं और भूमध्य सागर की तरफ़ होता है) फली का दाना है, निकला है। यह दाना हिन्दुस्तानी रत्ती या घुंघुची के समान तौलने के काम में लाया जाता था, (Hobson-Jobson P. 160.)। कैरट जवाहरात तौलने के भी काम में आता था, और अब भी वे उसी से तौले जाते हैं, (आईने-अकबरी पृ० २७ नोट)। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि तेरहवीं शताब्दी में सुन्दरता की जांच के लिए भी कैरट प्रयोग किया जाता था, जैसा कि मार्को पोलो की यात्रा में उल्लिखित सन् १२६८ ई० की एक घटना से प्रकट होता है—"ख़ान आज़म ने अपने कमिश्नरों को प्रान्त में भेजा और आज्ञा दी कि वे चार पांच सौ युवती तथा रूपवती स्त्रियों को, उनकी सुन्दरता की जांच करके ले आवें। कमिश्नरों ने प्रान्त भर की लड़कियों को परखियों के सामने इकट्ठा किया। फिर वे अपने रूप के अनुसार क्रमान्वित की गईं। उनमें से कोई १६ कैरट की और कोई कोई १७, १८ या २० कैरट की थीं। कमिश्नरों ने उनमें से आवश्यक संख्या में उन सुन्दरियों को छांट लिया, जो कि ख़ान द्वारा निश्चत परिमाण—२० या २१ कैरट के अनुकूल थीं, (Marco Polo, 2nd. ed. I. 350-351)। साधारणतः कैरट ४ ग्रेन का माना जाता है, किन्तु वास्तव में वह $३\frac{१}{६}$ ग्रेन के लगभग होता है, और $१\frac{७}{८}$ ग्रेन ट्राय की १ रत्ती होती है।

१—ख़ुजन्द क़सबा एशिया में सीर दरिया के किनारे पर है, यह यूनियन आफ़ सोशियलिस्ट सोवियट रिपब्लिक्स के अन्तर्गत उज़बक प्रजातन्त्र है। रेशम, रुई, सूत और अंगूर आदि यहां की उपज हैं। इसकी जन संख्या ३७००० है। (Nelson's World Gazetteer, 1932, P. 260)।

प्रकार के थे। उनमें से पहले का नाम आठ दांगी और छे दांगी था, जिसका १ दांग=२ क़ीरात; १ क़ीरात=२ तस्सूज; १ तस्सूज=२ हब्बा; दूसरा नाक़िस था, जो ४ दांग और कुछ भिन्न भर था। इस सम्बन्ध में लोगों के और भी अनेक मत हैं।

दीनार[१]—एक सोने का मुद्रा है, एक मिसक़ाल भर का; १$\frac{३}{७}$ दिरहम के बराबर। कहते हैं १ मिस्क़ाल=६ दांग; १ दांग=४ तस्सूज; १ तस्सूज=२ हब्बा; १ हब्बा=२ जौ; १ जौ=६ ख़रदिल; १ ख़रदिल=१२ फ़ल्स; १ फ़ल्स=६ फ़तील; १ फ़तील=६ नक़ीर; १ नक़ीर=६ क़तमीर; १ क़तमीर=१२ ज़र्रा। इस हिसाब से एक मिसक़ाल ९६ जौ का होता है। **मिस्क़ाल** एक बांट है, जिससे लोग सोना तौलते हैं; और एक सिक्का किया हुआ मुद्रा भी है। कुछ प्राचीन लेखों से ज्ञात होता है कि यूनानी मिसक़ाल का चलन बन्द हो गया है और वह इस मिसक़ाल से २ क़ीरात कम है। साथ ही यूनानी दिरहम भी दूसरे दिरहमों से भिन्न है; वह तौल में औरों से $\frac{१}{६}$ या $\frac{१}{४}$ मिसक़ाल कम होता है।

१—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किसी समय एशिया और यूरप के बहुत से भागों में था। यह कहीं सोने का और कहीं चाँदी का होता था। देश भेद से इसके मूल्य में भी भेद था।

मुसलमानों के आने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था। हरिवंश और महावीर चरित में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है। सांची में बौद्ध स्तूप का जो बड़ा खंडहर है, उसके पूर्व द्वार पर सम्राट् चन्द्रगुप्त का एक लेख है। उस लेख में दीनार शब्द आया है। अमरकोष में भी दीनार शब्द मौजूद है, और निष्क के बराबर अर्थात् दो तोले का माना गया है। रघुनन्दन के मत से दीनार ३२ रत्ती सोने का होता था। अकबर के समय में, जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक मिसक़ाल अर्थात् आधे तोले के अन्दाज़ था।

हिन्दुस्तान की तरह अरब और फ़ारस में भी प्राचीन काल में दीनार नामक सिक्का प्रचलित था। अरबी और फ़ारसी कोषकारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है, पर फ़ारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था। इसके अतिरिक्त रोमन लोगों में भी यह सिक्का दीनारियस के नाम से प्रचलित था। धात्वर्थ पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्य भाषा ही का प्रतीत होता है (शब्दसागर)। बग़दाद के ख़लीफ़ा हारूंरशीद (७८६-८०९ ई०) के समय का एक दीनार ब्रिटिश म्यूज़ियम लन्दन में मौजूद है। इब्न बतूता (१३९३) के अनुसार भारतीय दीनार पश्चिमी दीनार से मूल्य में ढाई गुना अधिक था, (Ibn Batuta, iii. 106.)।

आईन १२

सोने और चांदी[1] में व्यवसायियों का लाभ।

दस बान वाले एक तोले सोने का मूल्य ११ माशे वाली एक गोल मोहर है। यदि सोना चौथाई बान कम हो अर्थात् ९$\frac{3}{4}$ बान का हो, तो १ मोहर से एक तोला २ रत्ती (सोना) लेते हैं; यदि आधा बान कम हो, तो १ तोला ४ रत्ती; यदि पौन बान कम हो, तो १ तोला ६ रत्ती; यदि सोना नौ बान का हो तो १ मोहर से १ तोला और १ माशा लेते हैं। इसी प्रकार हर बान की कमी के बदले में १ माशा सोना अधिक लेते हैं।

१—कौटिल्य के अर्थ शास्त्र से मालूम होता है कि उस समय जनता के नाना प्रकार के आभूषण सरकारी प्रधान कर्मचारियों की देख रेख में तथा टकसाल घर में बनाये जाते थे जैसा कि "सुवर्णाध्यक्ष का कार्य" के आरम्भ में लिखा है:—"सुवर्णाध्यक्ष सोने चांदी के गहने बनवाने के लिये अक्षशाला (टकसाल) बनवाये, जिसमें प्रथक् प्रथक् चार कमरे हों और एक दरवाज़ा हो। विशिखा नामक सड़क के बीच में कुलीन, विश्वसनीय और चतुर सुनार को रक्खा जाय।···सौवर्णिक (राजकीय सुनारों का अध्यक्ष) ग्रामीणों तथा नागरिकों का सोना चांदी लेकर कारीगरों से उनकी चीज़ें बनवाये। कारीगर नियत समय तथा कार्य के अनुसार काम करें। जो काम का बहाना करके नियत समय पर काम पूरा न करें अथवा काम बिगाड़ दें उनका वेतन काट लिया जाय और वेतन का दुगना जुर्माना किया जाय। देर करने पर चौथाई वेतन काटा जाय तथा उसका दुगना दंड दिया जाय। जितना तथा जैसा माल लिया जाय वैसा ही लौटाया जाय।··········(कौटिल्य-अर्थशास्त्र, अधिकरण २)।

सुनारों की तरह तरह की चोरी को रोकने के लिये कौटिल्य ने उनका इस प्रकार वर्णन किया है:—"सुनार लोग चालाकी से सोने को इस प्रकार गलाते हैं कि उसका कुछ अंश पहले से ही आग में गिर जाय। बहुधा परीक्षा के समय उसे दूसरी धातु से बदल लेते हैं। इन युक्तियों से सोना निकाल लेते हैं। इसको विस्रावण कहते हैं।" इसी प्रकार उसने तुलाविषम, अपसारण, पेटक, पिंक, परिकुट्टन, अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन नामक रीतियों में तरह तरह के उपायों से चोरी का सविस्तर वर्णन किया है। जैसे, "हड़ताल, मैनसिल, सिंगरफ आदि में से किसी एक को कुरुविन्द (रत्न या धातु विशेष) के चूर्ण के साथ मिलाकर और उसको कपड़े में रखकर रगड़ने का नाम परिमर्दन है। परिमर्दन से सोने तथा चांदी के वर्तन घिस तो जाते हैं किन्तु देखने में ज्यों के त्यों बने रहते हैं। टूटे हुये टुकड़ों एवं घिसे हुये गहनों में उन्हीं के समान गहनों के द्वारा, पत्र वाले गहनों में टूटे हुये पत्र के द्वारा, और बिगड़े हुये गहनों में तपाने तथा पानी में रगड़ने के द्वारा सोने की चोरी का पता लगाना चाहिये।"

सौदागर १०० लाल जलाली मोहरों से, १३० तोले २ माशे $\frac{५}{८}$ रत्ती हुन का सोना, जो ८$\frac{१}{४}$ बान का होता है, ख़रीदता है। इसमें से २२ तोले १० माशे ७$\frac{१}{२}$ रत्ती आग में जल जाता और खा़के-खलास में मिल जाता है। १०७ तोले ४ माशे १$\frac{१}{८}$ रत्ती खा़लिस सोना शेष रह जाता है। जब वह सोना, राजकीय छाप द्वारा सुकीर्ति प्राप्त करता है, अर्थात् सिक्का किया जाता है, तो उसकी १०५ मोहरें बनती हैं; और लगभग $\frac{१}{२}$ तोला सोना जिसका मूल्य ४ रु० होता है, शेष रह जाता है। खाके-खलास से २ तोले ११ माशे ४ रत्ती सोना, और ११ तोले ११$\frac{१}{२}$ माशे $\frac{१}{२}$[1] रत्ती चांदी हाथ लगती है। दोनों का मूल्य ३५ रुपए १२$\frac{१}{२}$ तंगा[2] होता है। इस प्रकार उपर्युक्त सोने की पूर्ण उपलब्धि १०५ मोहरें, ३६ रुपए, २५ दाम होते हैं।

"सुवर्णाध्यक्ष को चाहिये कि "वह अवक्षेप (इधर उधर सोने को छिपाना) प्रतिमान (बट्टों की घटी बढ़ी), अग्नि, गंडिका (निहाई), भंडिका (घरिया), अधिकरणी (बिछौना), पिच्छ (कटिया), सूत्र (सूत), चेल्ल बोलन (वस्त्र), पगड़ी, उत्संग (जंघा), मक्षिका, शरीर निरीक्षण (शरीर को इधर उधर देखना), सोना बुझाने का पानी का बर्तन और अग्निष्ठ (अंगीठी) इत्यादि को देखकर चोरी का पता लगावे" (कौटि०—अर्थ०, अधिकरण २)।

१—ब्लाकमैन के अनुवाद में ग़लती से ४$\frac{१}{२}$ रत्ती छप गया है।

२—संस्कृत में जो टंक (देखिये पृ० २६ का नोट २) शब्द है, महाराष्ट्र भाषा का टांक उसी का रूपान्तर है। मालूम होता है कि उसी से टका और तंगा शब्द बने हैं। कई कोषकारों के अनुसार तंगा तुर्की भाषा का शब्द है। ग़यासुल्लुग़ात में तंगा का अर्थ सोने, चांदी अथवा तांबे का प्रचलित सिक्का लिखा हुआ है। यह ठीक भी है क्योंकि फ़ीरोज़शाह ने सोने और चांदी के तरह तरह के तंगे बनवाये थे (Tarikh-i-Firoze Shahi, in Elliot, iii. 351)। आज कल तंगा विशेषतर तुर्किस्तान में चलता है और वह चाँदी का होता है। डब्लू इर्स्किन का कहना है कि तंगा चग़ताई तुर्की के तंग शब्द से निकला है, जिसका अर्थ सफ़ेद होता है। "ग़यासुल्लुग़ात" के अनुसार तुर्किस्तान और बदख़शां में तंग नाम के प्रदेश हैं। संभव है, इन्हीं के नाम से सिक्के का नाम तंगा पड़ गया हो। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में टंका या तंगा दिल्ली के बादशाहों का एक लोकप्रिय सिक्का रहा है; पीछे से यही रुपए के रूप में परिवर्तित हो गया (Hobson-Jobson)। टका—चांदी का एक पुराना सिक्का, रुपया (शब्द सागर)। बंगाल में टंका—टाका के नाम से आज तक प्रचलित है और बंगभाषा भाषी उसे रुपए के लिए प्रयोग करते हैं। इब्न बतूता ने भी उस समय के सिक्कों का नाम, जिसको कि उसने देखा था, तंगा या सोने का दीनार लिखा है। और उसका तुलनात्मक मूल्य चांदी के दस दीनार बतलाये हैं। 'मसालिकुलअबसार' (१३४०

इसका हिसाब इस प्रकार से होता है। पहले, २ रु० १८½ दाम कारीगर अपनी मज़दूरी में उस हिसाब से लेते हैं, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। दूसरे, ५ रु० ८ दाम ८ जीतल का मसाला ख़र्च होता है, यथा:—धातु के साफ़ करने में १ रु० ४ दाम १½ जीतल व्यय होता है (२६ दाम १६½ जीतल के कंडे + ४ दाम २० जीतल की सलोनी + १ दाम १० जीतल का पानी + ११ दाम ५ जीतल का पारा), ख़ाके-ख़लास की कार्रवाई के लिए ४ रु० ४ दाम ६¼ जीतल (२१ दाम ७¼ जीतल का कोयला; ३ रुपए २२ दाम २४ जीतल का सीसा)। तीसरे, ६ रुपए ३७½ दाम माल वाला व्यापारी से इस कारण से लेता है, कि उसने सोने को उक्त लाभ प्राप्ति के लिए लगाया था। यदि यह पूंजी ख़ालसा की होती है तो उपर्युक्त रक़म (६ रुपए ३७½ दाम) दीवान के पास जाती है। चौथे, व्यापारी सोना लाने के बदले में १०० लाल जलालो मोहरें लेता है। पांचवें, १२ रुपए ३७ दाम ३½ जीतल, व्यापारी लाभ स्वरूप लेता है। छठे, ५ मोहर १२ रुपए ३½ दाम ख़ालसा में जमा होते हैं। व्यापारी इस हिसाब से लाभ उठाते हैं।

यद्यपि भारतवर्ष में सोना (बाहर से) आता है, परन्तु इस देश के उत्तरीय पर्वतों में वह बहुत होता है और तिब्बत में भी पैदा होता है। गंगा और सिंध नदी की बालू से भी, सलोनी क्रिया द्वारा सोना निकाला जाता है। इस देश के बहुत से दरियायों को बालू में सोना मिला हुआ है, परन्तु परिश्रम की विशेषता और व्यय की अधिकता के कारण, प्रत्येक नदी के किनारे उक्त क्रिया नहीं की जा सकती।[३]

ख़ालिस चांदी एक रुपए की १ तोला २ रत्ती बिकती है, अतः व्यवसायी ६५० रुपए से ६६६ तोले ६ माशे ४ रत्ती ख़रीदता है। इसमें से ५ तोले

ई०) के लेखक ने इन्हीं चांदी के दीनारों को 'भारतवर्ष का चांदी का दीनार' लिखा है। फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ (१३३८–१३५१) के शासनकाल में तंगे पूर्ववत् बनते रहे किन्तु बहलोल लोदी (१४८८–१५१७) के समय में वे तांबे के बनने लगे। उस समय चांदी का एक तंगा तांबे के २० तंगों में चलता था। गोआ में अब भी इस नाम से एक सिक्का ६० रेई या २ पेंस में चलता है। ब्लाक्मैन के अनुसार १ तंगा=२ दाम; आज कल १ तंगा=२ पैसा (Ain-i-Akbari translated into English by H. Blochmann 1873, Vol. I, P. 37, note)।

३—मोरलैण्ड ने लिखा है कि अबुल-फ़ज़्ल के समय में भारतवर्ष में "मूल्यवान् धातुओं में सोना उल्लेख करने के योग्य नहीं उत्पन्न होता था। दक्षिण प्रदेश में आये हुये पर्यटकों के साक्ष्य से सिद्ध होता है कि उन दिनों मैसूर की खानों में कार्य होना आरम्भ नहीं हुआ था। अबुलफ़ज़्ल ने

४$\frac{3}{4}$ रत्ती चांदी, सलाख़ बनाने में जल जाती है। शेष चांदी में १००६ रुपए तैयार होते हैं, और २७$\frac{1}{2}$ दाम की चांदी बच रहती है। इसमें हानि लाभ का विवरण इस प्रकार है :—पहले, २ रुपए २२ दाम १२ जीतल कारीगरों की मजदूरी होती है (अर्थात् तराज़ूकश ५ दाम ७$\frac{3}{4}$ जीतल; चाशनीगीर ३ दाम ४$\frac{1}{4}$ जीतल;

उत्तर भारत में नदियों की रेती से सोना निकालने का उल्लेख किया है, वह प्रथा अब भी जारी है। चांदी भी केवल परिमित परिमाण में प्राप्त होती थी। अबुल-फ़ज़्ल ने आगरे की एक खान का उल्लेख किया है किन्तु उसमें ख़र्च तक नहीं निकलता था। नदियों तथा कुमायूं के पर्वतों से चांदी निकालने की बात भ्रमात्मक है; कुमायूं एक ऐसा राज्य था, जिसका मुग़ल शासकों को बहुत कम निश्चित ज्ञान था।

भारतवर्ष की दूसरी मुख्य धातुओं में पारा, रांगा, सीसा, जस्ता, तांबा और लोहा हैं। इनमें से पहली चार धातुएं विशेषतर बाहर से आती थीं, यद्यपि अल्प परिमाण में सीसा और जस्ता राजपूताने में भी पैदा होते थे। दक्षिण भारत में तांबा बाहर से आता था, किन्तु उत्तर भारत स्थानीय खानों पर आश्रित था। पर, लोहे के सम्बन्ध में सारा देश अपने साधनों पर अवलम्बित था!" (India at the Death of Akbar, by W. H. Moreland, 1920. P. 146–147)।

मोरलैण्ड का यह मत कहां तक सत्य है और अबुलफ़ज़्ल की खोज कहां तक असत्य है, उपस्थित सामग्री के आधार पर इसका ठीक ठीक निर्णय होना कठिन है। पर यह तो निश्चय ही है कि आज से पांच हज़ार वर्ष पहले अर्थात् महाभारत काल में, चिन्तामणि विनायक वैद्य के शब्दों में "यहां सुवर्ण की उत्पति बहुत होती थी। हिन्दुस्तान के प्रायः सब भागों में सोने की उत्पत्ति होती थी। हिमालय के उत्तर में बहुत सोना मिलता था। उत्तर हिन्दुस्तान की नदियों में सुवर्ण के कण बहकर आते थे। दक्षिण के पहाड़ी प्रदेशों में सोने की बहुत सी खानें थीं, और अब भी हैं।" चोल, पांड्य् और दक्षिण के अन्य राजाओं तथा हिमालय की ओर से आने वाले लोगों ने युधिष्ठिर को नज़राने में सोना दिया था इसका सविस्तर उल्लेख महाभारत सभापर्व में है। उसी में एक स्थल पर लिखा है:—

खसाः एका सनाः ह्यर्हाः प्रदरादीर्घ वेणवः,
पारदाश्च कुलिंदाश्च तंगणाः परतंगणाः।
तद्वैपिपीलिकं नाम उद्धृतं यत्पिपीलिकैः,
जातरूपं द्रोणमेय महापुंः पुञ्जशो नृपाः।
(महाभारत सभापर्व ५२)

हिमालय के उस पार रहने वाले खस आदि तङ्गण और परतङ्गण लोगों ने युधिष्ठिर को 'जातरूप' नामक सोना भेंट में दिया था। इस सोने को चिउँटियां अपने बिलों से निकालती थीं और लोग एकत्र कर लेते थे। इसी से इसे 'पिपीलक स्वर्ण' कहते थे। इसका उल्लेख मैगस्थनीज़ और सिकन्दर के साथ आये हुये इतिहासकारों ने भी कुछ अतिशयोक्ति के साथ किया है। तिब्बत में कहीं कहीं यह बात आज भी दिखलाई पड़ती है। तिब्बत वाले इस सोने को छोटी छोटी थैलियों में भर कर भारतवर्ष में लाते थे। हिन्दुस्तान का एक भाग इसी सोने की भरी हुई थैलियों में फ़ारस को कर चुकाता था।

यह सच है कि हिमालय के आगे और नदी के रेत में सुवर्ण रज मिलते थे

गुदाज़गर ६½ दाम; ज़र्राब २ रु० १ दाम; सिक्कची ६½ दाम)। दूसरे, १० दाम १५ जीतल का मसाला लगता है (१० दाम का कोयला, १५ जीतल का पानी)। तीसरे, ५० रुपए १३ दाम शाही दीवान को दिये जाते हैं। चौथे, ६५० रु० सौदागर चांदी के बदले में लेता हैं, और ३ रु० २१ दाम १०½ जीतल

और इस प्रकार निर्मल सोना अनायास मिल जाता था। तथापि यह बात भी नीचे के श्लोक से स्पष्ट मालूम होती है कि महाभारत काल में पत्थर की खानों से सुवर्ण मिश्रित पत्थरों से सोना निकालने की कला विदित थी।

अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः,
सर्वतः सार मा दद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम्।
(उद्योग पर्व ३४)

प्राचीन काल में पत्थर तोड़कर और उसकी बुकनी बनाकर भट्ठी में गलाकर सोना निकालने की कला प्रसिद्ध रही होगी," (महाभारतमीमांसा, संवत् १६७७, पृ० ३७३–७४)।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में एक पूरा प्रकरण है, जिसमें खानों के अध्यक्ष के कर्तव्यों में बतलाया गया है कि वह "तांबा आदि धातुशास्त्र, पारा निकलने और माणिक परखने आदि की विद्याओं को जान कर या जानकार लोगों तथा मेहनती मज़दूरों को साथ लेकर कच्ची धातु, कोयला, राख, खुदाई आदि चिन्हों को भूमि या पहाड़ों पर पाकर भार, रंग, गंध और स्वाद के अनुसार खान की परीक्षा करे। परिचित स्थानों, पहाड़ों, गड्ढों, गुफाओं, तराइयों और गुप्त छेदों से बहने वाले या (जामुन, आम, ताड़, हाथी, हरताल, शहद, सिंगरफ़, कमल, तोता, मोर आदि के रंग वाले) काई की तरह चिकने चमकीले और बोझ वाले जलों को सोने से मिश्रित जाने (अर्थात् वहां पर सोने की खान समझे)। परन्तु यदि वह तरल पदार्थ पानी पर डालते ही नीचे बैठ जाय, तेल की तरह सब तरफ़ फैल जाय और मटियाले रंग का हो जाय तो उसको चांदी तथा तांबे से मिश्रित समझना चाहिये।"

जहां जहां सोना चांदी पैदा होती थी उसी के अनुसार उनके नाम होते थे, जैसे जम्बू नदी में निकला हुआ सोना जाम्बू-नद कहलाता था और हाटक की खानों से निकला हुआ हाटक स्वर्ण और वेणु पर्वत से प्राप्त हुआ वैणव नाम से पुकारा जाता था। जिस 'जातरूप' सोने का उल्लेख महाभारत काल के प्रसंग में ऊपर हो चुका है, कौटिल्य ने भी उसका उल्लेख किया है (आईने-अकबरी पृ० ३३)। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में कई प्रकार की चांदी का वर्णन है, जैसे तुत्थोद्गत—जो तुत्थ पर्वत से प्राप्त होती थी, गौडिक—जो गौड देश की उपज थी इत्यादि। इतनाही नहीं कौटिल्य ने खान के नियम उल्लंघन करने पर खान के कर्मचारियों के लिए तरह तरह के दंड भी नियत किये हैं, (कौटिल्य–अर्थ शास्त्र अधिकरण २)।

उपर्युक्त विवरण को ध्यान पूर्वक पढ़ने से मालूम होता है कि अबुलफ़ज़्ल की खोज का बहुतांश महाभारत और कौटिल्य से मिलता हुआ है, इसलिए उसे भ्रमात्मक नहीं माना जा सकता। समुद्रगुप्त और अलाउद्दीन के राजत्वकाल के ऐतिहासिक साहित्य से पता चलता है कि दक्षिण प्रदेश सचमुच उन दिनों सोने की चिड़िया था। मलिक काफ़ूर ने ६६००० मन सोना अलाउद्दीन को दिया था। विजय नगर के

लाभ प्राप्त करता है। यदि व्यवसायी खोटी चांदी लेकर उसे अपने घर पर साफ़ करता है, तो बहुत फ़ायदा उठाता है। परन्तु जब वह उसे सिक्का[१] लगवाने के लिए लाता है, तो उसको उतना नफ़ा नहीं मिलता।

कृष्ण राजा के महल से भी सोने की अधिकता का पता चलता है, (A forgotten Empire; by Sewell, 1924)। मैसूर की सोने की खान का उल्लेख भले ही विदेशी पर्यटक न करें, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह खान चालू नहीं हुई थी। कोलर की प्रसिद्ध खान तो आज से पांच हज़ार वर्ष पूर्व अर्थात् मोहेनजोदड़ो और हरप्पा की सभ्यता के समय भी चालू थी, जैसा कि डाक्टर राधा कुमुद मुकर्जी ने लखनऊ यूनीवर्सिटी में भाषण करते हुये कहा है कि "उनका (हरप्पा और मोहनजोदड़ो निवासियों का) सोना कोलर (मैसूर का एक ज़िला) और अनन्तापुर से आता था" (Dr. Radhakumud mookerjee's Lecture delivered at Lucknow University on January 29, 1935.)। इससे सिद्ध है कि खान चालू पहले से ही थी किन्तु या तो उस समय किसी कारण से उसकी खुदाई स्थगित करदी गई होगी अथवा पर्यटकों के उल्लेख करने से रह गई होगी। मोरलैण्ड की यह बात भी ध्यान में नहीं जमती कि मुग़ल शासकों को कुमायूं का हाल नहीं मालूम था। अबुलफ़ज़्ल सुदूरवर्ती स्थानों का हाल सही लिख सकता था किन्तु कुमायूं, जैसे निकटवर्ती स्थानों का मूल्यवान् धातुओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी पता नहीं लगा सकता था, यह बात समझ में नहीं आती। मोरलैण्ड ने कल्पना से बहुत काम लिया है, इसी लिए सर यदुनाथ सरकार और डाक्टर बेनीप्रसाद ने मोरलैण्ड के उक्त ग्रंथ में प्रदर्शित विचारों से अनेक स्थलों पर मतभेद प्रकट किया है (Modern Review January 1921, P. 15, and August 1921, P. 214)।

आजकल "हिन्दुस्तान में प्रायः सभी प्रान्तों में सोना पाया जाता है। पर मैसूर (कोलर) और हैदराबाद की खानों में अधिक मिलता है। पिछली शताब्दी में कैलीफ़ोर्निया और आस्ट्रेलिया में भी इसकी बहुत बड़ी खाने मिली हैं" (शब्द सागर)।

१—"दिसम्बर १५७७ ई० में जब अकबर ने नारनोल के समीप (जो कि पटियाला राज्य में है, और जहां शेरशाह पैदा हुआ था) पड़ाव डाला और एक विशेष सभा की आयोजना की तथा राजा टोडरमल और ख़्वाजा शाहमंसूर से परामर्श करके अनेक बातें तय कीं, उनमें एक महत्वपूर्ण विषय टकसाल का था। उस समय तक विभिन्न टकसालें छोटे कर्मचारियों अर्थात् चौधरियों के हाथ में थीं, उन अधिकारियों में सन्तोषजनक शासन संचालन योग्य न वैयक्तिक गुरुत्व था और न उनके पास उपयुक्त पद ही था। अब उक्त विभाग को अधिकार में रखने के लिए राजधानी में एक उत्तरदायी टंकशालाध्यक्ष नियत किया गया, और इस पद पर ख़्वाजा अब्दुस्समद शीराज़ी 'शीरीं क़लम' नियुक्त किया गया। यह हुमायूं का अभिन्न हृदय मित्र था। अकबर ने लड़कपन में उस से प्रारम्भिक ड्राइङ्ग की शिक्षा पाई थी। १५७७—७८ में यह कलाकार अधिक आयु वाला हो गया होगा। सूबों की पांच प्रधान टकसालों में से हर एक एक उत्कृष्ट

लारी[१] और शाही चांदी तथा दूसरे प्रकार की खोटी चांदी एक रुपया की एक तोला ४ रत्ती मिलती है। इस हिसाब से, सौदागर ६५० रुपए से ६८६ तोले ७ माशे चांदी ख़रीदता है, जिसमें से १४ तोले १० माशे १ रत्ती सब्बाकी क्रिया में जल जाती है। अर्थात् $1\frac{1}{2}$ तोला प्रति सैकड़ा के हिसाब से वह घट

राजपदाधिकारी को सौंपी गई। राजा टोडरमल बंगाल का उत्तरदाता बनाया गया; मुज़फ़्फ़र ख़ाँ, ख़्वाजाशाह मंसूर, ख़्वाजा इमामुद्दीन हुसेन और आसफ़ खां द्वितीय को क्रमशः लाहौर, जौनपुर, गुजरात या अहमदाबाद, और पटना की टकसालें सौंपी गईं। उसी दिन चौकोर जलाली रुपयों के बनाने की आज्ञा दी गई।

चांदी और तांबे के सिक्के बहुत से क़स्बों में तैयार होते थे, जिनकी कि एक सूची अबुलफ़ज़ल ने भी दी है किन्तु वह अपूर्ण है। पिछले वर्षों में टकसाल के क़ानूनों में फिर सुधार हुआ। धातु की शुद्धता, तौल की पूर्णता और कलाकारिता की दृष्टि से नाना प्रकार के अपने सिक्कों की श्रेष्टता के लिए अकबर बधाई का पात्र है। मुग़ल मुद्रानिर्माण कार्य की, जब क्विन-इलीज़बेथ तथा अन्य तत्कालीन यूरोपीय राजाओं के मुद्रण कार्य से तुलना की जाय, तो वह उनसे हर पहलू से अत्युत्कृष्ट घोषित किया जायगा। मालूम होता है कि अकबर और उसके उत्तराधिकारी सिक्कों की खराई और तौल को मिलोनी के द्वारा कम करने के लालच में कभी नहीं पड़े। अकबर के अधिकतर सिक्कों का सोना वस्तुतः शुद्ध था" (Akbar the great Mogul, 11Ed: 1919, P. 156–157)। अबुलफ़ज़ल ने सोने के सिक्कों की केवल चार टकसालें बतलाई हैं (आई ने अकबरी पृष्ठ ४८); किन्तु संभवतः १५७८ ई० में उपर्युक्त छे स्थानों में केवल सोने के सिक्के बनते थे।

१—"लारी फ़ारस का सिक्का था, और व्यापार द्वारा भारतवर्ष में बहुत बड़ी तादाद में आता था। यह नाम से सिक्का नहीं समझा जा सकता था, क्योंकि यह चांदी की ख़मदार सलाख़ या छड़ की शक्ल का था, जिसके सिरे पर छाप लगी हुई थी और अकबर के आधे रुपए से भी कम मूल्य का था, (India at the death of Akbar, by W. H. Moreland, P. 57, 1920)। इसके अतिरिक्त दक्षिण में 'बराहु' या हून नाम का एक और सिक्का था, जिसको विदेशियों ने पगोडा लिखा है। यह साधारणतया अकबर के रुपए के साढ़े तीन गुने मूल्य का था। यह सोने का सिक्का था। फ़नाम नामक सोने का एक और छोटा सिक्का था। इनके अतिरिक्त चांदी और तांबे के भी सिक्के चलते थे। सीकीन या चिकीन नामक एक सोने का विनीशिया का सिक्का था, जो मूल्य में अकबर के चार रुपए के बराबर था और लाल सागर या फ़ारस की खाड़ी से व्यापार द्वारा यहां आता था। इटली का दुक़ात भी उपर्युक्त मार्ग से ही आता था। सोने का दुक़ात अकबर के चार रुपए और चांदी का दुक़ात दो रुपए के बराबर था। रियल्स आफ़–एट (Reals of eight) नामक एक स्पेन का सिक्का था उसका मूल्य २ अकबरी रुपए था। पोर्चगीज़ों की टकसाल गोआ में थी वहां का सोने का परडाओ नामक सिक्का पहले मूल्य में पगोडा के बराबर था फिर रद्दोबदल होने

जाती है। ४ तोले ११ माशे ३ रत्ती सलाख़ बनाते समय गुदाज़गर की क्रिया द्वारा आग में जल जाती है। बाक़ी चांदी में १०१२ रुपए तैयार होते हैं, और ख़ाके-कहरल से ३$\frac{1}{2}$ रुपए की चांदी निकल आती है। हानि लाभ का ब्योरा इस प्रकार है :—पहले, ४ रुपए २७ दाम २४$\frac{3}{4}$ जीतल मज़दूरी होती है (तराज़ूकश—५ दाम ७$\frac{3}{4}$ जीतल; सब्बाक—२ रुपए १६ जीतल, क़ुर्सकूब—४ दाम १६ जीतल; चाशनीगीर—३ दाम ४ जीतल; गुदाज़गर—६$\frac{1}{2}$ दाम; ज़र्राब—२ रु० १ दाम; सिक्कची—६ दाम १२$\frac{1}{2}$ जीतल)। दूसरे, ५ रुपए २४ दाम १५ जीतल अन्य आवश्यक कार्यों में व्यय होते हैं (अर्थात् ५ रु० १४ दाम का सीसा, १० दाम का कोयला, १५ जीतल का पानी)। तीसरे, ५० रुपए २४ दाम राजदरबार को दिये जाते हैं। चौथे, ६५० रु०, व्यापारी अपनी चांदी के बदले में पाता है, और ४ रुपए २६ दाम लाभ[1] उठाता है। बहुधा वह सस्ती चांदी ख़रीदता है और बहुत लाभ प्राप्त करता है।

एक मन तांबा १०४४ दाम में मिलता है, और १ सेर (तांबा) २६ दाम २$\frac{1}{2}$ जीतल में। एक मन में १ सेर तांबा आग में जल जाता है। एक सेर में ३० दाम बनते हैं। इस हिसाब से सब मिला कर ११७० दाम मुद्रित होते हैं। जिनमें व्यापारी अपना मूलधन लेता है और १८ दाम १६$\frac{1}{2}$ जीतल का फ़ायदा उठाता है। ३३ दाम १० जीतल मज़दूरी निकल जाती है। १५ दाम ८ जीतल आवश्यक सामग्री में व्यय होते हैं (अर्थात् १३ दाम ८ जीतल का कोयला, १ दाम का पानी, १ दाम की मिट्टी)। ५८$\frac{1}{2}$ दाम सरकार को दिये जाते हैं।

आईन १३।

धातुओं की उत्पत्ति।

सृष्टिकर्ता ईश्वर ने चार तत्व प्रकट किये, और अद्भुत आकृतियां निर्माण कीं। **अग्नि**—उष्ण, शुष्क और नितांत हल्की ; **वायु**—तप्त, आर्द्र और अपेक्षतया लघु; **जल**—शीतल, गीला और अपेक्षतया गुरु ; **पृथ्वी**—ठंढी, शुष्क और सवर्था भारी।

पर अकबर के २$\frac{1}{4}$ रु० के बराबर रह गया (India at the death of Akbar, by Moreland. P. 57 & 56)।

[1]—इन मदों का जोड़ १०१५ रु० २५ दाम १४$\frac{3}{4}$ जीतल है, जो कि अबुलफ़ज़्ल के दिये हुये जोड़ १०१५ रु० २० दाम से कुछ ही अधिक है।

उष्णता पदार्थ में हल्कापन लाती है, और शीतलता भारीपन। आर्द्रता परमाणुओं को सरलता से पृथक् कर देती है, और शुष्कता उनको अलग अलग होने से रोकती है। इस विचित्र व्यवस्था से चार प्रकार के मिश्रित पदार्थ आविर्भूत हुये, अर्थात् **आकाशीय**[१], **खनिज, बनस्पति, जीवधारी**। सूर्य आदि की गरमी से जल कण हलके होकर वायु में मिल जाते और ऊपर चढ़ जाते हैं, उस मिश्रित को **बुख़ार**[२] कहते हैं। उसी कारण से पार्थिव-परमाणु वायु से मिलकर ऊपर चले जाते हैं, वे **दुख़ां**[३] कहलाते हैं। कभी वायु-कण भी उस (पृथ्वी) से मिल जाते हैं। कुछ तत्ववेत्ता उपर्युक्त दोनों मिश्रितों को बुख़ार कहते हैं; परन्तु जो मिश्रण जल कणों से उत्पन्न होता है, उसको **बुख़ारे-तर** तथा **बुख़ारे-आबी** (आर्द्र वाष्प) कहते हैं; और जो पदार्थ पार्थिव-अणुओं के संयोग से प्रकट होता है उसको **बुखारे-ख़ुश्क** तथा **बुख़ारे-दुख़ानी** (शुष्क वाष्प) कहते हैं। इन दोनों से भूमि के ऊपर मेघ, वायु, वृष्टि और हिम इत्यादि बनते हैं, और उसके (पृथ्वी के) अन्दर भूकम्प, सोते और खानें। बुख़ार शरीर के स्थान पर समझा जाता है और दुख़ां आत्मा की जगह पर। उनके गुण और परिमाणों की विभिन्नता के कारण नाना प्रकार के पदार्थ अस्तित्व-जगत में आते हैं, जैसा कि वैज्ञानिक ग्रन्थों में उल्लेख है।

खनिज[४] (पदार्थ) पांच प्रकार से अधिक नहीं होते:—पहले, वे जो अपनी शुष्कता के कारण नहीं पिघलते हैं, जैसे याक़ूत; दूसरे वे जो अपनी द्रवता के सबब से नहीं टिघलते हैं, जैसे, पारा; तीसरे वे, जो गलते तो हैं पर न घनाघात से बढ़ते हैं और न आग से जलते हैं, जैसे फिटकरी; चौथे, वे, जो आघात वर्द्धनीय तो हैं, किन्तु आग से भस्मीभूत हो जाते हैं, जैसे गंधक; पांचवें, वे, जो आघात से बढ़ने वाले हैं, परन्तु आग से नहीं जलते, जैसे सोना। पिण्ड के पिघलने का तात्पर्य यह है कि अवयवी के अवयव उसके शुष्क और आर्द्र मूलतत्वों के संयोग से बह चलें। आघातवर्द्धनीयता का आशय है पिण्ड का इस प्रकार दबना कि उसका विस्तार, लम्बाई और चौड़ाई के रूप में परिणित होकर फैल जाय, बग़ैर इसके कि उसमें से कोई चीज़ अलग की जाय या जोड़ी जाय।

१—बादल, ओले, बरफ़ आदि।

२—गैस (Gas) वाष्प।

३—धूम (Vapour)।

४—"कौटिल्य-अर्थशास्त्र" के अधिकरण दो में "खनिज पदार्थों के व्यवसाय-संचालन" में खनिज पदार्थों के उपयोग का विशेष रूप से उल्लेख है।

जब बुख़ार दुख़ां के साथ इस प्रकार मिले, कि पहला (बुख़ार) परिमाण में अधिक हो और मिलने तथा पकने के पश्चात् सूर्यकी गरमी उसको जमादे, **पारा**[१] बन जायगा। यतः उसका कोई अंश दुख़ां से रहित नहीं होता, इसलिए उसमें शुष्कता अनुभव होती है, और छूने पर हाथ में नहीं चिपकता, वरन् भागता है। इसका सटान (मिलान) ताप से होता है, इस लिए गरमी इसे नहीं पिघलाती। यदि बुख़ार और दुख़ां का मिश्रण लगभग तुल्य परिणाम में हो, तो चिकनी चिपचिपी आर्द्रता उत्पन्न होती है। ख़मीर होने के समय, वायुकण उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं, और सर्दी उसको जमा देती है। यह पिण्ड दहनशील होगा। यदि दुख़ां और चिकनाई कुछ विशेष हो, तो **गंधक** पैदा होगी; वह लाल, पीले, नीले और सफ़ेद रंग की होती है। अगर दुख़ां अधिक हो और चिकनाई कम हो, तो **हरताल** बनेगी, जो लाल और पीली होती है। यदि बुख़ार ज़्यादा हो, तो पिण्ड बंधने पर **नफ़्त**[२] हो जायगा, वह काला और सफ़ेद होता है। यतः इसके पिण्ड बंधने का कारण शीतलता है, इसलिए यह तापसे द्रवित होने लगता है। स्निग्धता की अधिकता और गीलाई की विशेषता के कारण यह दहनशील है और आर्द्रता की अधिकता से यह आघातवर्द्धनीय नहीं होता।[३]

१—पारा एक अद्भुत खनिज पदार्थ है। अधिक सरदी पाकर वह जम जाता है। गंधक और पारा मिला हुआ द्रव्य ईंगुर कहलाता है। विशेष क्रिया द्वारा दोनों अलग अलग कर लिये जाते हैं। भारतवर्ष में पारे की खान केवल नैपाल में है। इस देश में आजकल चीन जापान और स्पेन से भी पारा आता है। पारे पर गरमी का प्रभाव सब से ज़्यादा पड़ता है, इसी से गरमी नापने के यंत्रों में उसका उपयोग होता है। पुराणों और वैद्यक ग्रंथों में पारे का अनेक स्थलों पर उल्लेख है, और उसके माहात्म्य में उसको ब्रह्म या शिव स्वरूप तक बतलाया गया है। पारे के आधार पर एक रसेश्वर दर्शन निर्मित किया गया है, जिसमें पारे से ही सृष्टि की उत्पत्ति कही गई है, और उसके द्वारा मुक्ति का उपाय रससाधन बतलाया गया है। भावप्रकाश में सफ़ेद, पीला, लाल और काला पारे के चार भेद बतलाये गये हैं। सफ़ेद सब से उत्तम माना गया है। अनेक रासायिनिक प्रयोगों में आने के कारण ही इसे रसराज कहते हैं।

२—इसका शुद्ध उच्चारण निफ़्त है। अधिकतर लोग नफ़्त ही बोलते हैं। यह एक प्रकार का तेल है, जो सफ़ेद और काले रंग का होता है। सफ़ेद रंग का ज़्यादा अच्छा होता है। यह शेरवान देश की भूमि से उबलता है। कहीं कहीं यह शब्द बारूद के अर्थ में भी व्यवहृत होता है।

३—वर्तमान भौतिक विज्ञान (Physical Science) के प्रचार के पहले, प्रायः सभी देशों के विचारवान् भौतिक जगत के मूल-पदार्थ केवल पांचही—पृथ्वी, जल, अग्नि,

यद्यपि सप्त-पिण्डों के अस्तित्व का मूलधन पारा और गंधक है, तथापि एक दूसरे के गुणों में विभिन्नता, संसृष्टि में भेदभाव एवं शुद्धता में अंतर होने के कारण नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जब ये दोनों वस्तुएं पार्थिक-कणों से मिश्रित न हों, पदार्थ स्वच्छ रहें, पूर्णतया पक कर आपस में मिल जांय,

---

वायु और आकाश—मानते थे, किसी किसी विचारक ने आकाश को अन्य पदार्थों का अधिष्ठान (Space) मान कर उसको मूल पदार्थों की कोटि से पृथक् कर दिया है। फ़ारसी, अरबी के अनेक विज्ञानवेत्ता तथा चार्वाक आदि पिछले मत के ही पोषक रहे हैं। परन्तु वर्तमान विज्ञान वेत्ताओं ने विश्लेषणक्रिया द्वारा बानवे मूल द्रव्य खोजे हैं। उनको अंगरेज़ी भाषा में एलीमेण्ट्स (Elements) कहते हैं, इन द्रव्यों में कुछ धातुएं (जैसे सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि), कुछ दूसरे खनिज (जैसे, गंधक, संखिया आदि) और कुछ वायव्य द्रव्य (जैसे, आक्सिजन्, हाइड्रोजन् और नाइट्रोजन आदि) हैं। वैज्ञानिक मूल पदार्थ (Element) उसको मानते हैं, जो किसी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा दो या अधिक पदार्थों का बना हुआ सिद्ध न हो सके अथवा जो दो या अधिक पदार्थों के संयोग से न बनाया जा सके।

जिस पृथ्वी को प्राचीन विद्वानों ने मूल-तत्व माना है, वर्तमान कालीन वैज्ञानिकों ने उसमें सभी मूल पदार्थ अर्थात् बानवे द्रव्य पाये हैं। जल को इंग्लैण्ड निवासी प्रसिद्ध वैज्ञानिक कैविण्डस् दो गैसीय मूल पदार्थों अर्थात् आक्सिजन् (Oxygen) और हाइड्रोजन् (Hydrogen) का मिश्रण सिद्ध कर चुका है। वायु कितने ही प्रकार के गैसीय मूल एवं मिश्रित पदार्थों का मिश्रण साबित हुई है, उन पदार्थों में आक्सिजन् और नाइट्रो-जन् मुख्य हैं, इनमें भी पंचमांश आक्सि-जन् है और शेष चार भागों में अधिकांश नाइट्रोजन् है।

रासायनिक खोज संबन्ध में मुख्य सिद्धान्त "डाल्टन का परमाणुवाद" (Dalton's Atomic Theory) है। इसके मत में प्रत्येक मूल पदार्थ एकही प्रकार के अनेक परमाणुओं का समूह मात्र है। आक्सि-जन् के सभी परमाणु एक से हैं, और इसी प्रकार हाइड्रोजन् आदि सभी मूल पदार्थों के भी परमाणु समान होते हैं। मूल पदार्थों में सबके परमाणुओं से हाइड्रोजन् का पर-माणु सब से हलका पाया जाता है। इस लिए इसके भार (Atomic weight) को इकाई मान कर वैज्ञानिकों ने सभी मूल पदार्थों के परमाणुओं के भार निकाले हैं, जिनकी तालिका नीचे दी जाती है :—

मूल पदार्थ		परमाणुभार	मूल पदार्थ		परमाणुभार।
हाईड्रोजन्	Hydrogen	१	नाइट्रोजन्	Nitrogen	१४
हीलियम्	Helium	४	आक्सिजन्	Oxygen	१६
लीथियम्	Lithium	६·६४	फ़्लोरिन्	Fluorine	१६
बिरीलियम्	Beryllium	६·१	नियन्	Neon	२०·२
बोरन्	Boron	१०·६	सोडियम्	Sodium	२३
कार्बन्	Carbon	१२	मैग्नीशियम्	Magnesium	२४·३२

साथ ही गंधक सफ़ेद हो और पारे के परमाणु अधिक हों, तो **चांदी**[२] पैदा होगी। यदि दोनों बराबर हों और गंधक लाल हो तथा उसमें रंगीन बनाने का बल भी हो तो **सोना** दर्शन देगा। उसी परिस्थिति में यदि मिश्रण के पश्चात् और पूर्ण परिपक्व होने के पहले सरदी उसे जमादे, तो **ख़ारचीनी** उत्पन्न होगी। उसे

मूलपदार्थ		परमाणुभार	मूलपदार्थ		परमाणुभार
एल्यूमीनियम्	Aluminium	२७·१	रुथीनियम्	Ruthenium	१०१·७
सिलिकन्	Silicon	२८·३	र्होडियम्	Rhodium	१०२·९
फ़ासफ़ोरस	Phosphorus	३१	पैलेडियम्	Palladium	१०६·७
सल्फ़र (गंधक)	Sulphur	३२	सिल्वर (चांदी)	Silver	१०७·८८
क्लोरीन	Chlorine	३५·४६	कैड्मियम्	Cadmium	११२·४
अर्गन	Argon	३९·९	इण्डियम्	Indium	११४·८
पोटैशियम्	Potassium	३९·१	टिन (रांगा)	Tin	११८·७
कैलशियम्	Calcium	४०·०७	ऐण्टीमनी (सुर्मा)	Antimony	१२०·२
स्कैण्डियम्	Scandium	४५·१	टिल्यूरियम्	Tellurium	१२७·५
टाइटेनियम्	Titanium	४८·१	आयोडिन	Iodine	१२६·९२
वनैडियम्	Vanadium	५१	ज़िनन	Xenon	१३०·४
क्रोमियम्	Chromium	५२	केशीयम्	Caesium	१३२·८१
मैंगैनीज़	Manganese	५४·९३	बेरियम्	Barium	१३७·३७
आइरन् (लोहा)	Iron	५५·८४	लेन्थैनम्	Lanthanum	१३९
कोबाल्ट	Cobalt	५८·९७	सीरियम्	Cerium	१४०·२५
निकेल	Nickel	५८·७	प्रैसीडीमियम्	Praseodimium	१४०·९
कापर (तांबा)	Copper	६३·५७	न्योडीमियम्	Neodimium	१४४·३
ज़िंक (जस्ता)	Zinc	६५·३७	इलीनियम्	Illinium	—
गैलियम्	Gallium	७०·१	समैरियम्	Samarium	१५०·४
जर्मेनियम्	Germanium	७२·५	यूरोपियम्	Europium	१५२
आर्सेनिक	Arsenic	७४·९६	गडोलीमियम्	Gadolimium	१५७·३
सेलेनियम्	Selenium	७९·२	टर्बियम्	Terbium	१५९·२
ब्रोमीन	Bromine	७९·९२	डाइसप्रोसियम्	Dysprosium	१६२·५
क्रिप्टन	Krypton	८२·९२	हालमियम्	Holmium	१६३·५
रुबीडियम्	Rubidium	८५·४५	इरबियम्	Erbium	१६७·७
सट्रून्शियम्	Strontium	८७·६३	थूलियम्	Thulium	१६८·५
यट्रियम्	Yttrium	८९·३	टरबियम्	Terbium	१७३·५
ज़िर्कोनियम्	Zirconium	९०·६	लुटेसियम्	Lutecium	१७५
नायोबियम्	Niobium	९३·५	हैफ़्नियम्	Hafnium	१७८·६
मालिबडेनम्	Molybdenum	९६	टैन्टलम्	Tantalum	१८१·५
मैसूरियम्	Masurium	—	टंगूसटन	Tungsten	१८४

आहनचीनी भी कहते हैं। वास्तव में वह कच्चा सोना होता है; पर कुछ लोग उसे एक प्रकार का तांबा ख़याल करते हैं। यदि केवल गंधक साफ़ न हो, और उसमें पारे की अधिकता हो एवं जलाने की शक्ति विद्यमान हो, तो तांबा तैयार होगा। यदि एक दूसरे की मिलावट ठीक तरह से नहीं होती और सीसा अधिक

मूलपदार्थ		परमाणुभार	मूलपदार्थ		परमाणुभार
रीनियम्	Rhenium	—	—	—	—
आसमियम्	Osmium	१६०·६	रेडन	Radon	—
इरीडियम्	Iridium	१६३·१	—	—	—
प्लेटिनम्	Platinum	१६५.२	रेडियम्	Radium	२२६
गोल्ड (सोना)	Gold	१६७·२	एक्टीनियम्	Actinium	—
मर्करी (पारा)	Mercury	२००·६	थोरियम्	Thorium	२३२·१५
थैलियम्	Thallium	२०४	प्रोटोएक्टीनियम्	Protoactinium	—
लेड (सीसा)	Lead	२०७·२	यूरैनियम्	Uranium	२३८·२
बिस्मथ	Bismuth	२०८			
पोलोनियम्	Polonium	२१०			

(The outline of Wireless, by Ralf Stranger, 1932, P. 30-31.)

भौतिक विज्ञान के आचार्यों ने यह भी सिद्ध किया है कि प्रत्येक परमाणु दो प्रकार के विद्युत् अणुओं से बना है। एक विद्युदणु ऋणात्मक है और इलैक्ट्रोन (Electron) कहलाता है, दूसरा घनात्मक है जो पोज़िट्रोन (Positron) कहलाता है। एक ही रासायनिक परमाणु में अनेक विद्युदणु होते हैं, और इस दृष्टि से एक एक परमाणु हमारे सौर मण्डल से भी अधिक पेचीदा मंडल है, जिसमें सूर्य स्थानीय परम लघु घनात्मक विद्युत केन्द्र है और उसके चारों ओर अनेक ऋणात्मक विद्युदणु ग्रहों की नाईं नियत कक्षाओं में परिभ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक परमाणु एक प्रकार का वृहत ब्रह्माण्ड है। जब यह ऋणात्मक विद्युदणु रूपी ग्रह अपनी कक्षा से विचलित कर दिये जाते हैं तभी प्रकाश प्रकट होता है। सारांश यह है कि वर्तमान विज्ञान ने 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' की उक्ति को प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है।

वर्तमान रासायनिकों ने कुल ९२ मूल पदार्थों को दो भागों में बांटा है, एक धातु (metal) और दूसरे अधातु (non-metal)। इनमें आधे के लगभग धातु और शेष अधातु हैं। धातु और अधातु के भेद का प्रकटीकरण भी रासायनिक प्रक्रिया पर अवलम्बित किया गया है। पदार्थों के जलने से (आक्सिजन के मिलने से) जो मिश्रित पदार्थ बनता है वह उस मूल का ओषित् (oxide) कहलाता है। कुछ ओषित् क्षार (alkaline) रूप होते हैं और कुछ अम्ल (acid) रूप। जिन मूल पदार्थों के ओषित् क्षार रूप होते हैं वे धातु हैं और दूसरे अधातु।

जगत् के असंख्यों प्रकार के इन्द्रिय गोचर पदार्थ इस प्रकार से बने हैं। ऋणात्मक और घनात्मक (electrons & positrons) विद्युदणुओं से परमाणु (atoms) बनते हैं और परमाणुओं के संयोग से अणु (molecules) संगठित होते हैं। इन अणुओं से

होता है, तो मिश्रित **रांगा** बन जायगा। कुछ लोग कहते हैं कि दोनों के बिना स्वच्छ हुये, पदार्थ नहीं बनता। यदि दोनों मिश्रित द्रव्य निकृष्ट हों, कठोरता से मिले हों, पारे के पार्थिव कणों में पार्थक्य का भाव हो और गंधक में जलने की शक्ति हो, तो **लोहा** प्रकट होगा। यदि उस अवस्था में पूर्ण मिश्रण न हो, और

शुद्ध रासायनिक पदार्थ (compounds) आविर्भूत होते हैं, और इन शुद्ध रासायनिक पदार्थों से असंख्यों प्रकार के इन्द्रियगोचर पदार्थ बनते हैं। वास्तविक बात यह है कि मूल पदार्थ में एक ही प्रकार के परमाणु होते हैं, किन्तु जब वे दूसरे प्रकार के परमाणुओं से मिलते हैं, तभी तीसरे प्रकार का द्रव्य तैयार होता है।

अनेक विद्वानों का मत है कि प्राचीन और अर्वाचीन मूल पदार्थों के सम्बन्ध में जो मतभेद है वह केवल विचारप्रणाली के कारण है। प्राचीन विचारकों की वृत्ति अन्तर्मुखी होने के कारण वे दृष्टा को मुख्य मानकर दृश्य को गौण समझते थे। इस लिए उनका पदार्थ विभाजन दृष्टा की अपेक्षा से है। दृष्टा की दृष्टि के पांच मूल साधन पांच इन्द्रियां हैं। वाह्य-जगत का समस्त ज्ञान दृष्टा तक इन्हीं पांच द्वारों से पहुँचता है। यहाँ तक तो वर्तमान वैज्ञानिक भी सहमत हैं। प्राचीन विचारकों के मतानुसार "जिस पदार्थ का ज्ञान केवल एक ही इन्द्रिय की सहायता से हो वह मूल पदार्थ है और जिसके ज्ञान के लिए दो इन्द्रियों की अपेक्षा हो वह मिश्रित पदार्थ है।" इधर वर्तमान वैज्ञानिकों की वृत्ति वहिर्मुखी होने के कारण दृश्य को दृष्टा की अपेक्षा अधिक महत्व देते हुये कहते हैं, कि इन्द्रिय जन्य ज्ञान अस्पष्ट, अधूरा और कभी कभी भ्रांत होता है; प्रकृति का ठीक ठीक ज्ञान उसी के बने हुये यन्त्रों द्वारा हो सकता है। अतएव उन्होंने अपने मूल पदार्थ रासायनिक प्रक्रियाओं से निश्चित किये हैं।

पर मूल पदार्थों का विश्लेषण नितान्त न हो सके, यह बात नहीं है। गत तीस वर्षों में वैज्ञानिकों ने ऐसी प्रक्रियाएं ढूंढी हैं, जिन के द्वारा मूल पदार्थों का विश्लेषण भी संभव प्रतीत होने लगा है; यद्यपि साधारण रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उनका विभाजन असंभव है। हम इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जो पदार्थ रासायनिक प्रकिया द्वारा मूल एवं अविश्लेषणीय है वही कुछ भौतिक प्रक्रियाओं द्वारा मिश्रित और विश्लेषणीय सिद्ध हो जाता है जैसा कि ऊपर लिखा गया है। इस दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही मत ठीक हैं; क्योंकि दोनों ही अपनी अपनी दृष्टि से पदार्थों को देखते और तदनुसार परिणाम निकालते हैं।

२—कौटिल्य ने चांदी के चार भेद लिखे हैं—(१) तुत्थोद्गत—जोकि तुत्थ पर्वत से निकाली जाती है, (इसका रंग चमेली के समान सफ़ेद होता है—बट्ट स्वामी का भाष्य); (२) गौडिक जो कि गौड़ देश की उपज है (यह अगर के रंग की होती है—बट्ट स्वामी का भाष्य)। (३) काम्बुक जो कि कंबु पर्वत से प्राप्त की जाती है। (४) चाक्रवालिक—जो कि चक्रवाल पर्वत से निकलती है। [तीसरे और चौथे प्रकार की चांदी का रंग कुंद (एक प्रकार की चमेली) के समान होता है—बट्ट स्वामी का भाष्य। Kautilya's Arthshastra, Translated by Dr. R. Sham Sastri P. 99]। किन्तु डा० प्राणनाथ

पारा अधिक हो तो **सीसा** प्रदर्शित होगा। ये सात धातुएं **सप्तपिंड** कहलाती हैं। लोग पारे को पिण्डों की माता और गंधक को पिंडों का पिता कहते हैं तथा पारे को जीवात्मा और हरताल तथा गंधक को श्वास ख़्याल करते हैं। **जस्त**—जो कुछ लोगों के मतानुसार तूतिया की रूह है, और जिसकी सूरत शक्ल सीसे के समान होती है, विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों में उसका उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। हिन्दुस्तान में, जालोर की सीमाओं में जो कि सूबे अजमेर के इलाक़े में है, उसकी खान है। रासायनिकों का मत है कि **रिसास** (जस्त) एक प्रकार की चांदी है कुष्ट-रोग ग्रसित, और पारा एक तरह की चांदी है जिसको फ़ालिज की बीमारी है; सीसा एक प्रकार का सोना है कुष्ट-रोग पीड़ित, और तांबा कच्चा सोना है। रासायनिक वैद्य की तरह उपचार द्वारा इन धातुओं को उनके सदृश अथवा उनके जोड़ का बना देते हैं।

बुद्धिमान कार्यकुशल, उपर्युक्त सप्तपिण्डों से मिश्रित कई धातुएं बनाते हैं, जिन से आभूषण और बर्तन इत्यादि बनते हैं। मैं उनमें से कुछ का हाल वर्णन करता हूँ :—

सफ़ेद रू—हिन्दुस्तान के लोग इसे **काँसी** कहते हैं। चार सेर ताँबा और एक सेर क़लई (रांगा) गलाकर इसे बनाते हैं।

रूई—इस में चार सेर ताँबा और डेढ़ सेर सीसा रहता है। हिन्दुस्तानी इसको **भंगार** कहते हैं।

बिरंज—हिन्दू इसे **पीतल** कहते हैं। इसको तीन प्रकार से बनाते हैं। पहली, वह पीतल, जो ठंढी होने पर आघात से बढ़ने के योग्य हो; उसके अंश इस प्रकार हैं—२$\frac{१}{२}$ सेर तांबा, १ सेर रूह तूतिया। दूसरी, वह जो तपाकर पीटने से बढ़ सके; वह २ सेर तांबे और १$\frac{१}{२}$ सेर रूह तूतिया से तैयार होती है। तीसरी जो घनाघात से बढ़ने के अयोग्य है। उसे ढालने के काम में लाते हैं। वह २ सेर तांबे और १ सेर रूह तूतिया से बनती है।

सीमेसुख़्ता—सीसा, चांदी, और तांबे से मिलकर बनता है। इसका रंग काला चमकदार होता है, और नक़्क़ाशी के काम में आता है।

हफ़्त-जोश—ख़ार चीनी की तरह यह भी कहीं नहीं प्राप्त होता। यह छै

विद्यालङ्कार ने अपने भाषान्तर (कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र पृ० ७७) में चांदी के पांच भेद लिखे हैं—१-तुत्थोद्गत, २-गौडिक, ३-काममल, ४-कबक, ५-चाक्रवालिक।

धातुओं से मिलकर बनता है। कोई कोई इसको **तालीक़ून** कहते हैं। पर कुछ लोग तालीक़ून साधारण तांबे को ही ख़याल करते हैं।

अष्ट-धात (अष्टधातु)—यह आठ चीज़ों का मिश्रण है; छे हफ़्तजोश के अंश और रूह तूतिया तथा कांसी। यह सात चीज़ों से भी बनता है।

कौल-पत्र—२ सेर सफ़ेद रू और एक सेर तांबे से बहुत रंगीन और सुहावना तैयार होता है। यह सम्राट् के पवित्र आविष्कारों में से है।

आईन १४।

पदार्थों की लघुता और गुरुता।

यह लिखा जा चुका है कि अनेक प्रकार के मिश्रितों की सृष्टि, वाष्प (बुख़ार) और धूम (दुख़ां) के संयोग से होती है, और वे दोनों तत्वों के प्रभाव से हलके और भारी होते हैं। इसके अतिरिक्त बुख़ार ख़ुश्क हो या तर, कभी ऐसा होता है कि वे मिलने के पहले पकते हैं अथवा पीछे, और कभी कभी उक्त दोनों दशाओं में से एक में। इस कारण वह मिश्रित पदार्थ, जिसके वायु और अग्नि सम्बन्धी अवयव, जल और पृथ्वी के कणों से प्रबल होते हैं उस खनिज द्रव्य से हलका होता है, जिस में जल और पृथ्वी के कण अधिक होते हैं। इसी प्रकार वह खनिज पदार्थ जिसका बुख़ार दुख़ां से विशेष होता है उससे हलका होता है, जिसका दुख़ां बुख़ार से अधिक होता है। इसी तरह वह खनिज वस्तु, जिसमें बुख़ार और दुख़ां की परिपक्वता विशेष हो उस से अधिक भारी होता है, जो उस दर्जे को नहीं पहुँचता है; क्योंकि परमाणुओं का अंतर और वायु का प्रवेश ही हर शरीर को बड़ा बनाता और हलका करता है। इस अनुभव के द्वारा प्रत्येक वस्तु की लघुता और गुरुता जानने का साधन उपलब्ध होता है। पूर्वजों में से एक व्यक्ति[1] ने पदार्थों की गुरुता का अंतर कुछ पद्यों में वर्णन किया है :—

१—इस व्यक्ति से आशय अबू नासिर-फ़राही से है। यह सिजिस्तान के क़स्बे फ़राह का रहने वाला था। इसका असली नाम मोहम्मद बदरुद्दीन था। इसने निसाबु-सिसबियां नामक एक पद्यात्मक शब्दकोष बनाया था, जो फ़ारस और हिन्दुस्तान के फ़ारसी के अधिकतर मदरसों में शताब्दियों से पढ़ाया जाता है। (Journal of Asiatic Society Bengal, 1868. P. 7.)।

"हमने पदार्थों की गुरुता इस प्रकार नियत की है :—सोना १९.२६ ; पारा १३.६ ; सीसा ११.३२५ ; चाँदी १०.४७ ;

क़ता ।

ज़ रुह जुस्सा-ए हफ़्तादो यक दिरम सीमाब,
चिलो शशस्तो ज़ अर्ज़ीज़ सी ओ हश्त शुमार ।
ज़हब सदस्त सरब पंज हो नुह आहन चिल,
बिरंजो मिस चिहलो पंज नुक़रा पिंजहो चार ।

"पारे की गुरुता ७१ दिरम है, रुई की ४६, रांगे की ३८, सोने की १००, सीसे की ५६, लोहे की ४०, पीतल एवं तांबे की ४५ और चांदी की ५४।" कुछ लोगों ने इस गणना को अक्षरों की संख्याओं में वर्णन किया है :—

क़ता ।

नुह फ़िलज़्ज़े मुस्तवी उल हज्म रा चूं बर कशी,
इख़्तिलाफ़े वज़्न दारद हर यके बे इश्तिबाह ।
ज़र लकन ज़ीबक़ अलम असरब दहन अर्ज़ीज़ हल,
फ़िज़्ज़ः नद आहन यके मिस्सो शबः मह रुए माह ।

अर्थात् यदि तुम समान विस्तार वाली नौ धातुओं को तोलो, तो उनके वज़न में, निस्सन्देह इस प्रकार अन्तर पाओगे :—सोना लकन[1]=१००, पारा अलम=७१, सीसा दहन=५६, रांगा हल=३८, चांदी नद=५४, लोहा यके=४०, पीतल और ताँबा माह=४५, रुई माह=४६ ।

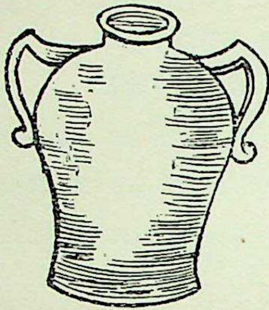
यदि उपरोक्त धातुओं[2] के कुछ टुकड़े, जो लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई में बराबर हों, लेवें, तो तोलने पर भार में वे एक दूसरे से भिन्न निकलेंगे । कुछ

ताँबा ६ ; टिन ७·३२ ; लोहा ७·७ ; जिसके समानुपात के लिए पानी मान है । अबुल फ़ज़ल ने सोने को मान माना है, और उसकी गुरुता १६·२६ निश्चित की है । इस हिसाब से पारा १३·८७; सीसा ११·३६; चांदी १०·४० ; तांबा ८·६७ ; लोहा ७·७६ ; टिन ७·३२ ; रुई ८·८६ होता है"—ब्लाक् मैन् (Blochman's translation of Ain-i-Akbari, Vol. 1, P. 42, Note 1)। टिन शब्द क़लई के लिए प्रयोग किया गया है । क़लई को हिन्दी में रांगा कहते हैं ।

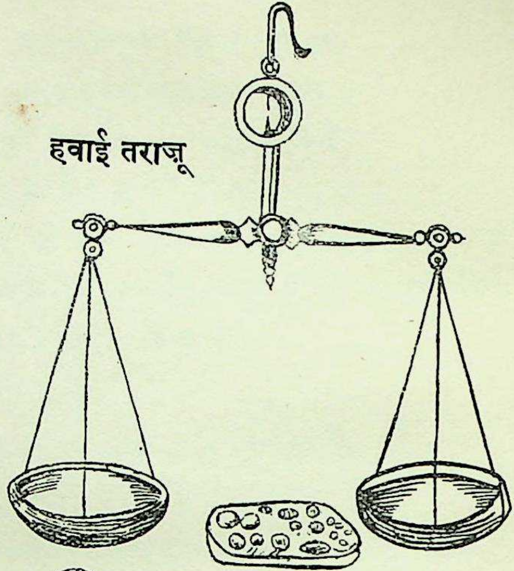
१—फ़ारसी भाषा में प्रत्येक अक्षर के लिए कुछ अंक नियत हैं, जैसे—लाम के लिए ३०, काफ़ के लिए २०, नून के लिए ५० । लकन=लाम+काफ़+नून=३०+२०+५०=१०० । इसी प्रकार औरों की भी संख्याएं जानना चाहिये । पुराने फ़ारसीदां तारीख़ निकालने में संख्याओं का बहुधा प्रयोग करते थे ।

२—पहले धातुओं में उन्हीं द्रव्यों की गणना थी जो पीटने पर बिना खंडित हुये या चूर हुये बढ़ सकते थे—जैसे सोना, चांदी आदि । पर आजकल चूर होने वाले द्रव्य भी—संखिया, हरताल, सुरमा, सज्जीखार आदि—धातुओं के अन्तर्गत माने जाते हैं । पुराने ग्रंथों में अलुमीनियम्, प्लेटिनम्, निकल, कोबाल्ट और रेडियम् आदि का

पानी का बर्तन



हवाई तराज़ू



आबी तराज़ू

पृष्ठ ८७ देखिये।

बुद्धिमान धातुओं के मानान्तर का कारण, उनके पिण्डों की गुण सम्बन्धी विभिन्नता ख्याल करते हैं; और उनका हलकापन, भारीपन, पानी पर तैरना, डूब जाना, और भारों का अंतर, हवाई और आबी तराज़ू पर तौल कर मालूम कर लेते हैं।

कितने ही तीक्ष्ण-दृष्टि वैज्ञानिक सब पदार्थों की नाप-जोख पानी से करते हैं। वे एक विशेष प्रकार का पात्र बनाते हैं, और उसको पानी से भर देते हैं। फिर उसमें सब धातुएं सौ सौ मिसक़ाल डालते हैं। उनके डालने से जितना पानी बाहर गिर जाता है, उससे उनके विस्तार और गुरुता का अन्तर जान लेते हैं। जिस पदार्थ का गिरा हुआ पानी ज्यादा होता है उसका विस्तार अधिक और गुरुता न्यूनतर होती है; पर जिसका निकला हुआ पानी कम होता है वह उसके विरुद्ध होता है। इस प्रकार उपर्युक्त परिमाण (१०० मिसक़ाल) में चांदी को बर्तन में डालने पर उसका पानी ९$\frac{२}{३}$ मिसक़ाल कम हो जाता है, और उतनाही सोना डालने पर ५$\frac{१}{४}$ मिसक़ाल घट जाता है। जब किसी पदार्थ के गिरे हुये पानी का परिमाण उसके वायु संबंधी भार (हवाई वज़न) में से घटादें, तो जो कुछ शेष रहेगा वह जल संबंधी भार (आबी वज़न) होगा। हवाई तराज़ू वह है जिसके दोनों पल्ले हवा में रहें, और आबी तराज़ू उसे कहते हैं जिसके दोनों पलड़े पानी पर रहें। भारी पदार्थ में डूबने का बल विशेष होता है, इसलिए प्रत्येक दशा में वह केन्द्र की ओर दौड़ेगा। यदि दोनों तराज़ुओं में से कोई पानी की सतह पर हो और दूसरी वायु में, तो हवाई यद्यपि हलकी होती है तो भी डूब जायगी, क्योंकि वायु जल से सूक्ष्म होती है, इससे इस हद तक प्रतिरोध नहीं करती। पर यदि बाहर गिरा हुआ पानी, अन्दर डाले हुये पिण्ड के विस्तार के बोझ से न्यूनतर हो, तो वह पिण्ड डूब जायगा। यदि गिरा हुआ जल अधिक होगा तो पिण्ड पानी पर तैरने लगेगा। और यदि बाहर निकला हुआ पानी, पिण्ड के वज़न के बराबर हो, तो वह पानी में इतना डूबेगा कि उसका ऊपरी भाग पानी के धरातल के बराबर रहे। इस सम्बन्ध में अबूरैहान बेरूनी ने एक तालिका तैयार की है, लोगों की जानकारी के लिए, मैं उसका यहां पर उल्लेख करता हूँ :—

पता नहीं चलता। वैद्यक ग्रंथों में सोना, चांदी, तांबा, रांगा, लोहा, सीसा और जस्ता को सप्तधातु बतलाया गया है। सोनामाखी, रूपामाखी, तूतिया, कांसा, पीतल, सिंदूर और शिलाजीत ये सात उपधातु कहलाती हैं। वैद्यक के ग्रंथों में पारे को धातु नहीं माना है, वरन् उसे रस बतलाया है। गंधक, ईंगुर, अभ्रक, हरताल, मैनसिल, सुरमा, सुहागा, चुम्बक, फिटकरी, गेरू, खरिया, कसीस, खपरिया, बालू, मुरदासंख की गणना उपरसों में है। पारा द्रव अवस्था में मिलता है, इस लिए यूरोप वाले इसे बहुत दिनों तक धातु नहीं मानते थे। जब

धातुओं की लघुता और गुरुता की तालिका।

नं०	धातुओं तथा रत्नों के नाम	उस जल का परिमाण जो १०० मिस्क़ाल धातु या रत्न डालने पर बाहर निकल जाता है।			धातुओं और रत्नों के वज़न पानी में जब कि हवा में वे १०० मिस्क़ाल हों।			धातुओं और रत्नों की तौल हवा में जब कि उनका विस्तार १०० मिस्क़ाल सोने या १०० नीले याक़ूतों के बराबर हो।		
		मिसक़ाल	दवानक़	तस्सूज	मिसक़ाल	दवानक़	तस्सूज	मिसक़ाल	दवानक़	तस्सूज
१	सोना	५	१	२	९५	४	२	१००	×	×
२	पारा	७	२	१	९२	३	३	७१	१	१
३	सीसा	८	५	३	९१	१	३	५९	२	२
४	चांदी	९	४	१	९०	१	३	५४	३	३
५	कांसा	११	२	३	८८	४	३	४६	२	३
६	तांबा	११	३	३	८८	३	३	४५	३	३
७	पीतल	११	४	३	८८	२	३	४५	३	५
८	लोहा	१२	५	२	८७	३	२	४०	×	×
९	रांगा (क़लई)	१३	४	३	८६	२	३	३८	२	२
१०	याक़ूत आसमानी	२५	१	२	७४	४	२	९४	३	३
११	याक़ूत सुर्ख़	२६	८	३	७४	३	३	९४	३	३
१२	लाल	२७	५	२	७२	३	२	९०	२	३
१३	ज़मुर्रद	३६	२	३	६३	४	३	६९	३	३
१४	मोती	३७	१	३	६२	५	३	६७	५	२
१५	लाज़हवर्द	३८	३	३	६१	३	३	६५	३	२
१६	अक़ीक़	३९	३	३	६१	३	३	६४	४	२
१७	कहरुवा	३९	३	३	६०	३	३	६४	३	१
१८	बिल्लौर२	४०	३	३	६०	३	३	६३	३	३

मालूम हुआ कि अधिक सरदी से पारा जम जाता है तब उसकी गणना धातुओं में की। अमेरिका वाले बहुत दिनों तक उल्का पिंडों के लोहे का ही व्यवहार करते रहे। उनको और किसी प्रकार के लोहे के व्यवहार का ज्ञान ही नहीं था। जब यूरोप वाले वहां पहुँचे तो उनको तरह तरह के लोहे का व्यवहार मालूम हुआ। धातुओं में प्रसिद्ध धातु सोना, चांदी, तांबा, लोहा, सीसा और रांगा हैं। इन पर लोगों का बहुत प्राचीन काल में ध्यान गया था। इनमें सब से हलकी धातु रांगा है, जो जल से लगभग आठ गुना भारी होता है।

१—४ तस्सूज=१ दवानक़ या दांग, ६ दवानक़ =१ मिसक़ाल। इस हिसाब से इस तालिका की अनेक धातुओं की तौल में साधारण अन्तर प्रतीत होता है, क्योंकि बाहर के जल का भार और पानी की धातु की तौल १०० मिसक़ाल होना चाहिए। याक़ूत आसमानी पारा और चांदी की तौल तो ठीक है परन्तु अन्य धातुओं तथा रत्नों की तौल दूसरी हस्त-लिखित पुस्तकों की संख्याओं से नहीं मिलती।

२—जिन अणुओं के संयोग से ये धातुएं बनी हैं, आजकल के वैज्ञानिक उनमें दो चीज़ें मानते हैं:—एक द्रव्य (matter) और दूसरी शक्ति (energy)।

आईन १५।

अन्तःपुर[1]।

विश्व-विभूषक सम्राट् को आबादी की बड़ी चिन्ता रहती है, इससे कार्य योग्यता से होते हैं, सृष्टि सत्यता की हरित-भूमि हो जाती है और वाह्यता आत्मिकता का रूप प्रदर्शित करती है। इसी कारण से, स्त्रियों की अधिकता ने,—जिसने बड़े बड़े ज्ञानवानों को मोह के अंध-पाश में फांस दिया है—सम्राट् का ज्ञान-प्रकाश बढ़ाया और सांसारिक बन्धन के गढ़े से निकाल कर विरक्ति-शिखिर पर पहुँचाया। उत्तमोत्तम ढंग से, अन्तःपुर आबाद हो गया और परिवार सुव्यवस्थित हो गये। सम्राट् ने हिन्दुस्तान एवं अन्य देशों के श्रेष्ठ पुरुषों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये, और इस एकता के नाते के द्वारा अशान्त जगत शांत हो गया।

१—महाभारत काल में "राजा का महल बहुधा क़िले के अन्दर हुआ करता था। उसमें कई आंगन और कक्षाएं होती थीं। बाहर की कक्षा में सब लोगों को आने की इजाज़त थी, और दूसरी कक्षा में केवल अधिकारी और दरबारी जा सकते थे। तीसरी कक्षा में यज्ञशाला राजा के स्नान तथा भोजनगृह आदि का प्रबन्ध रहता था। चौथी कक्षा में अन्तःपुर होता था। यहां का स्थान विस्तीर्ण होता था, उस में बड़े बड़े बाग़ बग़ीचे लगे रहते थे। राजा के अन्तःपुर में स्त्रियाँ रहती थीं" (महाभारत मीमांसा, पृ० ३१४)।

कौटिल्य ने अन्तःपुर निर्माण के सम्बन्ध में लिखा है:—"अन्तःपुर में अनेक कमरे हों। उसके चारों ओर दीवार, द्वार तथा खाइयां हों। राजा का निवास-स्थान कोषगृह के अनुरूप बनाया जाय। एक मोहन-गृह बनाया जाय, जिसकी दीवारों से होकर आने जाने के मार्ग हों। राजा का निवास-स्थान इसके मध्य में भी हो सकता है। इसी प्रकार एक महल बनाया जाय और भूमिगृह तैयार किया जाय, जिसके दरवाज़ों पर मूर्तियां बनी हों, दीवारों में सीढ़ियाँ लगी हों, अन्दर बाहर जाने के लिए अनेक सुरंगें हों, सब खम्भे पोले हों और उनसे होकर आने जाने के मार्ग हों। उनकी छतों की कल और यंत्रों से इस प्रकार रचना की गई हो कि आवश्यकता के समय वे एक क्षण में बिठलाई जा सकें। इस महल को भी राजा अपना निवास-स्थान बना सकता है। सहपाठी और बचपन के साथियों से बचने के लिए और आकस्मिक आपत्ति के समय आत्म-रक्षा के लिए उपर्युक्त उपाय आवश्यक है। अन्तःपुर के पिछले भाग में स्त्रियों के रहने का स्थान, गर्भोपयोगी जड़ी बूटियों का क्षेत्र और तालाब बनाया जाय। बाहर की ओर लड़के लड़कियों का निवास, और आगे की तरफ़ शृङ्गार-गृह, दरबार, राजकुमारों तथा अध्यक्षों के रहने के स्थान हों" (कौटिल्य अर्थशास्त्र प्रथम अधिकरण)।

विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय (१५०९—१५२९ ई०) के महल का वर्णन बहुत विस्तृत और मनोरंजक है। उसके प्रासाद में कितने ही सहन, कितने ही

जिस प्रकार सम्राट् ने अपने ज्ञान के प्रकाश से बाहर के योग्य सेवकों को गुमनामी की धूल से उठाकर उच्चपद प्रदान किये, उसी प्रकार उसने अपनी दूर-दर्शिता से महल के सभी दास दासियों की योग्यतानुसार पद-वृद्धि की। अदूरदर्शी तो यह जानता है कि उसने मिट्टी से सौंदे हुये सोने को चमका दिया है, पर सूक्ष्मदर्शी समझता है कि यह अकसीरसाज़ी या रसायन बनाना है। जब जड़ी बूटी धातुओं को और का और बना देती हैं, अर्थात् तांबा और लोहा सोना हो जाता है तथा रांगा और सीसा चांदी बन जाती है, तो यदि कोई श्रेष्ठ पुरुष किसी अयोग्य व्यक्ति को मनुष्य बना दे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है :—

च नीको ज़दन्द ईं मसल होशमन्दां,
कि अक्सीर बख़्तस्त चश्मे-बलन्दां।

अर्थात् बुद्धिमानों ने यह कहावत क्या ही अच्छी कही है कि महापुरुषों की दृष्टि भाग्य की रसायन है। सम्राट् में प्रबन्ध के सभी गुण, जैसे ज्ञानाचता, सूक्ष्मदर्शिता, पद-ज्ञान, गुणग्राहकता, कार्य-प्रियता और सहनशीलता विद्यमान हैं। वह क्रोध में भी सन्मार्ग नहीं त्यागता, अधिक दया करने पर दृष्टि रखता है, सुनी हुई बातों को दूरदर्शिता से तौलता है, और कल्पित विचारों से दूर रहता है। वह मनुष्यों की सद्भावनाओं की प्राप्ति को दुर्लभ समझता है, और सांसारिक मदिरा से अपने ज्ञान-मणि को आघात नहीं पहुँचाता है।

महल और अनेक कमरे थे, जो सोने, चांदी और जवाहरात से सजे हुये थे। किसी किसी महल के सब कमरे हाथी दाँत के थे। उनमें हाथी दाँत के ही गुलाब और कमल के फूल बने हुए थे। कितने ही कमरों में रत्न जड़े हुये थे। ये इतने सुन्दर और मूल्यवान थे कि पर्यटक पेई (Paes) के शब्दों में "अन्यत्र वैसे कठिनाई से देखने को मिलते।" एक कक्षा में मानव-जीवन की सब अवस्थाओं के चित्र थे, उनको अवलोकन करके राजमहिषीं सब जातियों (पुर्तग़ीज़ों तक) के रहन-सहन के तरीक़ों को जान सकती थीं। वे भिखारियों और अन्धों तक की अवस्था से परिचित थीं। एक महल में सोने से मढ़े हुये दो तख़्त थे। उसी जगह पर हरित सूर्यकान्तमणि का एक तख़्ता था, जो उस महल का एक अपूर्व पदार्थ था। उसके बाद एक बहुत बड़ा सहन था, जिसमें रानियों के लिए झूलने पड़े हुये थे। चार खम्भों पर सधा हुआ एक निवास था जिसके सायबान में नर्तकियों की मूर्तियां थीं। इनके अतिरिक्त और भी सुन्दर मूर्तियां थीं। यहीं पर एक आराध्य मूर्ति थी, जो पूजा के समय स्वर्ण सिंहासन पर ले जाई जाती थी। एक दालान तथा एक कमरे में दो पलंग थे जो चांदी की ज़ंजीरों से टंगे हुये थे। उनके पाये सोने के थे। उनमें रत्न जड़े हुये थे। इसके बाहर सहन में धनुष और बाण धारण की हुई महिलाओं की मूर्तियां थीं। एक दूसरे स्थान पर सोने के तीन बड़े बड़े कड़ाह या डेगें थीं, उनमें गाय का आधा अङ्ग छिप सकता

सम्राट् ने एक विशाल दुर्ग बनाया है, उसके रम्य भवनों में वह विश्राम करता है। ५००० से अधिक महिलाएं हैं, उनमें से प्रत्येक के लिए एक पृथक् गृह मनोनीत किया है। अलग अलग टोलियां बनाकर, वह उनको उत्तम सेवाओं पर तत्पर रखता है। चरित्रवती ललनाएं हर झुण्ड की निरीक्षणता के लिए दारोग़ा[1] पद पर नियुक्त की गई हैं। इन शीलवती सीमन्तिनियों में से उसने एक वरवर्णिनी को लेखिका बनाया है। उसने बाहर की तरह यहां भी कारख़ाने आबाद किये हैं, और प्रत्येक स्त्री का, उसकी योग्यतानुसार उपयुक्त वेतन नियत किया है। यद्यपि सम्राट् की बख़शिश का अनुमान लेखनी द्वारा नहीं किया जा सकता तथापि जो रक़म केवल मासिक वेतन के रूप में प्रत्येक सरदार महिला पाती है वह १६१० रुपए से १०२७ रुपए[2] तक है। कुछ सेविकाओं को ५१ से २०

था। अन्तःपुर का एक कमरा, जिसमें बैठ कर राजा नृत्य देखा करता था, स्वर्णमय था। उसके फ़र्श और दीवारों पर सोने के पत्र मढ़े हुये थे। इसी कमरे में दीवार के बीचोंबीच में बारह वर्ष की कन्या के बराबर एक सोने की मूर्ति थी (A Forgotten Empire, by Sewell, 1924, P. 284—88)।

१—दरोगा या दारोग़ा शब्द को कुछ कोषकारों ने फ़ारसीभाषा का माना है (शब्दसागर पृ० १५४३)। पर फ़ारसी की कई प्रसिद्ध लुग़तों में वह नहीं है। किसी किसी ने उसे मंगोलभाषा का बतलाया है (Kovalevsky's Dictionary, No. 1672)। मंगोल भाषा में यह प्रान्त के गवर्नर या नगर के शासक के लिये प्रयुक्त होता था। मंगोलभाषा के सन् १३१४ ई० के एक शिलालेख में यह शब्द प्रान्तीय गवर्नर के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। चीन के शेन्सी प्रान्त में यह लेख प्राप्त हुआ था (Pauthier in his Marco Pollo., P. 773)। सुदूरपूर्व से ही यह शब्द इधर लाया गया है। तैमूर और उसके कुछ पिछले उत्तराधिकारी इस शब्द को गवर्नर के ही अर्थ में प्रयुक्त करते रहे; किन्तु कुछ दिनों के बाद यह साधारण अधिकारियों के लिए भी व्यवहृत होने लगा (Hobson-Jobson P. 279)। विल्सन के मतानुसार हिन्दुस्तानियों के राजत्वकाल में यह शब्द पहले विभिन्न विभागों के सुपरिन्टेन्डेन्टों तथा मैनेजरों के लिए इस्तेमाल किया जाता था; परन्तु पीछे से केवल चुंगी, आबकारी और पुलिस थानों के प्रधान अधिकारियों के लिए काम में लाया जाने लगा। १७६३ ई० से १८६२—६३ ई० तक स्थानीय पुलीस का चीफ़ या हेड कांस्टेबिल तक दारोग़ा कहलाता था। संयुक्त प्रान्त में थाने के इंचार्ज को अब भी दारोग़ा कहते हैं।

कौटिल्य-अर्थशास्त्र का अध्यक्ष शब्द दारोग़ा शब्द से मिलता जुलता है। यद्यपि दोनों के अधिकारों में कुछ अन्तर है तथापि कोई कोई शब्द भाव द्योतक अवश्य हैं, जैसे कौटिल्य का गोअध्यक्ष और आईने-अकबरी का दारोग़ा गावख़ाना आदि।

२—मूलग्रंथ में "अज़ यक हज़ार-ओ शशसद-ओ दह रुपया ता बीस्त-ओ हफ़्त" पाठ है, जिसका साधारण अर्थ १६१० से २७ रु० तक होता है। परन्तु यह वेतन "मिहीन बानों" (उच्च-पदस्थ महिला) का है। इससे २७ रुपया नहीं हो सकता। यदि सोलह सौ की अनुवृत्ति

रुपए तक, और कुछ को ४० से २ रुपए तक मिलते हैं। दरबार ख़ास में वह एक आज्ञा पालक उत्तम लेखक मुशरिफ़ (दीवान) पद पर नियुक्त करता है, जो कि राजभवन के आय व्यय की देख भाल करता है और नगदी तथा जिस का हिसाब रखता है। इस समुदाय की महिलाएं जो कुछ चाहती हैं, अपने वेतन के अनुसार अन्दर के एक तहवीलदार (ख़ज़ांची) से मांग लेती हैं। तहवीलदार उसकी याददाश्त (स्मरण-पत्र) फाटक के मुशरिफ़ के पास भेजता है। वह उसे जांचता है। प्रधान कोषाध्यक्ष उसके अनुसार रुपया चुका देता है। इस प्रकार की मांग में **बरात**[1] नहीं दी जाती है।

इसके अतिरिक्त मुशरिफ़ वार्षिक व्यय की **बरावुर्द**[2] बनाकर संक्षेप में क़ब्ज़[3] तैयार करता है, जिस पर राज्य के मंत्रियों की मोहर का निशान लगाया जाता है। उसके बाद उस पर ख़ास शाहंशाही मोहर से छाप लगाई जाती है। यह मोहर केवल अन्तःपुर सम्बन्धी व्यय-पत्र के लिए ही बनाई गई है। फिर यह क़ब्ज़ वसूलयाबी के लिए जारी होती है। इस प्रमाण-पत्र के आधार पर प्रधान ख़ज़ांची बाहर के प्रधान तहवीलदार को रुपया दे देता है। वह उस रुपए को मुशरिफ़ के आदेशानुसार छोटे तहवीलदारों को बांट देता है, वहां से रनिवास के नौकरों को मिल जाता है। वेतन का हिसाब किताब वर्तमान समय के रुपए की दर (४० दाम=१ रु०) के अनुसार होता है।

रनिवास के आस पास भीतर की ओर सौ शुद्धाचारिणी एवं सचेत महिलाएं पहरा देती हैं[4]। विशेष कर सम्राट् के निवास स्थान पर शीलवती वाकपटु और

मानी जाय तो पिछली संख्या १६२७ होनी चाहिए पर अबुलफ़ज़्ल बहुधा बड़ी संख्या पहले लिखता है और छोटी संख्या बाद को। इस कारण से कदाचित् १६०० की अनुवृत्ति नहीं होगी वरन् दस सौ की होगी। इस हिसाब से २७ की संख्या १०२७ मानी जायगी। मौ० ज़काउल्ला ने अपने "इक़बालनामा अकबरी" में उक्त संख्या १०२७ ही लिखी है, किन्तु ब्लाक्-मैन के अनुवाद में १०२८ है। एक प्रति के पाठान्तर से ब्लाकूमैन की भी संख्या ठीक है।

१—चेक।

२—चिट्ठा।

३—क़ब्ज़ुलवसूल।

४—कौटिल्य ने अर्थ-शास्त्र (अधिकरण १, आत्मरक्षा-प्रकरण) में लिखा है कि "सोकर उठते ही राजा का आदर सत्कार धनुषबाण धारण की हुई सैनिक महिलाएं करें।" इससे प्रकट है कि उस समय महिलाएं शस्त्र धारण करती थीं और अन्तःपुर में राजा की निकटस्थ शरीर रक्षिका होती थीं। इसके आगे लिखा है कि "दूसरी कक्षा में चोग़ा, पगड़ी और वर्दी आदि पहने हुये बुड्ढे अन्तःपुर के नौकर, तीसरी कक्षा में कुबड़े, बौने तथा किरात लोग, और चौथी कक्षा में मंत्री, सम्बन्धी तथा ड्यूढ़ीदार स्वागत करें।"

कुशाग्रबुद्धि वरवर्णिनी उपस्थित रहती हैं। बाहर की ओर शुभचिन्तक ख़्वाजा-सरा (नपुंसक गण) सेवकाई के लिये उत्सुक रहते हैं। इन से समुचित दूरी पर राजभक्त चौकसी करते हैं। उनके बाद सच्चे और परिश्रमी फाटकों के चौकीदार चौकीदारी पर प्रस्तुत रहते हैं। इनके अतिरिक्त बाहर की तरफ़ चारों ओर अमीर, अहदी और अन्य सैनिक, अपने अपने पदों के अनुसार रखवाली करते हैं।

विजयनगर के राजा कृष्णदेवराय की बारह रानी थीं उनमें तीन पटरानी थीं। हर एक महिषी की अनेक दासियां एवं शरीर रक्षिकाएं थीं। नपुंसक रक्षकों को छोड़कर रनिवास में कोई नही जा सकता था। हाँ, राजा की अनुग्रह से वृद्ध उच्चपदस्थ कभी उनको देख सकते थे। वे बन्द पालकियों में बाहर जाती थीं। तीन चार सौ नपुंसक उनके साथ होते थे, और सब लोग दूर रहते थे। इनके अतिरिक्त अन्तः-पुर में बारह सौ स्त्रियां ओर बतलाई जाती थीं। उनमें से अनेक स्त्रियां ढाल तलवार चलाती थीं, बहुतसी महिलाएं कुश्ती लड़ती थीं, कितनी ही तरह तरह के बाजे बजाती थीं और बहुतसी स्त्रियां फाटक के अन्दर उसी प्रकार विभिन्न पदों और कार्यालयों में काम करती थीं, जैसे कि बाहर पुरुष काम करते थे। राजा महल के अन्दर रहता था। जब वह किसी रानी से मिलना चाहता था तो नपुंसक को आज्ञा देता था। नपुंसक रनिवास में नहीं जा सकता था। वह अपेक्षित रानी की शरीर-रक्षिका से कहता था। शरीर-रक्षिका रानी को सूचना देती थी। तब रानी की कोई सहेली या दासी उसको राजा के पास पहुँचा देती अथवा राजा को वहीं बुला ले जाती थी (A Forgotten Empire P. 247—249)। राजा के लिए ऐसे बन्धन क्यों थे, इसका उत्तर पेई या न्यूनीज़ के (Narrative of Domingos Paes & Chronicle of Fernao Nuniz) विवरणों में स्पष्ट नहीं है। वरन् इसका उत्तर कौटिल्य के निम्न-लिखित वाक्यों से मिल जाता है :— घर के अन्दर पहुँचकर राजा बुड्ढी स्त्री के द्वारा पटरानी को कहलादे और जब कोई उसके पास न रहे तभी उससे मिलकर बात चीत करे। क्योंकि भाई ने रानी के कमरे में छिपकर भद्रसेन को, माता की चारपाई में छिपकर लड़के ने कारुश को, खीलों में शहद के बजाय ज़हर लगाकर रानी ने काशिराज को, विष में बुझे पायज़ेब से रानी ने ही वैरंत्य को, हीरे की कर्धनी से रानी ने ही सौवीर को, दर्पण से रानी ने ही जालूथ को, और बालों के जूड़े में शस्त्र छिपाकर रानी ने ही विदूरथ को मारा था।" न्यूनीज़ के विवरण से मालूम होता है कि कृष्णदेवराय के उराधिकारी अच्युतराय के पाँच सौ रानियाँ थीं। इनके अतिरिक्त महल के अन्दर चार हज़ार और स्त्रियाँ थीं। उनमें से कुछ नर्तकियाँ, कुछ रानियों की पालकी ढोने वालीं, कुश्ती लड़ने वालीं, फलित ज्योतिष की ज्ञाता, भविष्य कहने वालीं, फाटक के अन्दर के ख़र्चे का हिसाब किताब रखने वालीं, राज्य के विषयों का विवरण लिखने वालीं तथा लिखचुकने के बाद उनको बाहर के लेखकों से मिलान करने वालीं, गान-विद्या निष्णाता और वाद्यकला विशारदा थीं। राजा की रानियाँ भी गान विद्या में बड़ी कुशल थीं (A Forgotten-Empire, P. 370, 382)।

जब कभी बेगमें, अमीरों की पत्नीं तथा अन्य शुद्धाचारिणी महिलाएँ चाहती हैं कि सम्राट् की सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम करके सौभाग्यवती हों, तो वे पहले अन्तःपुर के सेवकों को सूचना देती हैं और उपयुक्त उत्तर पाती हैं। फिर उनके प्रार्थना-पत्र दरबार के पेशकारों के पास भेजे जाते हैं। इसके बाद जो स्त्रियाँ अधिकारिणी होती हैं, अन्दर जाने की आज्ञा पाती हैं। किन्हीं विशेष बेगमों को एक मास पर्यन्त रहने की आज्ञा मिल जाती है।

सत्यशील रक्षकों के विद्यमान होते हुये भी सम्राट् अपनी सूक्ष्म दृष्टि नहीं हटाता है और अपना अनुभव काम में लाता है।

आईन १६।

यात्राओं में निवास-व्यवस्था।

पड़ावों के पूरे प्रबन्ध का हाल वर्णन करना कठिन है, परन्तु जो व्यवस्था और सजावट शिकारों और निकटवर्ती यात्राओं में दृष्टि गोचर होती है, उसका थोड़ा सा हाल लिखता हूँ और आदर्श उपस्थित करता हूँ।

गुलालबार—एक अद्भुत बड़ा घेरा होता है[१], सम्राट् ने उसका आविष्कार किया है। उसके दरवाज़े बहुत मज़बूत होते हैं और ताले कुंजी से खुलते तथा बन्द होते हैं। वह सौ वर्ग गज़ से कम नहीं होता। इसके पूर्वीय किनारे पर एक डेरा खड़ा करते हैं, जिसमें दो प्रवेश-द्वार और चौवन कोठे होते हैं। प्रत्येक की लम्बाई चौबीस गज़ और चौड़ाई १४ गज़ होती है उसके बीच में एक बड़ी **चोबींरावटी**[२] खड़ी करते हैं और उसके आस पास दूसरे **सरापर्दे**[३] लगा देते हैं। इस चोबींरावटी से मिला हुआ एक दुखंडा **चोबींकाख़**[४] खड़ा किया जाता है, यह सम्राट् का उपासना-मन्दिर होता है। प्रातःकाल उस की छत पर बैठकर वह लोगों के अभिवादन (कोर्निश) स्वीकार करता है[५]। रनिवास से

१—इनमें से बहुतों का वर्णन फ़र्राशख़ाने (इक्कीसवें आईन) में भी है। २—लकड़ी की रावटी। ३—वे बड़े पर्दे जो आड़ करने के लिये ख़ेमों के इधर उधर दीवार के तौर पर लगाये जाते हैं। ४—काष्ट-भवन।

५—भारतवर्ष के शासकों में सम्राट् हर्षवर्द्धन के पड़ावों की व्यवस्था किसी हद तक अकबर से मिलती जुलती है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने 'हर्ष', नामक अपनी पुस्तक में लिखा है:—सम्राट् (हर्षवर्द्धन) दौड़े में

सम्बन्ध रखने वाली महिलाएँ बिना आज्ञा उसके अन्दर नहीं जासकतीं। उसके बाहर, १० गज़ लम्बी ६ गज़ चौड़ी, २४ चोबीं रावटियाँ सुचारु रूप से खड़ी की जाती हैं, और हर एक क़नातों से अलग कर दी जाती है। श्रेष्ठ बेगमें इन्हीं में शयन करती हैं। कुछ और भी तंबू और ख़ेमे खड़े किये जाते हैं, जिनमें ख़ास लोग निवास करते हैं। इनको ज़र्बफ़्त, ज़रदोज़ और मखमल के सायबानों से सजाते हैं।

चलित भवनों में ठहरता था। उसके ठहरने पर क़न्नौज में राज-सभा के लिए एक ऐसा ही प्रासाद निर्मित किया गया था। यह यात्रा-निवास भी कहलाता था, ऐसा ही एक भवन कजुघिर में बनाया गया था। ये झोंपड़ों के समान कटे हुये फूँस अथवा डालियों और शाखाओं से बनाये जाते थे, और सम्राट् के प्रस्थान करने पर आग लगाकर नष्ट कर दिये जाते थे। बाण ने अजिरवती नदी के तट पर मणितार शिविर का जो वृत्तान्त वर्णन किया है, उससे सम्राट् का ठाठ के साथ भ्रमण करना प्रकट होता है। वहाँ का राजकीय शिविर प्रसिद्ध अधीन राजाओं के अनेक शिविरों से—जो कि अपनी फ़ौजफाँटे के साथ उपस्थित थे—घिरा हुआ था। इसके अन्तर्गत चार विभिन्न प्रकार के सहन थे। चौथी कक्षा के एक डेरे में मोती के सदृश पाषाण-सिंहासन पर बैठकर पद्मराग मणि और नीलम की तिपाई पर पैर रखकर, सम्राट् लोगों को दर्शन देता था। शिविर के मार्ग भी उसी प्रकार सुशोभित और सज-धज के थे। राजद्वार गज वीथियों के कारण तमसाच्छन्न हो रहा था; एक स्थान पर घोड़े लहरों में ग़ोते लगाते हुये दृष्ट पड़ रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि मानों वे अपनी चंचलता के कारण आकाश की ओर को उछले हों। एक दूसरा स्थान ऊँटों की सेनाओं से भूरा हो रहा था। एक अन्य स्थान सफ़ेद छातों और चंवरों से श्वेत वर्ण हो रहा था। राज-शिविर के द्वार पर द्वारपाल थे, जिनका प्रधानाधिकारी पारियात्र था। यह सम्राट् का विशेष प्रिय पात्र था....। शिविर के भीतर एक अस्तबल था, जो सम्राट् के प्रिय घोड़ों से भरा हुआ था, उसमें राज्य का प्रसिद्ध हाथी दर्पशात भी था। इन चलित भवनों का महत्व सम्राट् के राजकीय महमानों के कारण और अधिक बढ़ गया था। आसाम के राजा कुमार ने उससे बंगाल के शिविर में भेंट की थी, उसके पायक २०,००० हाथियों और ३०,००० जहाज़ों पर आये थे....। हुआन चुआंग ने इन राजकीय यात्राओं के सम्बन्ध में लिखा है:— सम्राट् ने अपने समस्त राज्य का निरीक्षण जाजाकर किया, वह किसी स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहरा, किन्तु अपने रहने के लिए उसने पड़ावों पर अस्थायी निवास बनवा लिये। वर्षाऋतु के तीनमहीनों में वह बाहर नहीं गया। इस प्रकार की यात्रा में भी ५०० ब्राह्मणों और १००० बौद्ध भिक्षुओं को राजकीय अस्थायी निवासों से भोजन मिलता था।"

"इस प्रकार राजा अपने राज्य में सर्वोत्तम यात्री था और अपनी संवृद्धि में राज्य के निम्नलिखित स्थानों में उसने पड़ाव डाले थे—राजमहल, क़न्नौज, प्रयाग, मणितार (अवध), उड़ीसा,—इनके अतिरिक्त काश्मीर, वल्लभी, रीवा और गंजाम को एक आक्रमक की हैसियत से गया था (Harsh by Prof. Radhakumud mookerji, M. A., Ph. D., 1926, P. 86-88)

उससे लगा हुआ ६० गज़ लंबा चौड़ा **गलीमीसरा पर्दा** खड़ा करते हैं; इसमें कई ख़ेमे लगाये जाते हैं। ये डेरे **उर्दू बेगियों**[1] तथा अन्य पवित्र महिलाओं के विश्राम-स्थान होते हैं।

उसके बाहर ख़ास दौलतख़ाने तक १५० गज़ लंबा और १०० गज़ चौड़ा एक चित्ताकर्षक सहन सजाते हैं, उसको **महताबी** कहते हैं। उसके दोनों ओर पहले की तरह से क़नातें लगाते हैं, और हर दो गज़ के फ़ासले पर छे गज़ी चोबें खड़ी करते हैं, जो एक एक गज़ ज़मीन के अन्दर गड़ी रहती हैं। जिनके ऊपरी सिरों पर पीतल के कलश होते हैं। उनको भीतर और बाहर दो रस्सियों से कस देते हैं। पहरुए पूर्व-रीत्यनुसार पहरा देते हैं।

१—मूल में उर्दू बेगियां पाठ है। यह शब्द उर्दू और बेगियां से मिलकर बना है। तुर्की भाषा में उर्दू लश्कर, सेना या शिविर को कहते हैं। सन् १४०४ ई० में तैमूर ने इसका प्रयोग किया था। उस समय वह एक द्विभाषिया पर असन्तुष्ट होकर कहने लगा था—"तुम फ्रैंक राजदूतों के साथ नहीं थे, इस लिए मैं तुमको दंड दूंगा, और इस प्रकार भविष्य में सर्वदा के लिए कर्तव्य-पालन करने के निमित्त तुमको सन्नद्ध करूंगा। मैं हुक्म देता हूं कि तुम्हारे नथुने छेदे जांय और डोरी डाली जाय और दंड स्वरूप तुम सारी उर्दू (सेना) में घुमाये जाओ (Clavijo in Hobson-Jobson, P. 640,1903)। बाबर के भारतवर्ष में आने पर यह शब्द राजकीय-निवास के लिये व्यव्हत होने लगा था। उस समय राज-निकेतन को उर्दू-ए-मुअल्ला (श्रेष्ठ शिविर) कहते थे। दरबार और शिविर में जो मिश्रभाषा बोली जाती थी वह ज़बाने-उर्दू कहलाती थी। पर उस समय वह विकसित नहीं हो सकी थी। अकबर के राजत्व-काल में उर्दू शब्द केवल सेना या शिविर के अर्थ में ही प्रयुक्त होता रहा। उर्दू कहने से उर्दू भाषा नहीं समझी जाती थी। अबुलफ़ज़्ल ने उर्दू भाषा का आईने-अकबरी में कहीं उल्लेख नहीं किया है। इसके विरुद्ध हिन्दी भाषा के लिये हिन्दी शब्द अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। शाहजहां के शासन काल में उर्दू शब्द से उर्दूभाषा समझी जाने लगी। उर्दू उस समय बाज़ारू भाषा थी। पीछे से इसने साहित्य का रूप धारण किया और इस समय (१६३५ ई०) इसके गद्य और पद्य दोनों उत्कृष्ठ माने जाते हैं। आजकल उर्दू कहने से अधिकतर लोग उर्दू भाषा ही समझते हैं, सेना या शिविर नहीं। पर हाँ, पेशावर की हद पर आज कल भी उर्दू शब्द से रणक्षेत्र की सेना का पड़ाव, छावनी, कैम्प या शिविर समझा जाता है। बेगशब्द भी तुर्की भाषा का है। इसका अर्थ स्वामी और सर्दार होता है। बेगम शब्द इसी का स्त्रीलिङ्ग है। बेगी इसी का रूपान्तर है। उर्दू-बेगियों से महिला सैनिकों अथवा शस्त्रधारी स्त्रियों का तात्पर्य है। हिन्दी में किसी किसी लेखक ने इन्ही उर्दू-बेगियों को उर्दू-बेगिनियाँ लिखा है। इन्हीं स्त्रियों के समान पहरेदारों में एक और स्त्री-दल था, जो कलमाकनी कहलाता था, इनको बिवाह करने की आज्ञा नहीं होती थी।

इस आनन्द प्रद आँगन के बीच में एक चबूतरा[1] बनाते हैं; जिस पर चार चौबों से नमगीरा[2] तान देते हैं। सम्राट् सायङ्काल वहाँ पर बैठता है। विशेष व्यक्तियों के अतिरिक्त और कोई वहाँ नहीं जाने पाता। गुलालवार से मिला हुआ एक घेरा वृत्ताकार बनाते हैं, जिसमें बारह हिस्से होते हैं, जिनमें से प्रत्येक ३० गज़ का होता है। उसके दरवाज़े महताबी की ओर खुले रहते हैं। उसमें एक दस गज़ी चोबीं रावटी और चालीस भागों का **ज़मीदोज़** (ख़ेमा) सजाते हैं। उस पर बारह बारह गज़ के बारह शामियाने तान देते हैं। और कुछ क़नातें लगाकर उनको एक दूसरे से पृथक् कर देते हैं। इस एकांत-स्थान को **इबचकीख़ाना**[3] कहते हैं। हर निवास स्थान में उत्तम प्रकार का एक **सेहतख़ाना** तैयार करते हैं। सम्राट् ने तहारतख़ाने (पायख़ाना) का नाम सेहतख़ाना रक्खा है। उसके समीप १५० गज़ लंबा चौड़ा एक गलीमी सरापर्दा खड़ा करते हैं। इसमें ३६ वर्ग गज़ वाली १६ कोठरियाँ होती हैं। इसे भी पूर्वोक्तरीति से चोबों और कलशों से अलंकृत करते हैं। उसके बीच में एक हज़ार फ़र्राश बुज़ुग बारगाह बनाते हैं उसमें ७२ कमरे होते हैं, और १५ गज़ चौड़ा खुलाव रहता है। उस पर ख़ेमे की तरह एक **क़लंदरी** तान देते हैं, जो मोमजामे या किसी हल्की चीज़ की बनी हुई होती है। वह वर्षा और गरमी में सुख देती है। उसके आस पास चारों ओर बारह बारह गज़ के ५० शामियाने लगे रहते हैं। इस दौलतख़ानाख़ास[4] में भी दरवाज़े और ताले लगे होते हैं। बड़े बड़े अमीर और सेना के उच्च अधिकारियों को बख़्शी[5] हुक्म लेकर उसमें आने देते हैं। हर महीने के आरम्भ में, सम्राट् के सम्मुख उपस्थित होने के लिए नई आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती है। इस स्थान को बाहर भीतर बेलबूटेदार फ़र्शों से सजाते हैं, जिससे एक विचित्र फुलवाड़ी खिल जाती है। उसके बाहर ३५० गज़ की दूरी तक रस्सियाँ खिंची होती हैं, और वे हर तीन गज़ के फ़ासले पर एक चोब से बाँध दी जाती हैं। उसके आसपास मनुष्य रखवाली करते हैं। यही **दीवाने-आम** होता है। इसके चारों ओर पूर्वोक्तरीति से

१—फ़तहपुर सीकरी के भग्नावशेषों में अब भी इसका कुछ दृश्य देखा जा सकता है (Ain-i-Akbari, translated by Blochmann, Vol. 1, P. 46, note, 1873)।

२—वह कपड़ा जो सायबान के रूप में पलंग आदि के ऊपर ताना जाता है।

३—गुप्त-भवन।

४—निवासस्थान चित्र में देखिये।

५—सेना को वेतन बाँटनेवाले-सेना-नायक भी बख़्शी हुआ करते थे, क्योंकि जो भूमि उनको अपनी सेना का वेतन चुकाने के लिए दी जाती थी उसकी वे तहसील वसूल करते थे (Blochmann's, translation of Ain-i-Akbari, P. 47, note)।

पहरेदार चौकसी करते हैं। इस आनन्द-निकेतन के अंतिम छोर पर, ६० गज़ वाली १२ रस्सियों की दूरी पर **नक़्क़ारख़ाना** बनाया जाता है और उस मैदान के बीच में **आकाश-दिया** जलाया जाता है।

दौड़े में, पूर्वलिखित सामान में से कुछ साथ लेचलते हैं। फ़ुर्तीले फ़र्राश उन ख़ेमों में से एक को उस स्थान पर खड़ा करते हैं, जिसको मीरमंज़िल पसन्द करते हैं। दूसरे सामान को आगे लेजाकर लगाते हैं, और सम्राट् के शुभागमन की प्रतीक्षा करते हैं। १०० हाथी, ५०० ऊँट, ४०० छकड़े और १०० कहार इन ख़ेमों की बारबरदारी करते हैं। ५०० सवार, मंसबदार और अहदी इत्यादि तथा ईरानी, तूरानी और हिन्दुस्तानी १००० फ़र्राश, ५०० बेलदार, १०० सक़्क़े[1], ५० बढ़ई, ख़ेमे सीनेवाले और मशालची, ३० मोची, और १५० मेहतर सदा सेवा में संलग्न रहते हैं। प्यादे का मासिक वेतन २४० दाम से १३० दाम तक है।

आईन १७।

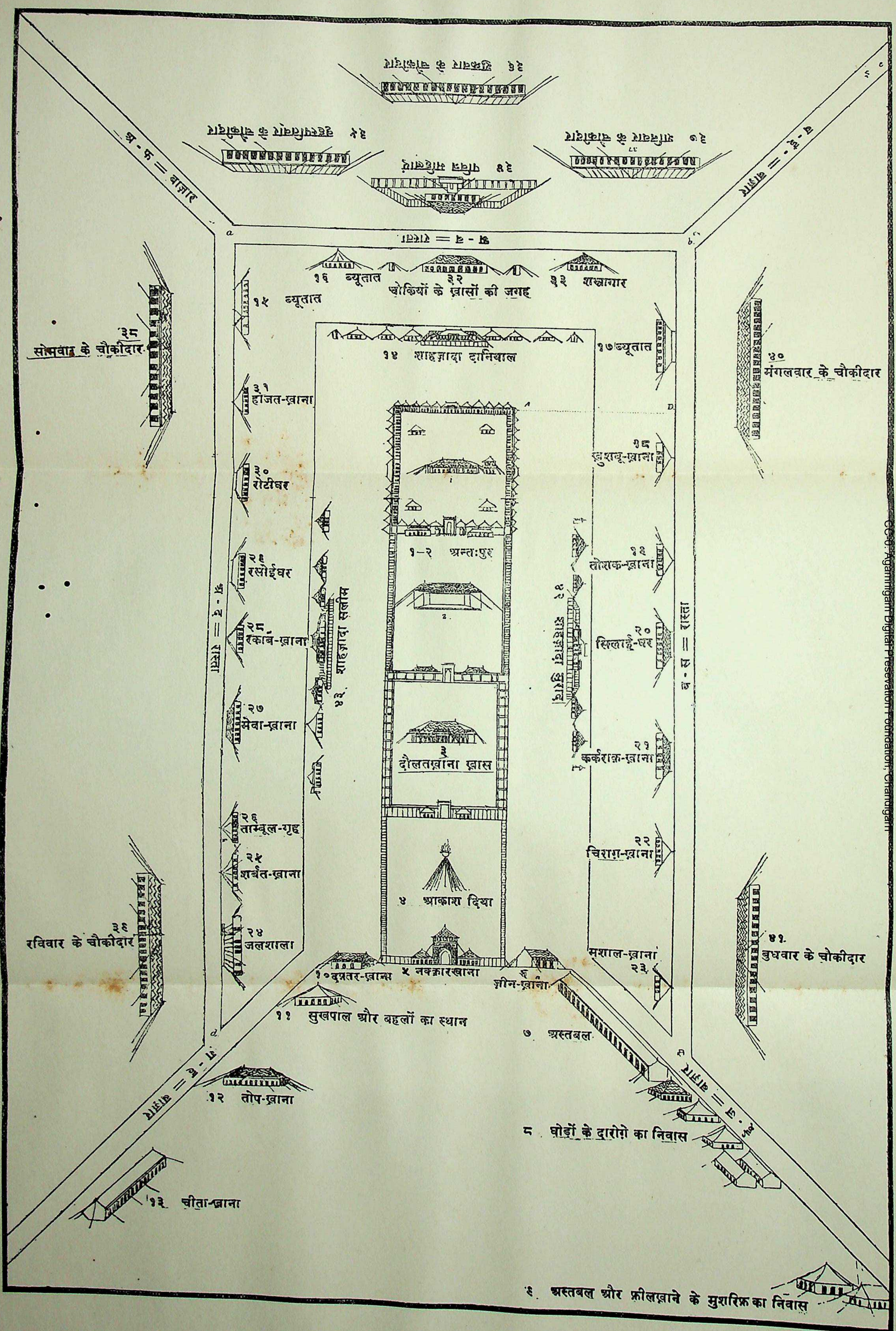
सेना का पड़ाव[2]।

सम्राट् अपनी सेनाओं को एकत्र होने की बहुत कम आज्ञा देता है। अधिकतर विजयिनी सेना, जिस ओर सम्राट्, चढ़ाई करता है उसी तरफ़ इकट्ठी होजाती है। परन्तु वह अनेक सेनाओं को प्रति पार्श्व प्रदेश के कार्यों में लगाकर भेज देता है, और साथ जाने की आज्ञा नहीं देता। मनुष्यों की अत्यधिक भीड़ और सेनाओं के बहुत बड़े जमघट के कारण, अनेक दिन बीत जाते हैं पर सिपाही एक दूसरे का डेरा नहीं ढूँढ़ पाते, फिर परदेशी की तो चर्चा ही क्या! सम्राट् ने अपनी बुद्धि के प्रकाश से इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रशंसनीय मार्ग खोजा है, जिससे जन समूह सुख पाते हैं। एक रम्य भू-भाग पर, जिसकी लंबाई १५३० गज़ होती है, पूर्व लेखानुसार रनिवास, दरबारे-आम, दरबारे-ख़ास और नक़्क़ारख़ाना बनाया जाता है। उसके दाहिने, बायें और पीछे की ओर ३०० गज़ खुला मैदान छोड़ दिया जाता है। चौकीदारों को छोड़कर, और कोई आदमी उसमें नहीं जा सकता। इसके बीच में १०० गज़ की दूरी पर केन्द्र स्थल में

१—पानी खींचने वाले, भिश्ती।

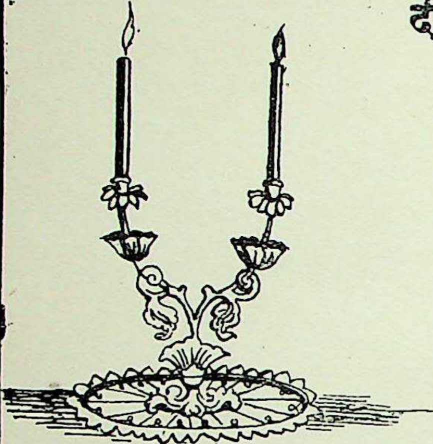
२—शब्दार्थ "सेना के उतरने का आईन।"

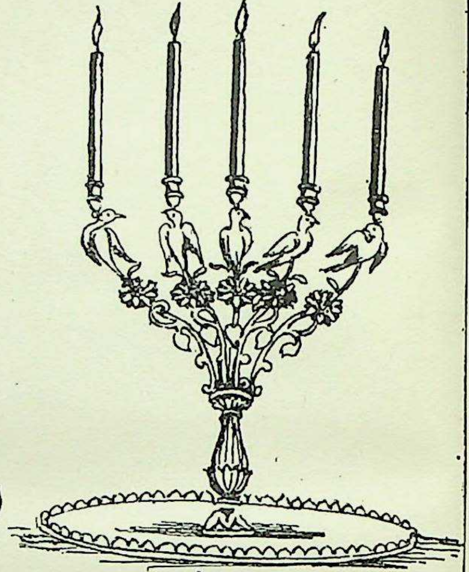
सेना का पड़ाव

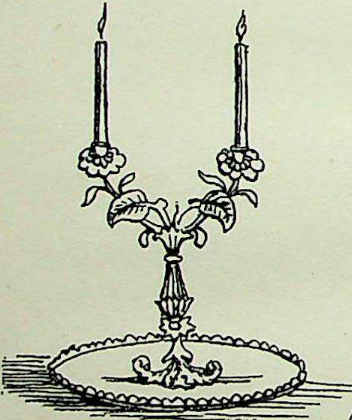


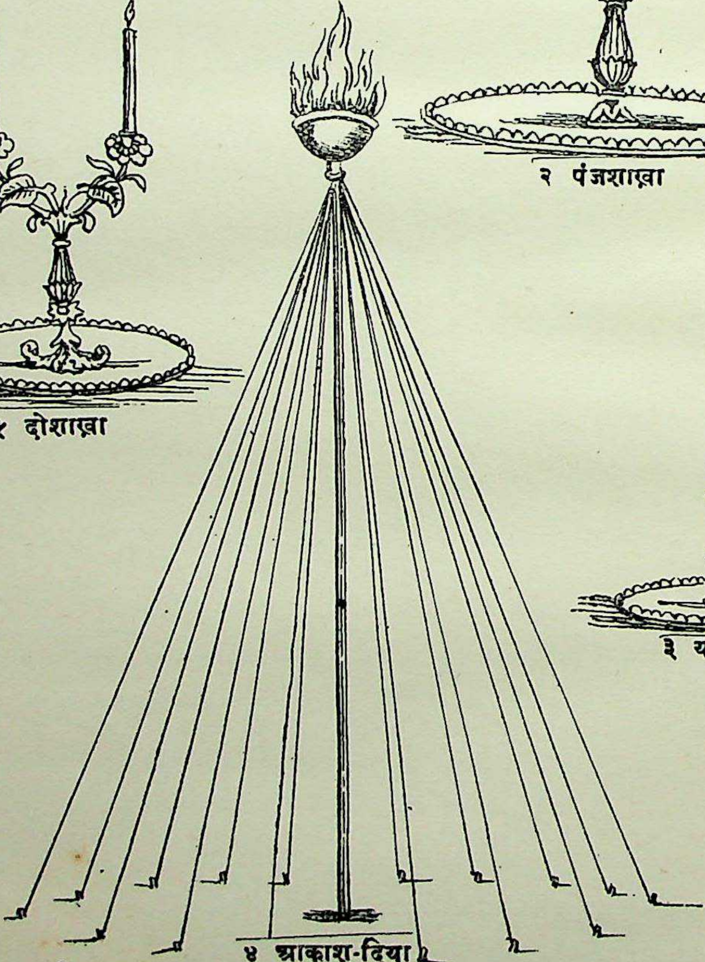
अ - फ = बाज़ार
ब - स = बाज़ार
स - द = बाज़ार
द - अ = बाज़ार
अ - ब = रास्ता
ब - स = रास्ता
अ - द = रास्ता
१६ ब्यूतात
३२ चौकियों के ख़ासों की जगह
३३ शस्त्रागार
१५ ब्यूतात
३८ सोमवार के चौकीदार
१४ शाहज़ादा दानियाल
१७ ब्यूतात
४० मंगलवार के चौकीदार
३१ हाजत-ख़ाना
१८ ख़ुशबू-ख़ाना
३० रोटीघर
२९ रसोईघर
१९ तोशक-ख़ाना
१-२ अन्तःपुर
२८ रकाब-ख़ाना
४३ शाहज़ादा सलीम
४२ शाहज़ादा मुराद
२० सिलाहे-घर
२७ मेवा-ख़ाना
३ दौलतख़ाना ख़ास
२१ कर्कराक़-ख़ाना
२६ ताम्बूल-गृह
२२ चिराग़-ख़ाना
२५ शर्बत-ख़ाना
४ आकाश दिया
३९ रविवार के चौकीदार
२४ जलशाला
मशाल-ख़ाना
२३
४१ बुधवार के चौकीदार
१० कुश्तर-ख़ाना
५ नक्कारखाना
६ ज़ीन-ख़ाना
११ सुखपाल और बहलों का स्थान
७ अस्तबल
१२ तोप-ख़ाना
८ घोड़ों के दारोगे का निवास
१३ चीता-ख़ाना
९ अस्तबल और फ़ीलख़ाने के मुशरिफ़ का निवास

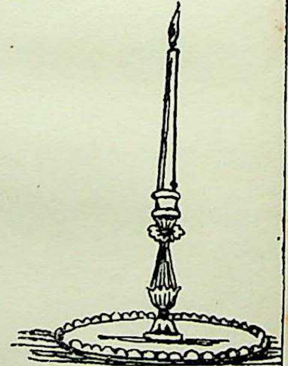
दीप-प्रदीपन


१ दोशाख़ा


२ पंजशाख़ा


५ दोशाख़ा


४ आकाश-दिया


३ यकशाख़ा

मरियममकानी[1], **गुलबदन बेगम**[2], और अन्य पवित्र महिलाएँ तथा शाहज़ादा **दानियाल**[3] ठहरते हैं। दाहिनी ओर शाहज़ादा **सुलतानसलीम**[4] उतरते हैं, और बाईं ओर शाहज़ादा **शाहमुराद**[5]। इन ख़ेमों के पीछे कुछ दूरी पर कार्यालय (दफ़्तर और कारख़ाने) सुव्यवस्थित होते हैं। उनके पीछे ३० गज़ छोड़कर हर कोने में बाज़ार सजता है। अमीर लोग, अपने अपने पदों के अनुसार चारों ओर ठहरते हैं। बृहस्पति, शुक्र और शनिवार के पहरेदार मध्यस्थल में, रविवार और सोमवार के दाहिनी ओर, मङ्गल और बुधवार के बाईं तरफ़ अपने अपने दर्जे के अनुसार रहते हैं।

आईन १८।

दीप-प्रदीपन।

बुद्धिमान् सम्राट् ज्योति की उपासना को ईश्वर की आराधना एवं परमात्मा की वन्दना समझता है। अन्ध-हृदय मूर्ख उसे ईश-विस्मरण और अग्नि-पूजन ख़्याल करता है। पर सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी इसे बहुत अच्छी तरह से जानता है कि जब शिष्टों की बाह्य-पूजा योग्यता का लक्षण माना जाता है और उसका न करना अशुभ समझा जाता है, तो यह उत्कृष्ट और श्रेष्ठतम तत्व (अग्नि)—जो मनुष्य-मात्र के जीवन-अस्तित्व और स्थिरता का साधन है—कैसे आराधनीय नहीं है। और ऐसे विषय में अनिष्ट विचारों को क्यों प्रविष्ट होने दिया जाय। शेख़ शरफ़ुद्दीन मुनैरी[6] ने क्या ही अच्छा कहा है:—"जिस किसी का सूर्य अस्त होजाय, यदि वह दीपक से अनुकूलता न करे, तो क्या करे।" ज्वाला उसी प्रधान ईश्वरीय स्रोत (सूर्य) की आभा है, और उसी पवित्र मणि (सूर्य) का चिह्न है।

१—यह अकबर की माता की उपाधि थी। इसका असली नाम हमीदाबानो बेगम था।

२—गुलबदन बेगम अकबर की बुआ का नाम था, अर्थात् वह हुमायूँ की बहिन थी और ख़िज्र ख़्वाजा की पत्नी थी।

३—अकबर का छोटा पुत्र, जो उसको अधिक प्रिय था।

४—अकबर का ज्येष्ठ पुत्र, जो पीछे से जहाँगीर बादशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

५—शाह मुराद अकबर का मंझला पुत्र था।

६—मुनैर बिहार में एक क़स्बा है। शेख़ शरफ़ुद्दीन वहीं का प्रसिद्ध मुसलमान फ़क़ीर था। इसकी फ़ारसी की कृतियाँ एशियाटिक सोसायिटी बंगाल की लायब्रेरी में मौजूद हैं। इसकी मृत्यु पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुई थी।

यदि अग्नि और सूर्य न होते तो भोजन और औषधियाँ क्योंकर उत्पन्न होतीं, और नेत्रों की चाक्षुष शक्ति किस काम आती। इस ऐश्वर्य दीप की अग्नि आकाशीय अग्नि है।

दोपहर को भास्कर के ऊपर चढ़ने पर, जब प्रकाश संसार में फैल जाता है, एक सफ़ेद चमकदार गोल पत्थर जिसको हिन्दी में **सूरजक्रान्त**[१] कहते हैं, उसको सूर्य के सामने रखते हैं। और कुछ रुई उसके समीप रख देते हैं। पत्थर के द्वारा गर्मी से उसमें आग लगजाती है। वह आसमानी आग कार्य कुशल व्यक्तियों को सौंप दीजाती है। चिराग़ची मशालची इसी आग से अपना काम निकालते हैं। जब वर्ष प्रसन्नतापूर्वक समाप्त होजाता है तो फिर उसी रीति से नई आग लेलेते हैं। वह पात्र, जिसमें इस अग्नि को सुरक्षित रखते हैं, **अग्निगिर** अर्थात् "अंगीठी" कहलाता है।

एक और श्वेत रंग का चमकदार पाषाण है, जिसको **चन्द्रक्रान्त**[२] कहते हैं। जब उसको चन्द्रमा के सामने रखते हैं, पानी टपकने लगता है।

जब एक घड़ी दिन शेष रहता है, सम्राट् यदि सवार होता है, तो उतर पड़ता है, और यदि सोता होता है, तो जगाया जाता है। वह अपने राजसी ठाठ को उतार कर एक ओर रख देता है और अपने वाह्य (आकृति) को अन्तःकरण के अनुरूप बनाता है। जब विश्वभास्कर अस्ताचल को जाते हैं, सौभाग्यवान् सेवक सोने और चांदी के बारह दीपदानों में कपूर की बत्तियां जलाकर सम्राट् के समक्ष लाते हैं, और एक उत्तम सुरीला गायक, बत्ती हाथ में लेकर ईश-बन्दना करता है, और अनेक प्रकार से गाता है। अन्त में, सदा राजा की बढ़ती बनी रहने के लिए प्रार्थना करता है, और इसी पर अपना कथन समाप्त करता है। सम्राट् विनय और प्रार्थना को बहुत महत्व देता है, और नवीन प्रकाश की प्राप्ति के लिए याचना करता है।

शमादानों और फ़ानूसों के रूप रंग और भेदों की प्रशंसा करना असंभव है और गुणियों के कृत्यां का वर्णन लेखनी की शक्ति से बाहर है। कुछ दसमनी बनाये गये हैं और कुछ इससे भी अधिक भारी, साथ ही वे अनेक आकृतियों से विभूषित किये गये हैं। कुछ यकशाख़ा हैं, कुछ दोशाख़ा और कुछ इससे भी अधिक शाख़ा वाले हैं, वे आभ्यान्तरिक नेत्रों का भी प्रकाश बढ़ाने वाले हैं। सम्राट् ने एक फ़ानूस[३] ईजाद किया है, जिसकी उँचाई एक इलाही गज़ है। उसके ऊपरी

१—शुद्ध शब्द सूर्यकांत है। यह एक प्रकार का स्फटिक या बिल्लौर है, जिसको यदि सूर्य के सामने रक्खा जाय तो आग निकलने लगती है।

२—शुद्धरूप चन्द्रकांत है। इसे चन्द्रमणि भी कहते हैं। प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख है। परन्तु आजकल यह दुष्प्राप्य सा है।

३—फ़ानूस अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ चुग़लख़ोर है। फ़ानूस से रोशनी

दीप-प्रदीपन



पृष्ठ ९६-१०१

सिरे पर पाँच फ़ानूस लगाये गये हैं। इनमें से हर एक पर एक जानवर की आकृति बनीहुई है। इसमें कुछ काफ़ूरी बत्तियाँ तीन गज़ी तथा इससे भी ज्यादा ऊँची लगाई जाती हैं, और सीढ़ी से चढ़कर उनका गुल काटा जाता है। अन्दर और बाहर रोशनी की ज्यादती के लिए मशालें भी जलाते हैं। चंद्रमास की पहली दूसरी और तीसरी रात को, जबकि प्रकाश बहुत कम होता है, आठ फ़तीले (पलीते) जलाते हैं। चौथी से दसवीं रात तक एक एक कम करते जाते हैं। यहाँ तक कि दसवीं को जब ज्योत्स्ना का आधिक्य होता है, एक ही पलीता जलाने पर सन्तोष करते हैं। पन्द्रहवीं रात्रि तक दसवीं की तरह एक ही बत्ती जलाते रहते हैं, और सोल्हवीं से उन्नीसवीं तक एक एक बत्ती बढ़ाते जाते हैं। बीसवीं को उन्नीसवीं की तरह रोशनी होती है। इक्कीसवीं और बाइसवीं को एक एक बढ़ाते हैं। तेइसवीं को बाइसवीं की भाँति प्रकाश का प्रबन्ध होता है। चौबीसवीं रात्रि से अन्तिम निशा तक आठ बत्तियाँ जलाते हैं। हर फ़तीले में एक सेर तेल और आधा सेर रुई इस्तेमाल करते हैं। किसी किसी जगह पर चर्बीदान जलाते हैं और तेल की बत्तियों के स्थान पर चर्बी की बत्तियाँ जलाते हैं। फ़तीले की छोटाई-बड़ाई पर तेल और रुई के जलने का परिमाण निर्भर है।

इसके अतिरिक्त सम्राट् ने दरबार खोजनेवालों के पथप्रदर्शन के लिए एक दीपक जलवाया है। कर्मचारी ४० गज़ से ज्यादा ऊँचा एक खंभा खड़ा करते हैं और उसको सोलह रस्सियों से कस देते हैं। उसके ऊपर एक बड़ा फ़ानूस जलाते हैं, उसे **आकाश-दिया** कहते हैं। वह बहुत दूर से उजाला देता है। ढूंढ़ने वाले उसके द्वारा दरबार तक आजाते हैं, और फिर अपने परिचित स्थान पर पहुँच जाते हैं। इस दिये के (प्रचार के) पहले, लोग यात्राओं में कष्ट उठाते थे और निश्चित मार्ग नहीं पाते थे।

इस कारख़ाने में बहुत से मंसबदार, अहदी और सैनिक सेवा करते हैं। प्यादे का मासिक वेतन २४०० दाम से अधिक और ८० दाम से कम नहीं है।

बाहर को चली जाती है, इससे इसका यह नाम पड़ गया। यह पिंजड़े के आकार का एक गोल या अठपहल अथवा चौकोर मंडप सा होता था। यह काग़ज़ या पतले कपड़े से मढ़ा जाता था। इसके अन्दर चिराग़दान पर पहले चिराग़ रक्खा जाता था, फिर यह फ़र्श पर रख दिया जाता था। बड़ी क़ंदील को भी फ़ानूस कहते हैं। शीशे के मृदंग, कमल तथा ग्लास आदि आकृतियों के पात्रों को भी—जिनमें बत्तियाँ जलाई जाती हैं—फ़ानूस कहते हैं। आजकल बड़े बड़े नगरों में फ़ानूस के स्थान में बिजली की बत्तियां प्रयुक्त होती हैं।

आईन १६।

राज्य के वैभव की सामग्री।

राज्य के तंबू का शम्सा[1] ईश्वरीय तेज है, जो मानवीय सामर्थ्योचित-प्रयत्नों के बिना दैवी शक्ति के द्वारा राजाओं को प्राप्त होता है। बुद्धिमान् शासक ऊपरी बनाव चुनाव में चित्त लगाते हैं और उसको ईश्वरीय प्रकाश का मुखोद्घाटन करना ख़्याल करते हैं। उसका कुछ हाल लिखता हूँ और अपने समय की व्यवस्था चित्रित करता हूँ।

१. **औरंग**—(सिंहासन) नाना प्रकार की आकृतियों के बनाये जाते हैं। उन पर मूल्यवान् मणियों तथा सोने और चांदी आदि का जड़ाऊ काम होता है।

२. **चत्र**—(छत्र) बहुमूल्य रत्नों से जड़ा जाता है। वे सात से कम नहीं होते।

३. **सायबान**—यह अंडाकार बना होता है, एक गज़ लंबा। उसका दस्ता छत्र की तरह का होता है, और उस पर ज़रबफ़्त आदि लपेट देते हैं तथा उत्तम मणिमुक्ताओं से उसे जड़ते हैं। फ़ुर्तीले अनुचर उसे लिए रहते हैं, और सूर्य की धूप में लगाते हैं। उसको **आफ़ताब-गीर** भी कहते हैं।

४. **कौकबा**—कुछएक दरबार के सामने लटकाए जाते हैं।

ये चारों चीज़ें वर्तमान सम्राट् को छोड़कर और किसी का वैभव नहीं बढ़ाती हैं, अर्थात् और कोई इन्हें धारण नहीं कर सकता।

५. **अलम**—(झंडा) सवारी के समय क़ोर[2] के साथ पांच से कम नहीं होते हैं। सदा सुक़रलात के ग़िलाफ़ों में रखे जाते हैं। उत्सवों और युद्ध-क्षेत्रों में वे निकालकर फहराये जाते हैं।

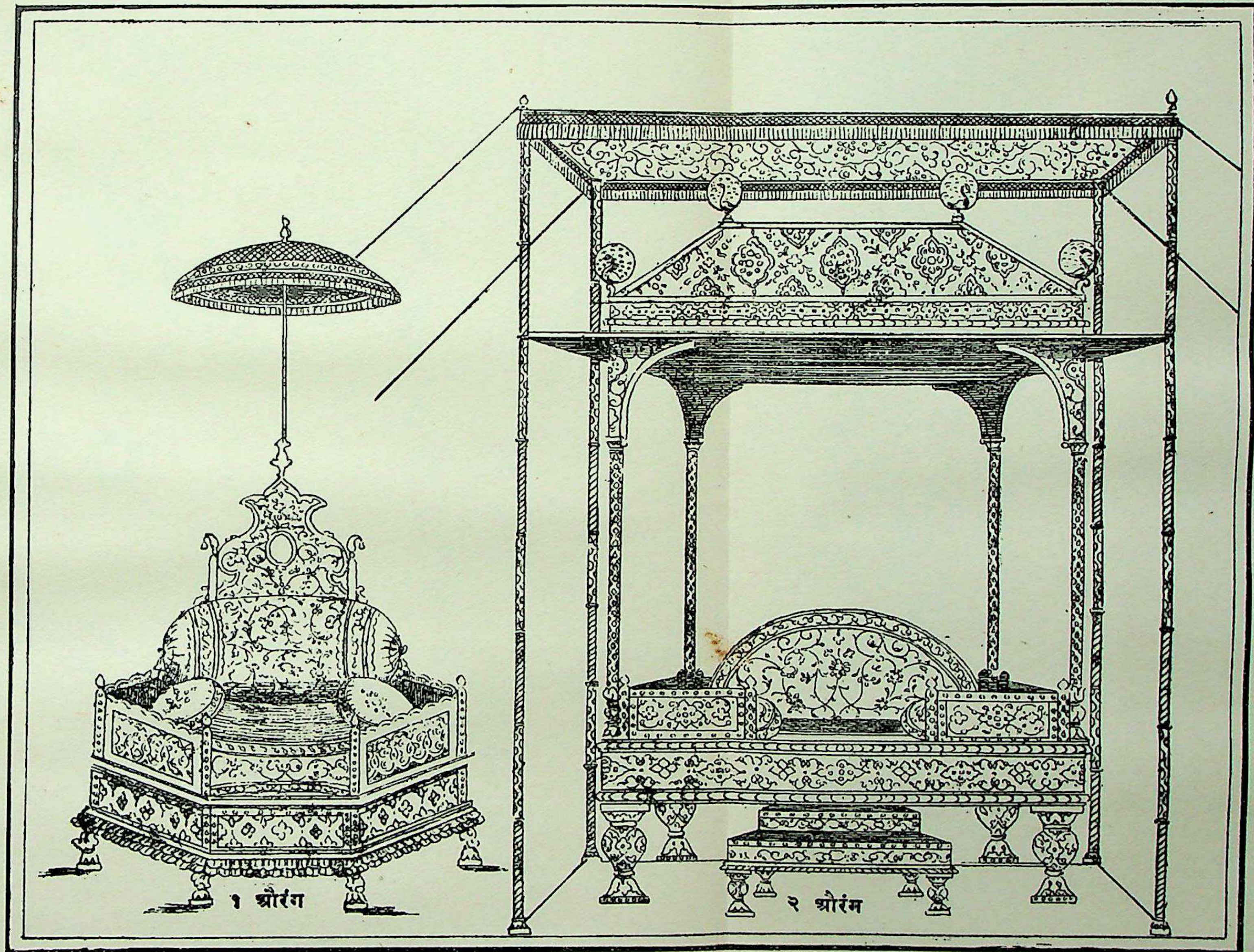
६. **चत्र-तौक़**—एक प्रकार का अलम ही है, परन्तु उससे छोटा होता है। उस पर सुरागाय की पूँछ के गुच्छे[3] लगाते हैं।

१—शम्सा—उस रोशनदान को कहते हैं, जिससे प्रकाश आवे। गुम्बजों तथा कलशों पर के लट्टुओं को भी शम्सा कहते हैं। पर यहां पर शम्सा से अभिप्राय उस सूर्य के चित्र से है, जो प्रासादों के फाटकों और दीवारों पर लगाया जाता था, और वह रात्रि में झिलमिलाता था।

२—यह तुर्की भाषा का शब्द है। झंडों, शस्त्रों, एवं अन्य वैभव-सामग्री के समूह को क़ोर कहते हैं। जहां सम्राट् जाता था, क़ोर भी साथ जाता था।

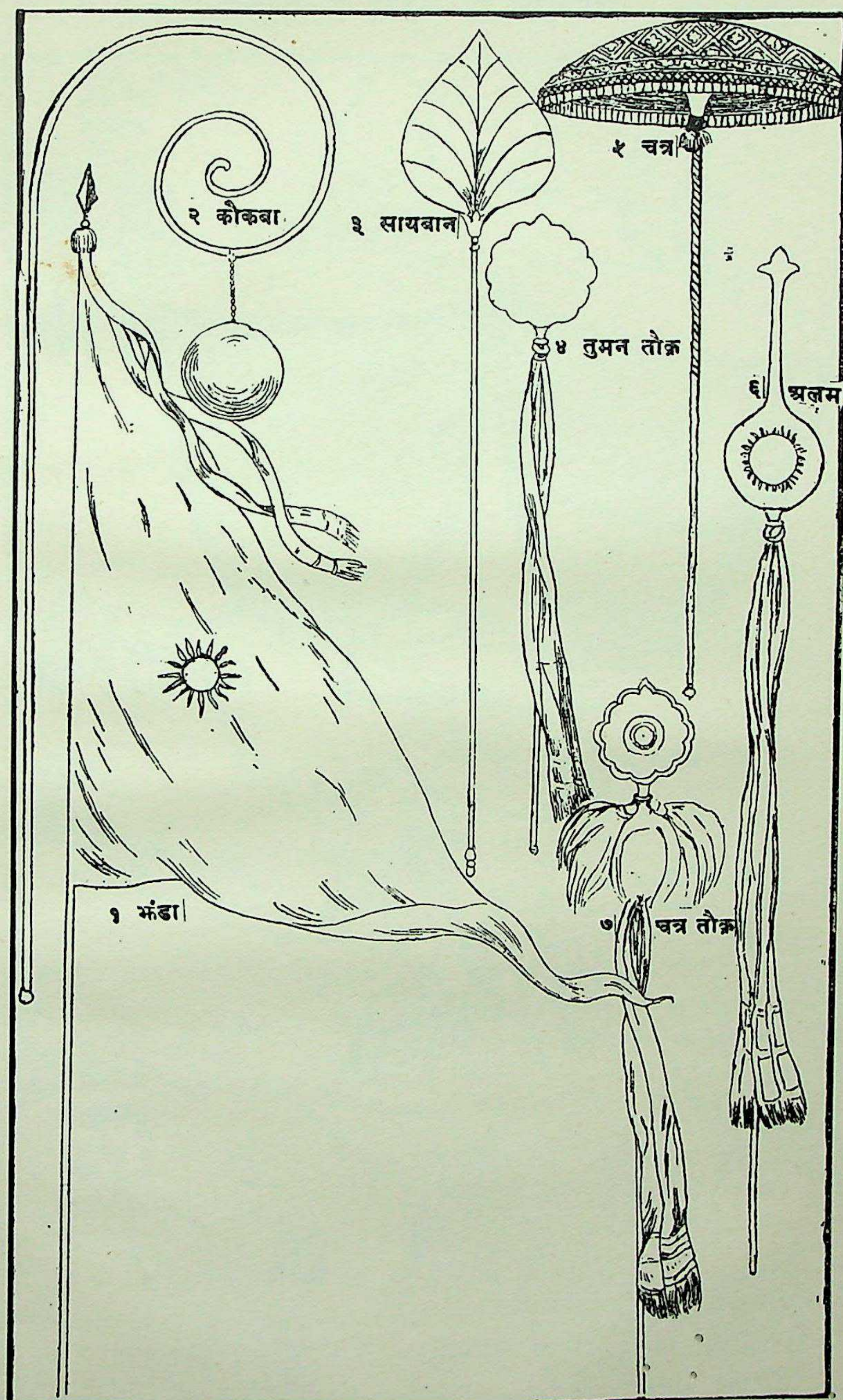
३—चँवर।

राज्य के वैभव को सामग्री



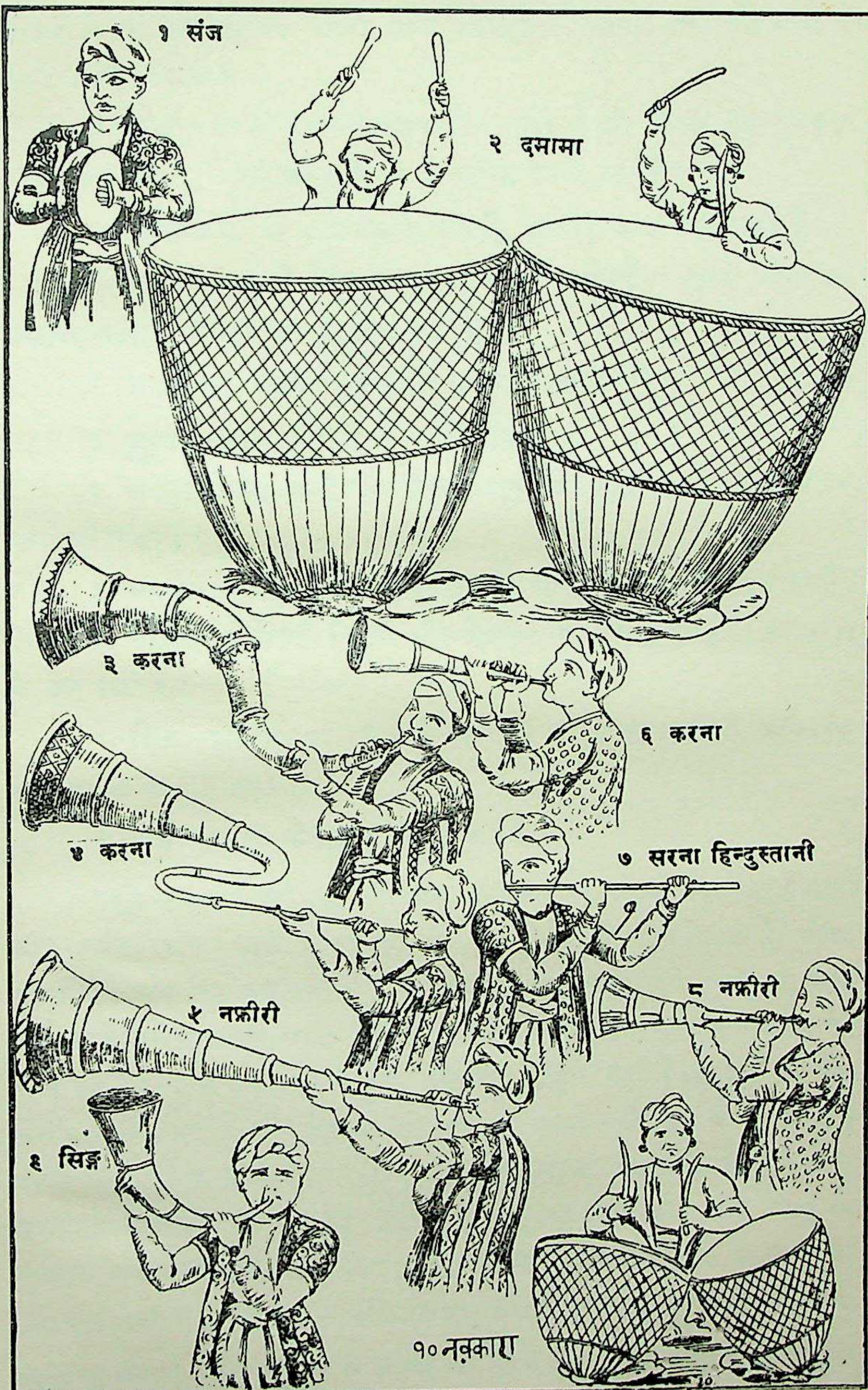
पृष्ठ १०२–१०४

राज्य के वैभव की सामग्री



पृष्ठ १०२–१०४

राज्य के वैभव की सामग्री



पृष्ठ १०२–१०४

७. **तुमन-तौक़**—चत्र तौक़ के सदृश होता है, परन्तु उससे कुछ लम्बा। अलमों में इन दोनों का पद उच्चतर माना जाता है। अमीरों तथा शाहज़ादों के लिए चत्रतौक़ नियत है।

८. **झंडा**—यह हिन्दुस्तानी पताका है। क़ोर में हर प्रकार का एक झंडा होना अनिवार्य है। बड़े अवसरों पर वे अधिक बनाये जाते हैं।

नक्क़ारख़ाने में, जो बाजे बजाये जाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार हैं :—

१. **कुवर्गा**—अरबी भाषा में इसे **दमामा** कहते हैं। इनके न्यूनाधिक अठारह जोड़े हैं, जो बड़े ज़ोर के साथ बजते हैं।

२. **नक्क़ारा**—(नगाड़ा) कमोबेश २० जोड़े बजते हैं।

३. **दुहुल**—(ढोल) कितनों में से चार बजते हैं।

४. **करना**—सोने, चाँदी और पीतल इत्यादि के बनाये जाते हैं, और चार से कम नहीं बजते हैं।

५. **सरना**—ये ईरानी और हिन्दुस्तानी हैं, और एक साथ नौ तक बजते हैं।

६. **नफ़ीर**—ये ईरानी, फ़िरंगी और हिन्दुस्तानी होते हैं, उनमें से हर प्रकार के कुछ बजते हैं।

७. **सिंग**—इसे तांबे का, गाय के सींग की शक्ल का बनाते हैं, और एक साथ दो का उपयोग करते हैं।

८. **संज**—(झांझ) तीन जोड़े बजाये जाते हैं।

पहले जब चार घड़ी रात और चार घड़ी दिन रहता था, नौबत बजाई जाती थी। परन्तु अब, पहले आधी रात को, जब सूर्य ऊपर चढ़ने लगता है, नौबत बजती है; और फिर प्रातःकाल में। सूर्योदय के एक घड़ी पहले, जादू सा काम करने वाले सुरीले गायक सरना बजाकर सबको सचेत करते और सोने वालों को जगा देते हैं। फिर एक घड़ी के बाद, प्रारम्भिक बादन करते हैं; कुवर्गा को कुछ ऊँचे स्वर में बजाते हैं, और नक्क़ारे को छोड़ कर करना, नफ़ीर तथा वैभव के अन्य वाद्यों का उपयोग करते हैं। कुछ देर बाद फिर सरना बजाते हैं, और आनन्द प्रदायिनी नफ़ीरियों से ताल देते रहते हैं। जब एक घड़ी और बीत जाती है नक्क़ारा बजाने लगते हैं, और सभी गुणी कर्मचारी बड़े उच्च स्वर से राज्य का जय घोष करते हैं। फिर सात चीज़ें आनन्द बढ़ाती हैं। १, **मुरसली**—यह एक ध्वनि या गति है, जो **मुर्सिल** से आरंभ की जाती है। फिर बर्दाश्त पर आजाते

हैं; इसकी भी कई गतियां हैं। इस अवसर पर सभी गुणी बाजे बजाने लगते हैं। इसके बाद धीमे पड़ जाते हैं और ऊँचे स्वर से नीचे स्वर में लाते हैं। २, चार ताल स्वरों का गाना, अर्थात् **इख़लाती, इब्तिदाई, शीराज़ी, क़लन्दरी निगर क़तरा**[१] **या नख़ुद क़तरा;** ये एक घड़ी भर आमोद बढ़ाते हैं। ३, तीसरे नए और पुराने ख़्वारज़्मियों की आलापें; सम्राट् ने दो सौ से अधिक निकाली हैं। छोटे बड़े सभी इनसे आनन्दमग्न होते हैं; विषेष कर **जलालशाही, महामीर, करकत** और **नौरोज़ी** से। ४, **शादियाने** का जोश पर रखना। ५, **बमियाने-दौर** की गति का बजाना। ६, **अज़फ़र** की ताल और गति पर ध्यान रखना। यह गति 'राहे-बाला' कहलाती है और पीछे से नीचे स्वर में लाई जाती है। ७, **मुर्सिल ख़्वारज़्मी** बजाकर, मुर्सिली की ओर झुक पड़ते हैं। फिर उसे बन्द करके मंगलात्मक आशीर्वाद के साथ समाप्त करते हैं। इसके बाद नौबत नीचे कर देते हैं और चित्तापहारक वाक्य एवं प्राणप्रवर्द्धक कविताएं पढ़ते हैं; इस प्रकार एक घड़ी और मनोरंजन रहता है। इसके पश्चात् सरना वाले बजाने में जादू का सा काम दिखाते हैं, और एक घड़ी और आनन्द में व्यतीत होती है। इस प्रकार यह मनोरंजक काम समाप्त होता है।

सम्राट् को संगीत-विद्या में ऐसा ज्ञान है, जैसा कि इस कला के विशेषज्ञों को भी नहीं है। उसी प्रकार, वह उसके व्यावहारिक साधनों पर भी अधिकार रखता है, विशेषकर नक्क़ारा बजाने में।

इस विभाग में मंसबदार, अहदी और दूसरे सैनिक सेवा में संलग्न हैं। प्यादों का मासिक वेतन ३४० दाम से अधिक और ७४ दाम से कम नहीं है।

आईन २०

शाही छाप।

राज्य के तीनों स्तम्भों[२] की आज्ञाएं उस (शाही मोहर) से जारी होती हैं; इतना ही नहीं वरन् काम काज में हर समुदाय के लिए वह अनिवार्य है। शासन के आरम्भ में मौलाना मक़सूद मोहरकन, मोहर बनाने का काम करते थे। उन्होंने पहले एक गोल फ़ौलादी टुकड़े के समतल पर, सम्राट् का तथा तैमूरलंग

१—इनमें से अनेक, अलापें अस्पष्ट हैं। २—शाला या गृह, सेना और साम्राज्य विभाग।

तक उसके प्रतिष्ठित पुरुखों के नाम रिक़ा ख़त में खोदे; फिर केवल सम्राट् का नाम नस्तालीक़ ख़त में लिखा। न्याय सम्बन्धी कार्यों के लिए महराबी शकूल की मोहर[१] बनाई गई, और उसमें सम्राट् के नाम के चारों ओर यह शेर खोद दिया गया :—

रास्ती मूजिबे रज़ाए ख़ुदास्त,
कस न दीदम कि गुम शुद अज़ रहे-रास्त।

अर्थात् सत्यता ईश्वर की प्रसन्नता का साधन है; मैंने किसी को नहीं देखा, जो सत्यमार्ग से भटका हो।

तमकीन ने दूसरे नम्बर की मोहर को नए ढंग से बनाया। उसके बाद मौलाना अलीअहमद देहलवी ने दोनों पर सुधारात्मक अक्षर लिखने में जादूगरी दिखलाई। उनमें से छोटी गोल छाप **उज़ूक**[२] कहलाती है, और वह फ़रमाने सब्ती[३] पर लगाई जाती है। बड़ी मोहर, जिसमें सम्राट् के पुरुखों के नाम अंकित हैं, पहले केवल विदेशी राजाओं के पत्र-व्यवहार पर लगाये जाने के लिए नियत थी, पर आज वह दोनों कामों के लिए इस्तेमाल की जाती है। दूसरे हुक्मों के लिए एक और चौकोर मोहर रहती है, जिस पर "अल्लाहो अकबर जल्ल जलालहू" खुदा हुआ है। राजमहल के उपयोग के लिए एक ख़ास मोहर मनोनीत की गई है। दूसरे फ़रमानों पर शाही छाप लगाने के लिए एक पृथक् मोहर बनाई गई है, जिस पर कई प्रकार की लिखावट है।

मोहर खोदने वालों में से कुछ का हाल लिखा जाता है[४] :—

१, **मौलाना मक़सूद हिरवी**[५]—यह हुमायूँ के सेवकों में से था। यह

१—चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भी राजकीय मुद्रा का चलन था। कौटिल्य-अर्थशास्त्र में लिखा है :—"अन्दर आने वाले तथा बाहर जाने वाले सभी माल पर कड़ी निगाह रक्खी जाय। बिना राजमुद्रा लगा हुआ कोई माल न अन्दर जाने पावे और न बाहर भेजा जावे (कौटिल्य–अर्थशास्त्र, अन्तःपुर का प्रबन्ध, अधिकरण १)।

२—उज़ूक चग़ताई भाषा का शब्द है।

३—इस फ़रमान का वर्णन द्वितीयग्रंथ के ग्यारहवें आईन में है।

४—यह वाक्य मूल में नहीं है। आवश्यकता समझ कर ब्लाक्मैन के भाषान्तरानुसार जोड़ दिया गया है।

५—पृ० ५२ देखिये। हिरवी अर्थात् हिरात निवासी। हिरात अफ़ग़ानिस्तान में है। यह नगर भी है और एक प्रान्त भी। इसमें काफ़ी सेनाएं रहती हैं, और यह "भारतवर्ष की कुंजी" कहलाता है; क्योंकि इस स्थान पर, भारत, रूस, मध्य एशिया तथा ईरान को जाने वाले कई मार्ग मिलते हैं। यह उपजाऊ तराई में स्थित है।

रिक़ा और नस्तालीक़[१] ख़त अच्छा लिखता था। उसने उस्तुर्लाब[२], कुरा[३] और कुछ मिस्तरे[४] ऐसे बनाये कि उन्हें देखकर गुणी लोग चक्कर में पड़ गये। सम्राट् की कृपा दृष्टि से उसने उन्नति की, और इस कला में अलौकिकता प्राप्त की।

२, **तमकीन काबुली**—उसने अपने घर में ही शिक्षा प्राप्त की और उन्नति की। इस कला को तमकीन ने उस स्थान पर पहुँचाया कि मौ० मक़सूद ईर्ष्या करने लगा। इसने नस्तालीक़ लिखने में उसे (मक़सूद को) मात दे दिया।

३, **मीरदोस्त काबुली**—यह अक़ीक़[५] पर रिक़ा और नस्तालीक़ खोदता है। यद्यपि यह मक़सूद और तमकीन की समता नहीं कर सकता, तथापि इसका रिक़ा ख़त नस्तालीक़ से ज्यादा अच्छा होता है। उसको इस कला के परखने का भी पर्याप्त ज्ञान है।

१—रिक़ा और नस्तालीक़—ये लेखों के भेद हैं। ख़त का अर्थ लेख या लिखावट है।

२—यह एक यन्त्र था, जिससे पुराने पाश्चात्य ज्योतिषी सूर्य का उच्च और नीचा होना मालूम करते थे। इसके द्वारा वे आकाश सम्बन्धी शुभ और अशुभ लक्षणों को भी जान लेते थे। इसका आविष्कारक दार्शनिक अरस्तू माना जाता है। यूनानी भाषा में उस्तर तराज़ू को कहते हैं और लाब सूर्य को। इससे सूर्य सम्बन्धी बातें मालूम की जाती थीं, इस लिए यह उस्तुर्लाब कहलाता था। यह पीतल का बनता था और इसकी आकृति गोल टिकिया के समान होती थी। उसके अन्दर पीतल के कुछ पत्र से होते थे। उन पर अनेक वृत्त एवं रेखाएं खिंची रहती थीं।

३—गोला।

४—पहले इसके तैयार करने की क्रिया इस प्रकार थी। कापीनवीस जितने बड़े काग़ज़ पर लिखना चाहते थे, उसी के बराबर एक दफ़्ती लेते थे। पहले उस पर लम्बाई में दोनों ओर, दफ़्ती के किनारों से लगभग एक एक इंच जगह छोड़ कर, सीधी रेखाएं खींचते थे। इन लाइनों पर बराबर की दूरी पर दोनों ओर छेद करते थे। उन छेदों में से पहले, दोनों ओर के पहले छेदों में डोरी डालते थे, फिर दूसरों में, फिर तीसरों में, इसी प्रकार सब में। यह ध्यान रखते थे कि आड़ी डोरियां समानान्तर पर रहें। इसे मिस्तर कहते थे। मिस्तर सतर से बना है। सतर पंक्ति या रेखा को कहते हैं। कापीनवीस सादे काग़ज़ को मिस्तर पर रख कर दबाते थे, जिससे उसकी डोरियों के चिन्ह काग़ज़ पर आजाते थे। उन चिन्हों के बन जाने से लेख की पंक्तियां टेढ़ी नहीं होने पाती थीं (Blochmann's translation of Ain., Vol. 1. P. 52, note 5.)। आजकल डिवाइडर आदि के द्वारा मिस्तर बड़ी सरलता से तैयार हो जाता है। दफ़्ती और डोरियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह बहुधा पीले रंग का होता है, और लीथो की छपाई में काम आता है।

५—एक प्रकार का लाल पत्थर, जिसके नगीने बनते और मोहरें भी खोदी जाती हैं। यह बम्बई, बांदा, खंभात, बग़दाद और यमन में पाया जाता है।

४, **मौ० इबराहीम**—अक़ीक़ लिखने में यह अपने भाई शर्फ़ एज़्दी का शागिर्द है, पर काम में अगले उस्तादों से भी बाज़ी मार ले गया है। इसका रिक़ा और नस्तालीक़ ख़त, ख़ुशनवीसों[1] से अलग नहीं किया जासकता। राज्य के बहुमूल्य लालों पर शब्द "लालजलाली" इसी का खोदा हुआ है।

५, **मौ० अलीअहमद देहलवी**—फ़ौलाद पर कोई भी इसके सदृश नहीं लिख सका है। सुन्दर लेखन-कला के पारखी इसको इस गुण में अलौकिक मानते हैं। लोग इसकी लिखावट से उस्तादी सीखते हैं। तालीक़ को छोड़कर दूसरे ख़तों को इसने ऊंचे दर्जे पर पहुँचा दिया है, परन्तु यह नस्तालीक़ बहुत ही सुन्दर लिखता है। इसने इस पेशे को अपने पिता शेख़हुसेन से सीखा, मौ० मक़सूद के काम को देखकर उन्नति की, और अन्त में सब से आगे निकल गया।

आईन २१।

फ़र्राशख़ाना।

आन्तरिक और वाह्य जगत को भूषित करने वाला सम्राट् इस कारख़ाने को उत्तम निवास, शीतोष्ण के लिए त्राण, वर्षा का रक्षक और राज्य का भूषण मानता है। वह उसकी सजावट को शासन का वैभव समझ कर उसकी पूर्ति को ईश्वरोपासना ख़्याल करता है। सम्राट् के अनुभव से इस कारख़ाने की स्थिति सुधरी और सामग्री के परिमाण एवं उत्तमता में उन्नति हुई तथा नई नई वज़एं और तर्ज़ें निकाली गईं। मैं उसका कुछ हाल लिखता हूँ और अन्वेषकों के लिए आदर्श उपस्थित करता हूँ।[2]

१. **बारगाह**[3]—जब वह विशाल होती है, तो दस हज़ार मनुष्य उसकी

१—वह व्यक्ति जिसकी लिखावट बढ़िया हो।

२—"आईने-अकबरी में जो कुछ लिखा है, उसे आजकल लोग अतिशयोक्ति समझते हैं। पर उस समय यूरोप के जो यात्री भारत में आये थे, उनके लिखे हुये विवरणों से भी आईने-अकबरी के लेखों की पुष्टि होती है। भला उसकी वह शोभा काग़ज़ी सजावट में क्योंकर आसकती है" (देखिये दरबारे-अकबरी)।

३—बारगाह फ़ारसी भाषा का शब्द है। बार का अर्थ प्रतिष्ठा है और गाह स्थान को कहते हैं। बारगाह से आशय प्रतिष्ठा की जगह अर्थात् कचहरी का स्थान, राजभवन, किसी प्रतिष्ठित का प्रासाद और शाही ख़ेमे से है।

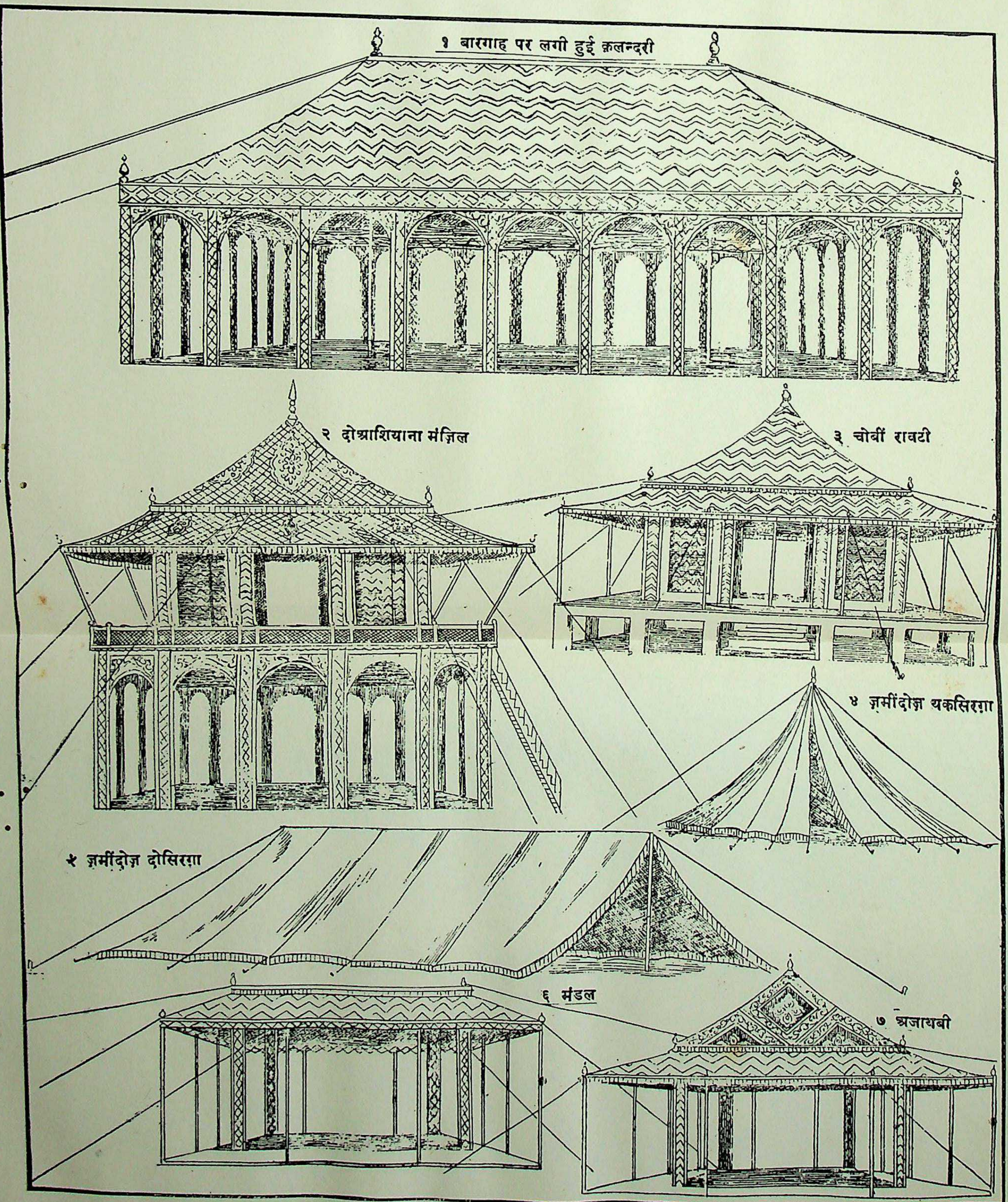
छाया में बैठ सकते हैं। एक हज़ार फ़ुर्तीले फ़र्राश, एक सप्ताह में, ऊपर उठाने वाले यन्त्रों की सहायता से खड़ा करते हैं। वह अधिकतर दो सरग़ों[१] की बनाई जाती है और लोहे की चादरों से दृढ़ की जाती है। जब सादी बारगाह के बनाने में, जिसमें ज़रबफ़्त मख़मल, और सोना नहीं लगाते हैं, दस हज़ार रुपए और इससे भी अधिक व्यय होते हैं तो फिर कामदार बारगाह की लागत का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। इसके आधार पर दूसरों की लागत का अनुमान किया जा सकता है।

२. **चोबीं-रावटी**—(काठ की रावटी) दस खंभों पर खड़ी की जाती है। प्रत्येक खंभे का कुछ भाग ज़मीन में गाड़ा जाता है। सब तो उँचाई में बराबर होते हैं, परन्तु दो खंभे, जिन पर कड़ी पड़ती है, कुछ अधिक ऊँचे रहते हैं। खम्भों को, ऊपर नीचे दासा लगाकर दृढ़ करते हैं और कुछ तड़कें, बँडेरी तथा दासों पर डालते हैं। फिर सबको नरमादा के तरीक़े पर लोहे की चादरों से जोड़ देते हैं। दीवारें और छतें नरसल की चटाइयों की बनाते हैं, और एक या दो दरवाज़े रखते हैं। नीचे के दासे के अनुसार चबूतरा बनाते हैं। उसको अन्दर ज़रबफ़्त और मख़मल से और बाहर बानात से सजाते हैं, और रेशमी निवाड़ से उसमें कमर-बन्द लगाते हैं।

३. **दो आशियाना मंज़िल**—(दो खंडा मकान) इसे अट्ठारह खंभों पर खड़ा करते हैं। ये खम्भे छे छे गज़ के होते हैं। उनको तख़्तों से पाट देते हैं। उसके ऊपर चार चार हाथ के खम्भे खड़े कर के नरमादा के तरीक़े पर जोड़ देते हैं, बालाख़ाना तैयार हो जाता है। यह बाहर और भीतर चोबीं-रावटी की तरह सजाया जाता है। यात्राओं में यह सम्राट् का शयनागार होता है। यह पवित्र गृह उस ज्ञानी मनुष्य के सदृश है, जो लोक और परलोक दोनों स्थानों के कर्तव्यों को पालन करता हो। इस भवन का एक खंड एकाग्रता के भाव का उत्पादक है, और दूसरा विचित्र सृष्टि के बाहुल्य का प्रदर्शक। ईश्वरोपासना इसी दिव्य मन्दिर में होती है, और श्रेष्ठ सूर्य की आराधना का श्रीगणेश यहीं से होता है। इसके बाद राजभवन की बेगमें सम्राट् के दर्शन लाभ के लिए उपस्थित होती

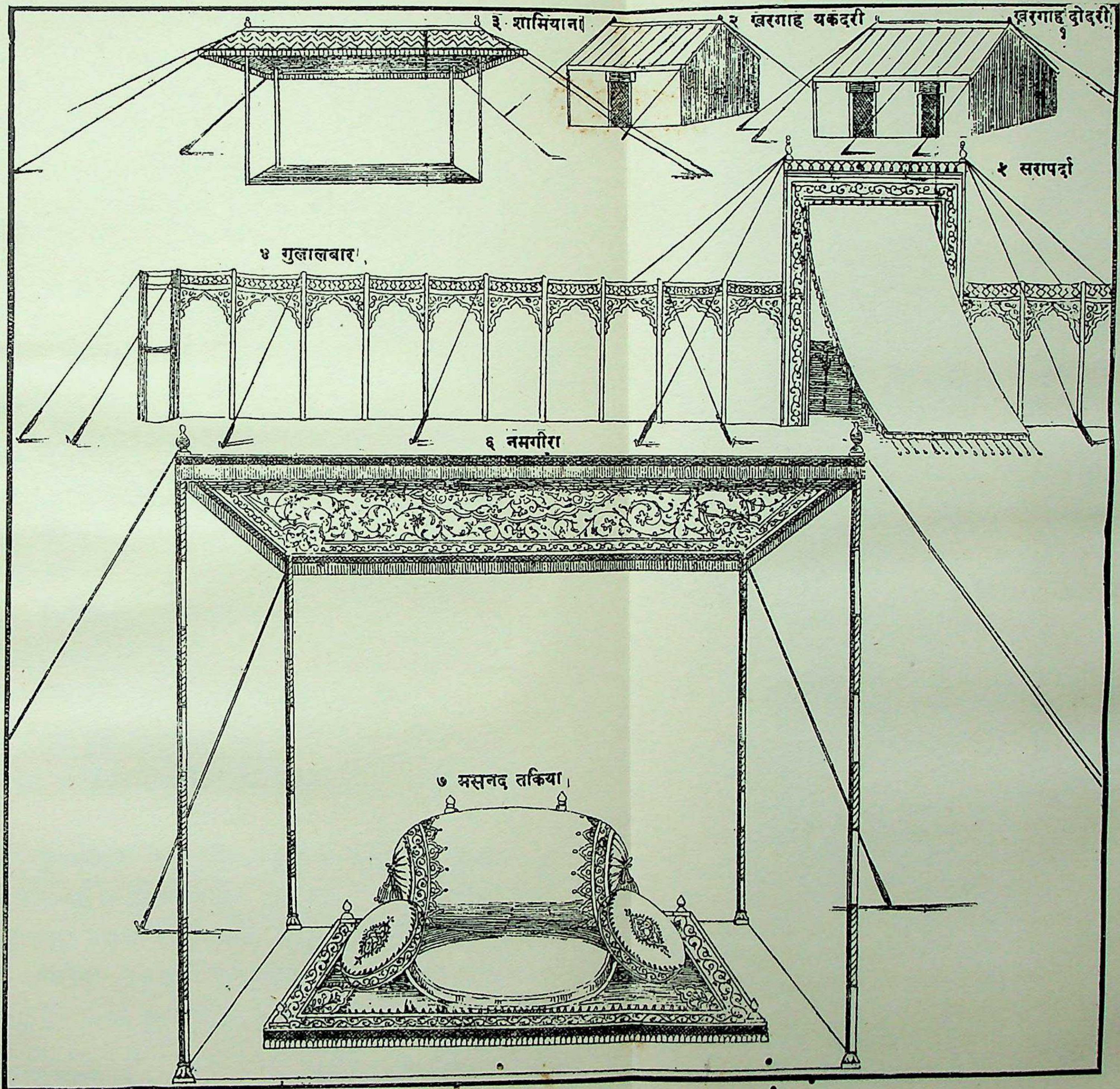
१—"दरवाज़े जो चोबों को लगाकर बनाये जाँय" (तारीख़ हिन्दुस्तान, जिल्द पंजुम, पृ० ६३६, ले० मौ० ज़काउल्ला)। ब्लाक्मैन ने सरग़ा का अर्थ Door poles अर्थात् दरवाज़े के खम्भे किया है (Blochmann's translation of Ain-i-Akbari, P. 53)। "दरबारे-अकबरी" में बारगाह के प्रसंग में "खम्भों पर दो कड़ियों" का उल्लेख है। सरग़ा को विशेष रूप से समझने के लिए चित्र देखिये।

फ़र्राश-ख़ाना



पृष्ठ १०७–११०

फ़राश-ख़ाना



हैं, और फिर बाहर के लोग प्रणाम द्वारा कृतकृत्य होते हैं। यात्राओं में इसी स्थान में बैठकर सम्राट् बहुधा निरीक्षण-कार्य करता है। इसे **झरोखा** कहते हैं।

४. **ज़मीनदोज़**--एक प्रकार का ख़ेमा है, जो नाना प्रकार के आकारों का बनाया जाता है। यह एक या दो कड़ियों का होता है। बीच में पर्दे डालकर कोठे अलग अलग कर देते हैं।

५. **अजायबी**—नौ शामियाने चार खम्भों पर तानते हैं, पांच चौकोन और चार शुंडाकार। केवल एक कोठे वाली भी बनाते हैं, और एक खम्भा खड़ा कर देते हैं।

६. **मंडल**—पांच शामियाने मिले रहते हैं, जो चार खंभों पर खड़े किये जाते हैं। कभी कभी चार को लटका देते हैं, ख़िलवतख़ाना (एकांत स्थान) तैयार हो जाता है। कभी चारों शामियानों को ऊपर खींच देते हैं और कभी एक ही ओर को खोलते हैं, और आनन्द मनाते हैं।

७. **अठ-खंभा**—सत्तरह शामियाने अलग अलग या मिलाकर लगाये जाते हैं, और आठ खंभों पर खड़े किये जाते हैं।

८. **ख़रगाह**—इसे कई प्रकार की बनाते हैं। कभी एक दर की और कभी दो दर की।

९. **शामियाना**—तरह तरह के होते हैं; परन्तु बारह वर्गगज़ से ज्यादा बड़ा शामियाना नहीं बनाते हैं।

१०. **क़लन्दरी**—इसका वर्णन पहले हो चुका है।[१]

११. **सरा-परदा**—पूर्वकाल में इसे मोटी दुसूती से बनाते थे। सम्राट् ने इसको गलीम का तैयार कराया है, जो ठाठ भी बढ़ाता है और अधिक लाभदायक भी है।

१२. **गुलालबार**—काठ का सरा-परदा है, ख़र-गाह की दीवार के समान। यह चमड़े के तसमों से कसा जाता है। कैम्प उखाड़ते समय यह सिमट आता है। इसमें लाल कपड़ा लगाया जाता है, और निवाड़ के कमरबन्द बांधे जाते हैं।

१३. **गलीम**[२]—सम्राट् ने विलक्षण प्रकार के बनवाये हैं, और चित्ताकर्षक गाठें लगवाई हैं। उसने इस कार्य पर अनुभवी कर्मचारियों को नियुक्त किया है

१—देखिये आईन १६।

२—ऊनी क़ालीन, कम्बल आदि।

और बहुत उत्तम काम होने लगा है। लोग ईरानी और तूरानी गलीमों को भूल गये हैं; यद्यपि व्यापारी उनको अब भी गोशकान[1], ख़ोज़िस्तान, किरमान सब्ज़्वार आदि स्थानों से हर साल लाते हैं। हर प्रकार के क़ालीन बुनने वालों ने यहां अपने घर बना लिये हैं और ख़ूब लाभ उठा रहे हैं। गलीम हर शहर में तैयार होते हैं, पर विशेषतया आगरा फ़तहपुर और लाहोर में वे बहुत बढ़िया बनते हैं। ख़ास शाही कारख़ाने में एक अपूर्व गलीम—जो २० गज़ ७ तस्सूज लम्बा और ६ गज़ ११½ तस्सूज चौड़ा है—बुना गया है। उस पर १८१० रु० व्यय हुये हैं। इस कला के विशेषज्ञों ने इसका मूल्य २७२५ रुपए आंका है।

१४. **तकिया-नमद**—विदेश (काबुल और फ़ारस) से लाते हैं, इस देश में भी बहुत बनते हैं।

जाजम, शतरंजी, बलूची और अद्भुत चटाइयों का हाल—जो रेशम की बुनी हुई मालूम होती हैं—क्या लिखू, क्योंकि इनकी कथा बहुत लम्बी है।

आईन २२।

आबदार ख़ाना[2]।

सम्राट् जीवन के इस स्रोत को 'अमृत' कहता है, और उसने उसकी रक्षा का भार संतुष्ट-हृदय योग्य कर्मचारियों को सौंपा है। वह अधिक पानी नहीं पीता है, और इस विषय में विशेष ध्यान भी रखता है। घर और यात्राओं में वह गंगा-जल पीता है। कुछ भाग्यवान् विश्वासपात्र व्यक्ति गंगा के तट पर रहा करते हैं, वे सावधानी से जल भरते हैं और घड़ों पर मोहर लगाकर भेज देते हैं। जब सम्राट् का दरबार राजधानी आगरा और फ़तहपुर में होता था, क़स्बा सोरों से जल लाया जाता था। पर आज के दिन जबकि पंजाब सम्राट् के चरणों का विश्राम-स्थल बना हुआ है[3], हरिद्वार से जल आता है। भोजन बनाने में यमुना चनाव और वर्षा का जल ख़र्च किया जाता है। इस पानी में कुछ गंगा-जल भी

१—गोशकान या जोशकान, इराक़ में एक क़स्बा है। ख़ोज़िस्तान, फ़ारस का एक सूबा है। किरमान, फ़ारस का एक शहर या प्रान्त है। सब्ज़वार, फ़ारस के प्रान्त ख़ुरासान का एक नगर है।

२—वह स्थान, जिसमें जल का प्रबन्ध हो।

३—अर्थात् पंजाब में रहता है। यह घटना १५९६ ई० की है। १५८६ ई० से फ़तहपुर राजधानी नहीं रहा था। उस समय से सम्राट् बहुधा पंजाब में रहा करता था।

मिला देते हैं। सैर और शिकार में, वह इस काम के लिए सूक्ष्मदर्शी अनुभवी व्यक्ति नियत करता है, और दूरदर्शिता से वे लोग जलों की जाँच करते हैं।

सम्राट् ने अपनी दूरदर्शी बुद्धि के प्रकाश से शोरे को—जो बन्दूक़ के मसाले में आग लगाता है—पानी को ठंढा करने का साधन बनाया। और छोटे बड़े हर्षित होगये। शोरा-मिट्टी एक मिट्टी होती है। उसको एक छेददार घड़े में भर देते हैं और उस पर कुछ पानी छिड़क देते हैं। टपके हुये पानी को औटा लेते हैं, और उसको मिट्टी से पृथक् करके जमा लेते हैं। फिर एक सेर पानी को, जस्ते, चाँदी या ऐसी ही धातु के बर्तन में भरते हैं, और उसके मुँह को कसकर बाँध देते हैं, एक दूसरे घड़े में ढाई सेर शोरा और पाँच सेर पानी मिलाते हैं, और मुँह बंधे बर्तन को उसमें डालकर आधी घड़ी[१] तक हिलाते हैं, पानी बहुत ठंढा होजाता है। शोरा एक रुपए का पौन मन से चार मन तक मिलता है।

सन् ३० इलाही[२] में, जब सम्राट् पंजाब (लाहोर) में ठहरा, तो हिम और बर्फ़ का रिवाज हो गया। लाहोर से पैंतालीस कोस की दूरी पर एक क़स्बा पनहां[३] है; उसके निकटस्थ उत्तरी पहाड़ से, डाक चौकी के द्वारा, बहलों तथा कहारों पर जल और स्थल मार्ग से, बर्फ़[४] लाई जाती है। व्यापारी लाभ प्राप्त करते हैं और छोटे बड़े आनन्दित होते हैं। वह रुपए की दो तीन सेर बिकती है। सबसे अधिक

१—१२ मिनट का समय।

२—१५८६ ई०

३—यह पठान या पठानकोट है (Blochmann's trans. P. 616)।

४—भाप के अत्यन्त सूक्ष्म अणु, जो हवा में मिलकर ठंढक पाने पर भारी होकर ज़मीन पर आकर जम जाते हैं। उस जमी हुई तह को बर्फ़ कहते हैं। गिरते समय बर्फ़ रुई की तरह मुलायम होती है। ज़मीन पर जमने के पहले यदि एकत्र करके कोई उसका ठोस गोला बनाना चाहे तो बना सकता है। जमने पर बर्फ़ बिल्कुल सफ़ेद हो जाती है। जमे हुये पानी की बर्फ़ पारदर्शी होती है। पहाड़ों पर बर्फ़ गिरती है किन्तु अधिक सर्दी पड़ने पर समुद्र आदि का जल भी जम कर बर्फ़ बन जाता है। जब जल का तापमान ३२° होता है तो वह जमने लगता है। ज्यों ज्यों पानी जमता जाता है, उसका आकार बढ़ता जाता है। पूर्णतया जम जाने पर उसके आकार में $\frac{१}{११}$ अंश की अभिवृद्धि हो जाती है। तापमान ४ अंश होने तक पानी सिमटता रहता और नीचे बैठता रहता है, किन्तु चार अंश से भी कम होने पर वह हल्का होने लगता और पानी पर तैरने लगता है। साधारणतः पानी में तैरती हुई बर्फ़ का $\frac{९}{१०}$ भाग पानी की सतह के नीचे और $\frac{१}{१०}$ भाग पानी के ऊपर होता है (Encyclopædia Britannica, Vol. 12, P. 39, 1929)।

वैद्यक और संस्कृत साहित्य के ग्रंथों में बर्फ़ के उपयोग का स्पष्ट उल्लेख है। कुमारसंभव में लिखा है कि, पिता के घर

सुविधा नाव पर लाने में है, उसके बाद बहल पर और फिर कहार पर। पहाड़ी लोग, उसके गट्ठे बाँध कर उपत्यका में लाते और ढेर के ढेर बेंचते हैं। प्रति ढेर ३० सेर से अधिक और २५ सेर से कम नहीं होता। उसका मूल्य पाँच दाम लेते हैं। जब बर्फ़ ज्यादा दूर हो जाती है, तो एक ढेर चौबीस दाम सत्रह जीतल को बेचते हैं। और जब दूरी सामान्य होती है तो ग्राहकों को पन्द्रह दाम देने पड़ते हैं। बर्फ़ ढोने के लिए दस नावें नियत हैं, उनमें से एक नित्य राजधानी में

में बर्फ़ीले चट्टानों के ऊपर लेटने पर भी स्मरज्वर तप्ता पार्वती शान्ति नहीं पाती थी (न जातु बाला लभतेस्मनिर्वृतिं तुषार संघात शिला तलेष्वपि—कुमारसंभव, ५-५५)। इसी प्रकार चरक में कहा है कि अति मदिरा पान के दाह से जो रोगी पीड़ित हो उसके शरीर पर सोने, चांदी और कांसे के बर्तनों में ठंढा पानी भर कर लगाये, और चमड़े की पतली थैलियों में बर्फ़ भर कर टांग दे, जिससे उनसे संचारित होकर वायु रोगी के लगे अथवा उसके शरीर को उन थैलियों से स्पर्श करावे (हेमराजत कांस्यानां पात्राणां शीत वारिभिः, पूर्णानां हिम पूर्णानां दृतीनां पवनाहताः। चरक संहिता, चिकित्सा-स्थान, अध्याय २४, श्लोक १५२)। ऐसे ही सुश्रुत में बतलाया है कि मदजनित दुःख से युक्त पुरुष के लिए सारे शरीर में चन्दन का पतला लेप, चन्द्रमा की किरणें और बर्फ़ का शीतल जल लाभदायक है (शीतं विधान मतमूर्ध्व-महं प्रवच्ये, दाह प्रशान्तकरमृद्धिमतां नराणाम्; तत्रादितो मलयजेन हितप्रदेह-श्चन्द्रांशुहार तुहिनोदक शीतलेन—सुश्रुत-संहिता, उत्तर तंत्र, अ० ४७, श्लोक ५५)।

उपर्युक्त प्रमाणों से चिकित्सा के रूप में बर्फ़ का उपयोग होना सिद्ध है। पर्वतों की निकटवर्ती जातियां ग्रीष्म ऋतु में बर्फ़ का पानी प्राचीनकाल से पीती चली आती हैं। इतना ही नहीं उपत्यकाओं के अधिवासी ताज़े बर्फ़ के साथ गुड़ बड़े चाव से खाते हैं। उन्हीं के संसर्ग से कदाचित् बर्फ़ के पानी पीने का शनैः शनैः रिवाज हो गया। पहाड़ी बर्फ़ के चलन के साथ साथ कृत्रिम बर्फ़ बनाने के भी तरीक़े निकाले गये। उन तरीक़ों से भारतवर्ष के अनेक स्थानों में पहले बर्फ़ बनाई जाती थीं। उनमें से एक तरीक़े का—जोकि कानपुर के पास भज्जापुरवा में बर्फ़ बनाने में इस्तेमाल किया जाता था—उल्लेख किया जाता है। शिशिर ऋतु में भज्जापुरवा के नाले के इधर उधर खेतों में क्यारियां बनाते थे और उन पर पयाल बिछा देते थे। खेत के चारों कोनों पर बहुत बड़े बड़े मिट्टी के मटके पानी से लबालब भर देते थे। जिस दिन पाला या तुषार पड़ने की संभावना होती थी, उस दिन सैकड़ों मिट्टी के ख़ूब पके हुये बड़े बड़े प्याले सीधी पंक्तियों में पुराल के ऊपर जमा देते थे। जिस समय पाला गिरने को होता था, उसके कुछ ही पहिले उन प्यालों को मटकों के पानी से भर देते थे। पाले के संयोग से प्यालों का पानी सरलता से जम जाता था। सूर्योदय के पहले ही प्याले एकत्र करलिये जाते थे। इस बर्फ़ के सुरक्षित रखने का तरीक़ा यह था। एक कुंआ खोदते थे, किन्तु उतनाही गहरा कि उसमें पानी नहीं निकलने पाता था। उसके अन्दर एक मचान बनाते थे। उस पर पयार आदि बिछा देते थे। प्यालों की बर्फ़ को लोहे की अंकुरी आदि से निकाल कर मचान पर जमा देते थे। फिर उसे

पहुँचती है। हर नाव पर चार मल्लाह रहते हैं। बर्फ़ का प्रत्येक पिण्ड बारह से छे सेर तक रह जाता है, क्योंकि गर्मी और सर्दी से उनमें अन्तर पड़ जाता है। एक बहल दो गट्ठे लाती है। रास्ते में चौदह चौकी पड़ती हैं[1]। एक हाथी से भी काम लिया जाता है। नित्य प्रति बारह टुकड़े आते हैं; उनमें से प्रत्येक तौल में दस सेर से चार सेर तक होता है। इस प्रकार से लाई हुई एक सेर बर्फ़ का मूल्य जाड़े में ३ दाम २१ जीतल, वर्षा ऋतु में १४ दाम २० जीतल और मध्यवर्ती समय में ६ दाम २१॥ जीतल होता है। साधारणतया वह ५ दाम $१५\frac{१}{२}$ जीतल को बिकती है। यदि बर्फ़ कहारों पर लाई जाती है तो चौदह चौकियों के लिए अट्ठाइस कहारों की आवश्यकता होती है। वे प्रति दिन एक गट्ठा लाते हैं, जिसमें चार टुकड़े होते हैं। प्रारम्भ में एक सेर बर्फ़ ५ दाम १६॥ जीतल को, बीच में १३ दाम $२\frac{१}{८}$ जीतल को और अन्त में १६ दाम $१५\frac{५}{८}$ जीतल को मिलती है और सामान्यतः $८\frac{७}{८}$ जीतल को। जन साधारण केवल ग्रीष्म ऋतु में बर्फ़ का उपयोग करते हैं, पर बड़े आदमी साल भर उससे आनन्द भोगते हैं।

आईन २३।

पाकशाला।

सम्राट् ने इस कार्य में भी दूरदर्शिताओं से काम लिया और उत्तम नियम निर्धारित किये। वह इस पर कैसे ध्यान न देता, क्योंकि मानवीय स्वभाव का

कूट कर इकट्ठा कर देते, उसका थक्का बंध जाता था। कुएं का मुंह छोटा रहता था। गरमी में उसे निकाल कर बेचते थे। इस प्रकार बनाई हुई बर्फ़ पुराने लोगों के कथनानुसार अधिक स्वादिष्ट और गुणकारी थी। इस बर्फ़ के साथ साथ पहाड़ों से भी बर्फ़ आती थी, और वह बड़े बड़े शहरों में बिकती थी। धीरे धीरे मैशीनरी का प्रचार हुआ और मशीनों के द्वारा बर्फ़ बनने लगी। अब प्रायः समस्त देश के बड़े बड़े शहरों में मशीनों की ही बनी हुई बर्फ़ इस्तेमाल की जाती है। छोटे क़स्बों और देहातों में बर्फ़ का बिल्कुल चलन नहीं है। वहाँ कुओं से ताज़ा पानी खींच कर पिया जाता है। कितने ही लोग दूसरे तरीक़ों से पानी ठंढा करते हैं और उसको पीते हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopædia Britannica vol. 12, P. 39, 1929) में लिखा है कि भारतवर्ष में शुद्ध ठंढी रात्रियों में पानी जमाया जाता है। पानी को एक छेददार बर्तन (शाटी या चटी) में भर देते हैं। उसके छिद्रों से जो भाप उठती है वह पानी की काफ़ी गर्मी खींच लेती है।

१—जहां घोड़े या बैल बदले जाते थे, चौकी कहलाती थी।

सामंजस्य, शारीरिक शक्तिमत्ता, आध्यात्मिक और आधिभौतिक प्रसादों की उपलब्धि का सामर्थ्य तथा लौकिक और पारलौकिक सौभाग्य की प्राप्ति, उपयुक्त आहार और यथार्थ विचार पर निर्भर है। आहार के विषय में मनुष्य पशु के समान है, परन्तु इन बातों के ज्ञान से वह उससे पृथक् हो जाता और योग्यता के गुण से भूषित होजाता है। यदि सम्राट् में विशाल साहस, उत्कृष्ट बुद्धि और विश्वव्यापी दयालुता का भाव न होता तो वह वैराग्य-पथ ग्रहण कर लेता और भोजन, विश्राम भूल जाता। आज के दिन, जब कि उसको दोनों समुदायों (गृहस्थों और विरक्तों) का नेतृत्व प्राप्त है, उसकी मोती बरसाने वाली ज़बान पर यह बात कभी नहीं आती कि "आज कौनसा भोजन तैयार किया गया है ?" रात दिन में वह केवल एक वार भोजन करता है, और तृप्त होने के पहले ही हाथ खींच लेता है। फिर इस भोजन का भी कोई समय नियत नहीं है। कर्मचारी इस प्रकार की तैयारी रखते हैं, कि आज्ञा पाने के पश्चात् केवल ढाई घड़ी में सौ थालियाँ परोस देते हैं। राजप्रसाद की महिलाओं की जो ख़ूराक नियत है, उसका वितरण प्रातःकाल से आरम्भ हो जाता है, और बहुधा रात तक भोजन वंटता रहता है।[१]

१—महाभारत काल में भोजन के पदार्थों में चावल, गेहूं, ज्वार और सत्तू आदि मुख्य थे। कितने ही लोग मांस और चावल मिलाकर भी खाते थे। उद्योगपर्व की विदुर नीति में एक श्लोक है :—आढ्यानां मांस परमं मध्यानां गोरसोत्तरम्, तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ। अर्थात् धनवान् लोग बहुधा ऐसा भोजन करते हैं जिसमें मांस विशेष होता है; मध्यम स्थिति के लोगों की ख़ूराक में दूध, घी आदि गोरस की प्रधानता रहती है, और ग़रीब आदमियों के आहार में तेल की अधिकता रहती है। पर इसका यह आशय नहीं है कि सभी धनवान् मांस खाते थे। महाभारत में सत्तू की प्रशंसा अनेक स्थलों पर है। शक्कर में मिलाकर सत्तू खाये जाते थे। उस समय गोरस का चलन बहुत था। दूध घी बहुधा गौओं का ही खाया जाता था। भैंस का दूध बर्ताजाय, महाभारत में ऐसा वर्णन नहीं है। उस समय भैंस और भैंसे निन्द्य माने जाते थे। गोवंश की वृद्धि के कारण गौओं का दूध प्रचुरता से प्राप्त होता था। महाभारत बनपर्व अध्याय १९० में लिखा है—दुहन्ताश्चाप्यजैडकं गोषु नष्टासु पुरुषा :—अर्थात् कलियुग में गौएं नष्ट हो जाने से भेड़ बकरियां दुही जांयगी। ब्राह्मणों को अजा (भेड़), घोड़ी, गधी, स्त्री और हरिणी के दूध पीने की मनाही की गई है। बासी भोजन और पुराने आटे, गन्ने, शाक, दूध और भुने हुये सत्तू से तैयार किये हुये पदार्थ—यदि अधिक समय तक रक्खे रहे हों तो उन्हें न खाना चाहिये। (शन्तिपर्व अ० ३६)। लहसुन और प्याज़ अखाद्य पदार्थों में बतलाये गये हैं।

महाभारत-काल में भोजन करते समय लोग चुप रहते थे और रसोई की निन्दा भी नहीं करते थे :—(प्राङ्मुखो नित्यमश्नीयात् वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्—महाभारत अनुशासन पर्व)। युधिष्ठिर के अश्वमेधयज्ञ के अवसर पर सहस्रों ब्राह्मणों क्षत्रियों और वैश्यों ने

सम्राट् इस काम पर विश्वासपात्र और कार्यकुशल व्यक्तियों को नियत करता है। राजभवन के नौकरों का—जोकि योग्यता के गुण से संपन्न हैं—यह ध्यान रहता है कि जो कार्य उनको सौंपा जाय, उत्तमोत्तम सेवा द्वारा पूर्ण हो। इस समुदाय के अध्यक्ष का सहायक **नाज़िमे-कुल** (प्रधान-मंत्री) है। सम्राट्

मौनव्रत से ही भोजन किया था। आश्रमवासी पर्व के अनुसार तीन प्रकार के रसोइये भोजन बनाते थे—आरालिकाः सूपकारा रागखाण्डविकास्तथा, उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं पुरा यथा—अर्थात् राजा धृतराष्ट्र को पहले की ही भांति युधिष्ठिर के यहां भी आरालिक, सूपकार और रागखाण्डविक पक्वान्न बना बनाकर परोसते थे। रागखाण्डविक मीठी चीज़ें बनाते थे और सूपकार शाक भाजी, कढ़ी, रायते आदि तैयार करते थे। "आरालिक लोग मांस पकाते होंगे।" भक्ष्य पदार्थों के अतिरिक्त पेय पदार्थ अर्थात् खीर और रबड़ी आदि भी बनाये जाते थे। मोदकों का प्रचार था। घी सब चीज़ों में श्रेष्ठ था।

कुछ विद्वानों का मत है कि ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों में ऋषियों तथा सत्पुरुषों के सम्बन्ध में मांस भक्षण के पक्ष में जो श्लोक, सूत्र या मंत्र अथवा व्यवस्थाएं पाई जाती हैं, वे प्रक्षिप्त हैं। जो जिस बात का प्रेमी है, उसने अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए ऋषियों के ग्रंथों में उन्हीं बातों को बढ़ा दिया है। ऐसी ही बातों के लिखने वाले सज्जनों को भोज की "संजीवनी" के अनुसार राज भोज के द्वारा हस्तच्छेदनादि दंड की सज़ा दी गई थी। यह संजीवनी नामक इतिहास ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत भिण्ड के तिवाड़ियों के यहां मौजूद था और उसको लखना के राव साहब तथा उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे ने अपनी आँखों से देखा था। "उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने ४४०० और उनके शिष्यों ने ५६०० श्लोक युक्त अर्थात् सब १०,००० श्लोकों का महाभारत बनाया था। वही महाराज विक्रमादित्य के समय में २०,००० और मेरे पिता (भोज के पिता) के समय में २५,००० और मेरी आधी उमर में ३०,००० श्लोकों का महाभारत मिलता है। यदि ऐसे ही बढ़ता चला गया तो महाभारत एक ऊँट का बोझा हो जायगा" (सत्यार्थप्रकाश, स्वामीदयानन्द सरस्वती कृत पृ० ३१५—१६, १९६६ वि०)। श्लोकों के बढ़ाये जाने की बात तो 'महाभारत मीमांसा' के लेखक श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने भी स्वीकार की है। पर मांस भक्षण वाले श्लोक बढ़ा दिये गये हैं यह उनको मंज़ूर नहीं है। (महाभारत मीमांसा पृ० ३, तथा २६०, १९७७ वि०)।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन के प्रसंग में, फ़ाहियान ने लिखा है :—"समस्त देश में कोई किसी जीवधारी की हत्या नहीं करता और न मदिरा पीता, न प्याज़ और लहसुन खाता है। सुअर और मुर्ग़ी भी नहीं पाले जाते हैं। बाज़ार में शराब और माँस की दूकानें नहीं हैं। (The Oxford History of India, by V. A. Smith, Ed., 1923, P. 155)।

हर्ष (६०६—६४७ ई०) के राजत्वकाल में यूआनचांग ने मनुष्यों की शारीरिक शुद्धि को अवलोकन किया था, और लिखा है, "वे स्वतः पवित्र हैं, दबाव से नहीं। हरबार भोजन के पहले वे शरीर धोते हैं।

ने राज्य का कार्य भार इसी बुद्धिमान् व्यक्ति (प्रधान मंत्री) पर छोड़ रखा है, और विशेषकर यह श्रेष्ट कार्य। इन सब बातों के होने पर भी, सम्राट् स्वयं चौकसी करने से नहीं चूकता। पहले वह एक शुद्ध हृदय और परिश्रमी व्यक्ति को **मीरबकावल** (रसोईघर का अध्यक्ष) बनाता है, जो अपनी देखरेख और दूरदृष्टि से इस विभाग को परिपूर्ण रखता है। फिर उस की सहायता के लिए अनेक सुशील व्यक्ति मनोनीत करता है। उनमें से कुछ को छोटे बकावल (रसोइये) बनाता है, और कुछ सत्प्रकृति मनुष्यों को नगदी और जिंस का ख़ज़ांची नियुक्त करता है। इसके पश्चात् शुभचिन्तक व्यंजनपारखी नियत करता है और ठीक लिखने वाले बितक्चियों में से एक को मुशरिफ़ (हिसाब-किताब लेखक) बनाता है।

सब देशों के पाचक (रसोइये) सदा नाना प्रकार के व्यंजन बनाते हैं, और हर प्रकार के अन्न, शाक, भाजी, मांस, तेल, मिठाई और भांति भांति के मसाले के भोजन तैयार रहते हैं। प्रति दिन का भोजन इतना बढ़िया बनाया जाता है कि टूकटाक और बचाखुचा भोजन दुबारा नहीं परोसा जाता। ······मिट्टी और लकड़ी के बर्तन उपयोग के बाद फेंक दिये जाते हैं; किन्तु धातु के पात्र जो सोने, चांदी, ताँबे या लोहे के होते हैं, साफ़ करने के बाद इस्तेमाल किये जाते हैं। लहसुन और प्याज़ बहुत कम खाये जाते हैं, और जो लोग खाते हैं, वे निर्वासित कर दिये जाते हैं। मांस खाने की मनाही थी, किन्तु मृग-मांस और मेष-मांस अपवाद स्वरूप था। मछली खाने की भी आज्ञा थी; परन्तु साधारण भोजन में दूध, घी, दानादार शकर, मिसरी, रोटी और तेल में भुना या बघारा हुआ अन्न था" (Harsha by Dr. Radhakumud Mookerji, P. 174—75)।

उपर्युक्त विवरणों से तीन कालों के भोजन का चित्र किसी अंश में हमारे सम्मुख खिंच जाता है। अकबर भी मांस युक्त और निरामिष—दोनों प्रकार के भोजन करता था। परन्तु वह मांसाहार का प्रशंसक नहीं था, प्रत्युत समय समय पर उसकी निन्दा ही करता था (देखिये आईन २६, और पंचम ग्रंथ में सम्राट् की मनोरंजक उक्तियां)। इस आईन में कहीं भी गोमांस का या गोहत्या का ज़िक्र नहीं है, जिससे प्रकट है कि अकबर हिन्दुओं के हार्दिक भावों को ख़ूब पहिचानता था, और उनकी रक्षा करने का उपाय भी करता था।

आजकल भारतवर्ष में मनुष्यों के आहार की वस्तुएं विशेषतर गेहूँ, जौ, चावल, मटर, उर्द, अरहर, मूंग, ज्वार और बाजरा आदि हैं। शाकों में सोवा, पालक, मूली, आलू, बैंगन, अरुई, सीताफल, लौकी, तुरई, करेला, फूलगोभी, गांठगोभी, कटहल, बन्दगोभी, कुलफ़ा, ज़िमीक़न्द, भंसीडे, केला की फली आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मांसाहार कितने ही पुरुष नहीं करते और कितने ही आमिष भोजी हैं। हिन्दू गोमांस नहीं खाते किन्तु गोरी पल्टनें, मुसलमान और ईसाई आदि उसे विशेषरूप से खाते हैं।

बड़ों बड़ों को उत्सवों और त्योहारों में भी वैसा खाना बहुत कम प्राप्त होता है। ख़ासे (सम्राट्) के भोजन की उत्तमता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है।

नौरोज़[१] के प्रारम्भ में उपकोषाध्यक्ष एक वर्ष के व्यय का अनुमान-पत्र (बरावुर्द) बनाकर देते और रुपया ले लेते हैं। रुपए के थैलों के मुंह पर और भंडार के दरवाज़े पर मीरबकावल और मुशरिफ़ की मोहरों से मोहर की जाती है। दैनिक व्यय के आधार पर महीने महीने का हिसाब बनाया जाता है। इसी हिसाब के अनुसार तथा उक्त दोनों अधिकारियों की मोहर से हिसाब की फ़र्द तैयार की जाती है, फिर वह व्यय के खाते में दर्ज की जाती है। हर फ़सल के शुरू में दीवाने-बयूतात और मीरबकावल दूरदर्शिता से आवश्यकीय सामग्री संचय करलेते हैं। प्रायः सुखदास (चावल) बहराइच से, देवज़ीरा (चावल) ग्वालियर से, जिंजिन (चावल) राजोरी[२] और नीमला[२] से, घी हिसार फ़ीरोज़ा से; बतख़ें, मुरग़ाबियां और कुछ शाकभाजी कश्मीर से लाते हैं। सबके नमूने अलहदा रख छोड़ते हैं। भेड़, बकरी, बरबरी, मुर्ग़ और बतख़ों आदि का पालन पोषण बावर्ची करते हैं। मुर्ग़ी को एक महीने से कम नहीं रखते हैं। उनकी हलाली शहर और लश्कर के बाहर होती है, इस कार्य के लिए नहर या तालाब का होना ज़रूरी है। फिर उसे धोकर बोरों में भरते हैं और सूपकार (बावर्ची) की मोहर होकर वह रसोई घर में जाता है। वहां उसे दोबारा धोकर देग में डालते हैं। पानी खींचनेवाले मशक से पानी लाकर घड़े भरते हैं और उनका मुंह कपड़ों से बांध देते हैं। अनुभवी लोगों की उन पर मोहर होती है। जब पानी थिरा जाता है, तब उसे काम में लाते हैं। शाक भाजी खेत में बोते हैं और ताज़ी ताज़ी ख़र्च करते हैं। मीरबकावल और मुशरिफ़ हर खाद्य पदार्थ का मूल्य कूतते हैं, वही फिर नियम बन जाता है। वे रोज़-नामचा, आय-व्यय का अनुमान-पत्र, तहवील की क़ब्ज़ और नौकरों के मासिक वेतन के चिट्ठे पर, हस्ताक्षर करते हैं, और इस विभाग की रक्षा करते हैं। दुराचारी, बेहूदा, निकम्मा और अपरिचित व्यक्ति

१—जितने दिनों तक सूर्य मेषराशि में रहता है, उतना समय फ़ारसी में फ़रवर्दीन मास कहलाता है। यह संयोग बहुधा चैत्र वैसाख में होता है। यह महीना ३१ दिन का होता है। फ़रवर्दीन का पहला दिन—जिस दिन कि सूर्य मेषराशि में प्रवेश करता है और जो दिन प्रति वर्ष प्रायः २२ मार्च को पड़ता है,—नौरोज़ कहलाता है।

२—आईने अकबरी के चतुर्थ-ग्रंथ में सूबा काबुल के वर्णन में राजोरी और नीमला का उल्लेख हुआ है।

वहां स्थान (नौकरी) नहीं पाता; बिना ज़मानत के कोई नहीं रखा जाता है। किसी की व्यक्तिगत पहचान वहां काम नहीं देती।

ख़ासे (सम्राट्) का भोजन सोने, चांदी, पत्थर और मिट्टी के पात्रों में तैयार होता है। उनमें से कुछ पात्र एक सहकारी बकावल को सौंप देते हैं, और उसके चातुर्य से कार्य संचलित होता है। पकाने और परोसने के समय एक सायबान तान देते हैं और किसी को उधर देखने नहीं देते। रसोइये अपने कपड़ों की आस्तीनें और दामन चढ़ाते रखते तथा मुंह और नाक बांधे रहते हैं। परोसने के पहले खाने को बावर्ची और बकावल चखते हैं; फिर मीरबकावल चखता है, इसके बाद थालियों में परोसा जाता है। सोने और चांदी के पात्रों (थालियों) को लाल रंग के कपड़ों में बांधते हैं; और चीनी और तांबे के बर्तनों को सफ़ेद कपड़ों में। फिर मीरबकावल अपनी मोहर लगाता तथा व्यंजनों के नाम लिख देता है। बावर्चीख़ाने का मुशरिफ़ सब बर्तनों को एक काग़ज़ पर लिखकर, मीरबकावल की मोहर करा के, अन्दर भेजता है, जिससे वे बदलने नहीं पाते। सब सामान को छोटे बकावल, बावर्ची और दूसरे कर्मचारी ले चलते हैं। चोवदार आदमियों को आसपास आने से रोके रहते हैं। जब उपर्युक्त सामान भीतर भेजते हैं तो उसी समय रकाबदार,[१] तरह तरह की रोटियाँ, चक्का दही, और ख्वाँचे की चीज़ें,—जिनमें कुछ प्याले, अचार, अदरख, नीबू और भांति भांति के हरे शाकों से भरे रहते हैं—थालियों में चुनकर, मीरबकावल की मोहर कराके रवाना करते हैं। राजभवन के कर्मचारी उसको फिर से चख कर दस्तरख्वान पर चुन देते हैं। जब कुछ देर होजाती है, सम्राट् जीमने लगता है। भोजन परोसने वाले आज्ञा-पालन के लिए उपस्थित रहते हैं। पहले दरवेशों (फ़क़ीरों) का भाग निकाला जाता है। खाने का आरम्भ दूध या दही से होता है। जब सम्राट् भोजन कर चुकता है, तो कृतज्ञता स्वरूप मत्था टेक कर ईश-विनय करता है। मीरबकावल आज्ञा पाने के लिए तत्पर रहता है। पूर्वोक्त सूची के अनुसार पात्र वापस लिए जाते हैं। आकस्मिक अवसरों के लिए कुछ अधपका भोजन एहतियात के तौर पर सदा रख छोड़ते हैं।

तांबे के बर्तनों पर महीने में दो बार क़लई कराई जाती है; और शाहज़ादों तथा अमीरों के पात्रों पर एक बार। टूटे फूटे बर्तन तंबेड़ों को दिये जाते हैं, और नए बनवा लिये जाते हैं।

१—सम्राट् को भोजन तथा अचार आदि परोसने वाला।

आईन २४।

व्यंजनों की सामग्री।

व्यंजन बहुत से हैं, और उनका हाल वर्णन करना कठिन है। मैं उनमें से कुछ का उल्लेख करता हूँ और दूसरों के लिए पथ प्रदर्शित करता हूँ। सब भोजन, जो पकाये जाते हैं, तीन प्रकार से अधिक नहीं होते, यथा—(१) **बेगोश्त** (निरामिष)—जिसको प्रचिलित भाषा में सूफ़ियाना कहते हैं; (२) **गोश्त बाबिरंज** आदि (जो मांस और चावल आदि को मिलाकर बनाया जाय); (३) **गोश्त व अबाज़ेर** (मसालेदार मांस)। प्रत्येक के दस भेद लिखता हूँ :—

पहला—१. **ज़र्द-बिरंज**—१० सेर चावल; ५ सेर क़ंद; ३$\frac{1}{2}$ सेर घी; आध आध सेर किशमिश, बादाम और पिस्ताकी गूदी; $\frac{1}{4}$ सेर नमक; $\frac{1}{8}$ सेर अदरक; १$\frac{1}{2}$ दाम केसर; २$\frac{1}{2}$ मिसक़ाल दारचीनी। चार मामूली थालियां तैयार होंगी। इससे कम मसाला डाल कर भी बनाते हैं, और बिना मसाले का भी तैयार करते हैं। इसे मांसवाला भी बनाते हैं और नमकीन भी।

२. **ख़ुश्का**—१० सेर चावल में $\frac{1}{2}$ सेर नमक डालते ह। यह कई प्रकार का बनता है। ४ थालियां लबालब भर जाती हैं। १ मन देवज़ीरा धान से २५ सेर चावल निकलते हैं। १७ सेर से देग भर जाती है; जिंजिन चावल के २२ सेर से।

३. **खिचरी**—(खिचड़ी), चावल, मूंग की दाल और घी पांच पांच सेर; नमक $\frac{1}{3}$ सेर। ७ थालियां तैयार होंगी।

४. **शीर बिरंज**—(खीर) १० सेर दूध; १ सेर चावल; १ सेर क़ंद, १ दाम नमक। ५ थालियां लबालब भर जाती हैं।

५. **थूली**—१० सेर गेहूँ का दलिया जिसमें से तिहाई निकल जाता है; इसका आधा घी; १० मिसक़ाल काली मिर्च; ४ मिसक़ाल दारचीनी; ३$\frac{1}{2}$ मिसक़ाल लौंग और बड़ी इलायची; $\frac{1}{3}$ सेर नमक। कुछ लोग दूध और मीठा भी मिलाते हैं। चार थालियां तैयार होती हैं।

६. **चिखी**—१० सेर गेहूँ के आटे को ख़मीर बनाकर ख़ूब धोते हैं, और उसमें से शुद्ध २ सेर निकाल लेते हैं। फिर मसाला मिलाकर अनेक प्रकार से मांस बना लेते हैं। एक एक सेर घी और प्याज़; आधा आधा दाम केसर, बड़ी इलायची और लौंग; एक एक दाम दारचीनी, गोल मिर्च और धनियां; तीन तीन दाम अदरक और नमक। दो थालियां तैयार होती हैं। कुछ लोग नींबू का रस भी डालते हैं।

७. **बार्दिजां**—१० सेर चावल; १$\frac{1}{2}$ सेर घी; २$\frac{3}{4}$ सेर प्याज़; $\frac{1}{4}$ सेर अदरक और नींबू का रस; पांच पांच मिसक़ाल काली मिर्च और धनियां; आधा आधा मिसक़ाल लौंग, इलायची और हींग। छे थालियां बनती हैं।

८. **पहित**—बे छिलके की मसूर, उरद, चना और मूंग आदि की दाल से बनती है। १० सेर दाल; २$\frac{1}{2}$ सेर घी; आधा आधा सेर नमक और अदरक; २ मिसक़ाल ज़ीरा; १$\frac{1}{2}$ मिसक़ाल हींग। १५ थालियाँ तैयार होंगी। बहुधा ख़ुश्का के साथ खाते हैं।

९. **साग**—इसे पालक तथा और बहुत से शाकों से बनाते हैं। और बहुत से स्वादिष्ट व्यंजनों में से है। सोआ, पालक इत्यादि १० सेर; घी १$\frac{1}{2}$ सेर; प्याज़ १ सेर; अदरक $\frac{1}{2}$ सेर; काली मिर्च ५$\frac{1}{2}$ मिसक़ाल; लौंग और इलायची आधा आधा मिसक़ाल। ६ थालियाँ बनती हैं।

१०. **हलवा**—मैदा, क़ंद और घी दस दस सेर। ५ थालियाँ तैयार होती हैं; यह कई प्रकार से खाया जाता है।

इसी प्रकार तरह तरह के मुरब्बे और शरबत हैं, जिनका हाल यहाँ पर बयान नहीं किया जा सकता।

दूसरा—१. **क़बूली**—१० सेर चावल; ७ सेर मांस; ३$\frac{1}{2}$ सेर घी; १ सेर चने की दाल; २ सेर प्याज़; $\frac{1}{2}$ सेर नमक; $\frac{1}{4}$ सेर अदरक; एक एक दाम दारचीनी, गोल मिर्च और ज़ीरा; आधा आधा दाम इलायची और लौंग। कुछ बादाम और किशमिश भी डालते हैं। पाँच थालियाँ बनती हैं।

२. **दुज़्द बिरियां**—१० सेर चावल; ३$\frac{1}{2}$ सेर घी; १० सेर माँस; $\frac{1}{2}$ सेर नमक। पाँच थालियाँ तैयार होती हैं।

३. **क़ीमापुलाव**—१० सेर चावल, १० सेर माँस; ४ सेर घी; १ सेर चने की दाल; २ सेर प्याज़; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; $\frac{१}{४}$ सेर अदरक; एक एक दाम काली मिर्च, ज़ीरा, इलायची और लौंग। पाँच थालियाँ तैयार होती हैं।

४. **शुल्ला**—१० सेर माँस; ३$\frac{१}{२}$ सेर चावल; २ सेर घी; १ सेर चना, २ सेर प्याज़; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; $\frac{१}{४}$ सेर अदरक; दो दो दाम लहसुन और काली मिर्च; एक एक दाम दारचीनी, इलायची और लौंग। ६ थालियाँ बनती हैं।

५. **बुग़रा**—१० सेर मांस; ३ सेर मैदा; १$\frac{१}{२}$ सेर घी; १ सेर चना; १$\frac{१}{२}$ सेर सिरका; १ सेर क़ंद, चौथाई चौथाई सेर प्याज़, हल्दी, चुकन्दर, शलग़म, पालक, सोआ, और सोंठि; एक एक दाम केसर, लौंग, इलायची और ज़ीरा; २ दाम दारचीनी; ८ मिसक़ाल गोल मिर्च। १२ थालियां बनेंगी।

६. **क़ीमा-शोरबा**—१० सेर मांस; १ सेर चावल; १ सेर घी; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; बाक़ी चीज़ें शुल्ले की तरह। १० थालियां भर जांयगी।

७. **हरीसा**—१० सेर मांस; ५ सेर कुटा हुआ गेहूं; २ सेर घी; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; २ दाम दारचीनी। ५ थालियां तैयार होंगी।

८. **कश्क**—१० सेर मांस; ५ सेर कुटा हुआ गेहूं; ३ सेर घी; १ सेर चना; $\frac{१}{४}$ सेर नमक; १$\frac{१}{२}$ सेर प्याज़; $\frac{१}{२}$ सेर सोंठि; एक दाम दारचीनी; दो दो मिसक़ाल केसर, लौंग, इलायची और ज़ीरा। पांच थालियां ऊपर तक भर जांयगी।

९. **हलीम**—मांस, गेहूं, चना, मसाला और केसर कश्क के समान; १ सेर घी; चौथाई चौथाई सेर शलजम, हल्दी, पालक और सोआ। १० थालियां बनती हैं।

१०. **क़ुताब**—हिन्दुस्तानी इसे संबोसा कहते हैं। इसे कई प्रकार से बनाते हैं। १० सेर मांस; ४ सेर मैदा; २ सेर घी; १ सेर प्याज़; $\frac{१}{४}$ सेर अदरक; $\frac{१}{२}$ सेर नमक; दो दो दाम काली मिर्च और धनियां, एक एक दाम इलायची, ज़ीरा और लौंग; चौथाई सेर सुम्माक़[१]। २० संबोसे तैयार होते हैं। चार थाल भर जाते हैं।

तीसरा—१. **बिरयां**—पूरी दाशमंदी भेड़ के लिए २ सेर नमक;

१—यह एक फल है जो खट्टा होता है।

१ सेर घी ; २ मिसक़ाल केसर, लौंग, काली मिर्च और ज़ीरा इस्तेमाल करते हैं ; और तरह तरह से बनाते हैं ।

२. **यख़नी**—१० सेर मांस ; १ सेर प्याज़ ; $\frac{1}{2}$ सेर नमक ।

३. **योल्मा**—एक भेड़ को पानी में इस क़दर उबालते हैं कि सब बाल साफ़ हो जाते हैं और उसे यख़नी आदि की तरह बना लेते हैं । मेमने या बकरी का योल्मा बहुत बढ़िया होता है ।

४. **कबाब**—बहुत तरह का होता है । १० सेर माँस ; $\frac{1}{2}$ सेर घी ; चौथाई चौथाई सेर नमक, अदरक और प्याज़ ; डेढ़ डेढ़ दाम ज़ीरा, धनियाँ, काली मिर्च, इलायची और लौंग ।

५. **मुसम्मन**—गरदन के रास्ते से एक मुर्ग़ की सब हड्डियाँ निकाल लेते हैं, और उसका शरीर ज़िन्दा की तरह बना रहता है । आध आध सेर कुटा हुआ माँस और घी ; ५ मुर्ग़ के अंडे ; $\frac{1}{4}$ सेर प्याज़ ; दस दस मिसक़ाल धनियाँ और अदरक ; ५ मिसक़ाल नमक ; ३ मिसक़ाल गोल मिर्च ; $\frac{1}{2}$ मिसक़ाल केसर । कबाब की तरह पका लेते हैं ।

६. **दुप्याज़ा**—१० सेर माँस मध्यम मोटी बोटी का ; २ सेर घी ; २ सेर प्याज़ ; $\frac{1}{4}$ सेर नमक ; $\frac{1}{8}$ सेर अदरक ; एक एक दाम ज़ीरा, धनियाँ, इलायची और लौंग ; २ दाम काली मिर्च । ५ थालियाँ तैयार होती हैं ।

७. **भेड़ का मुतंजना**—१० सेर मध्यम मोटी बोटी का माँस ; २ सेर घी ; $\frac{1}{2}$ सेर चना ; $\frac{1}{4}$ सेर सोंठ ; १ दाम ज़ीरा, दो दो दाम गोल मिर्च, लौंग, इलायची, और धनियाँ । ७ थालियाँ लबालब भर जाती हैं । यह मुर्ग़ और मछली का भी बनाया जाता है ।

८. **दम-पुख़्त**—१० सेर माँस ; २ सेर घी ; १ सेर प्याज़ ; ११ मिसक़ाल अदरक ; १० मिसक़ाल काली मिर्च ; दो दो दाम लौंग और इलायची डाल कर बनाते हैं ।

९. **क़लिया**—१० सेर माँस ; २ सेर घी ; १ सेर प्याज़ ; २ दाम काली मिर्च ; एक एक दाम लौंग और इलायची ; $\frac{1}{8}$ सेर नमक । ७ थालियाँ तैयार होती हैं । क़लिया में माँस की बोटी मुतंजना के विरुद्ध ज्यादा छोटी रहती है और शोरवा ज्यादा गाढ़ा होता है । हिन्दुस्तान में इसे बहुत प्रकार से बनाते हैं ।

१०. **मलग़ूबा**—१० सेर माँस ; १० सेर दही ; एक एक सेर घी और प्याज़ $\frac{१}{४}$ सेर अदरक ; ५ दाम लौंग। १० थालियाँ तैयार होती हैं।

आईन २५।

रोटी।

यह व्यंजनों से पृथक् नहीं है, परन्तु पद-विशेषता के कारण उसका वृत्तान्त अलग लिखा गया है।

रोटी रकाबख़ाने (भंडारे) में तैयार होती है। **बुज़ुर्ग-तनूरी** (बड़ी तन्दूरी रोटी)—१० सेर मैदा ; ५ सेर गाय का दूध ; १$\frac{१}{२}$ सेर घी ; और $\frac{१}{४}$ सेर नमक से बनती है। इसे छोटी भी बनाते हैं। **तुनके-ताबगी** (हल्की, तवे पर सेकी जाती है)। एक सेर में १५ तथा इससे भी अधिक तैयार होती हैं। यह कई प्रकार की बनाई जाती है। इसकी एक क़िस्म चपाती कहलाती है ; जिसे कुछ लोग ख़ुश्के से भी बनाते हैं। जब यह गरम गरम दस्तरख़्वान पर लाई जाती है तो बहुत स्वादिष्ट मालूम होती है।

ख़ासे (दरबार) के भोजन के लिए एक मन गेहूँ से आधा मन मैदा निकालते हैं, और २ सेर दलिया और शेष भूसी। यदि मैदा इस दर्जे की नहीं चाहते, तो दलिया और भूसी घटा बढ़ा देते हैं।

आईन २६।

संयम-व्यवस्था।

सम्राट् अपने ज्ञान के कारण मांस से बहुत कम अभिरुचि रखता है, और बहुधा मोतियों से भरी हुई ज़बान से कहा करता है कि यद्यपि मनुष्य के लिए भाँति भाँति के व्यंजन विद्यमान हैं तथापि वह अपनी अज्ञानता और निर्दयता से प्राणियों के सताने में मन लगाता है तथा उनकी हत्या करने और खाने से हाथ नहीं खींचता। कोई व्यक्ति पशुओं के न सताने की ख़ूबी पर

अपनी आँखें नहीं खोलता, वरन् अपने को जानवरों की क़ब्र बनाता है। यदि उसके कंधों पर संसार का बोझ न होता, तो एकदम मांस खाना छोड़ देता; तथापि उसका विचार यह है कि शनैः शनैः उसे नितान्त त्याग दे[१]। कुछ दिनों तक वह अपने समय के लोगों की चाल पर चलता रहा; परन्तु बाद को उसने पहले कुछ शुक्रवारों को माँस खाना बन्द किया, और फिर रविवारों को। किन्तु अब प्रत्येक सौर-मास की प्रतिपदा, रविवार, सूर्य और चन्द्र ग्रहण के दिन, संयमवाले दो दिवसों के बीच का दिन, रजब[२]-मास के सोमवार, हर इलाही महीने के उत्सव का दिन, फ़रवरदीन का पूरा महीना, और समस्त आबान-मास—जोकि सम्राट् का जन्म-मास है—संयम के दिनों में और बढ़ा दिये गये हैं। आबान[३]-मास के लिए यह निश्चय हुआ था कि सम्राट् की अवस्था के जितने साल हों, उतने दिन वह उक्त महीने में माँस न खाये। परन्तु अब उसकी अवस्था के साल आबान-मास के दिनों से अधिक होगये हैं, इसलिए आज़ुर-महीने के भी कुछ दिनों में उसने व्रत रक्खा। परन्तु इस समय उक्त-मास के सभी दिन सूफ़ियाना (संयमवाले) हो गये हैं। ईश चिन्तन की अधिकता के कारण उनमें प्रति वर्ष वृद्धि होती जाती है, और वह पाँच दिन से कम नहीं होती। जब व्रत के दिन एक साथ पड़ जाते हैं, तो उपवास के दिनों की कमी को पूरा कर लेते हैं, और वे दिन दूसरे महीनों में बाँट देते हैं। जब प्रतिष्ठित संयम-दिवस समाप्त होते हैं, तो आमिष-भोजन पहले मरियम मकानी के घर से आता है, फिर दूसरी बेगमों, शाहज़ादों और निकटस्थ सम्बन्धियों के यहाँ से।

इस विभाग में अमीर, अहदी और दूसरे सवार सेवा करते हैं। प्यादे का वेतन १०० से ४०० दाम तक है।

१—"अकबरनामे" में लिखा है कि सम्राट् ने मांस खाना बिल्कुल इसलिए नहीं छोड़ा कि उसके त्यागने से और भी अनेक व्यक्ति छोड़ देते, जिससे उन लोगों को बहुत कष्ट होता और उनके स्वास्थ्य में अन्तर पड़जाता।

२—अकबर का जन्म रविवार के दिन ५ रजब सन् ९४९ हिजरी को हुआ था। यह तारीख़ १५ अक्टूबर सन् १५४२ को पड़ती है। रजब-मास के सोमवारों को इसलिए व्रत रखा जाता था, कि रविवार पहले ही व्रतों की सूची में सम्मिलित हो चुके थे। दीनइलाही-मत के अनुयायी इसी प्रकार अपने अपने जन्म-मासों में व्रत रखते थे।

३—इन महीनों का पूरा हाल तृतीय-ग्रंथ में है।

आईन २७।

जिंसों के भाव।

यद्यपि चढ़ाइयों और वर्षा-ऋतु आदि में, जिंसों के भाव में बहुत अंतर हो जाता है, तथापि इस तालिका में मैं उनके सामान्य मूल्य का उल्लेख करता हूँ और अन्वेषकों के लिए ज्ञान की सामग्री उपस्थित करता हूँ।

रबी की जिंसों की तालिका।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
गेहूँ	प्रतिमन[1]	१२ दाम	अलसी	प्रतिमन	१० दाम
काबुली चना	,,	१६ ,,	कुसुंभ के बीज	,,	८ ,,
काला चना	,,	८ ,,	मेथी	,,	१० ,,
मसूर	,,	१२ ,,	मटर	,,	६ ,,
जौ	,,	८ ,,	सरसों	,,	१२ ,,
चेना	,,	६ ,,	केवू	,,	७ ,,

ख़रीफ़ की जिंसें।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मुश्कीं शालि[2]	प्रतिमन	११० दाम	सामज़ीरा चावल	प्रतिमन	९० दाम
सादा शालि	,,	१०० ,,	शकर चीनी ,,	,,	९० ,,
सुखदास चावल	,,	१०० ,,	देवज़ीरा ,,	,,	९० ,,
दूनाप्रसाद चावल	,,	९० ,,	जिंजिन ,,	,,	८० ,,

१—अकबर का मन ४० सेर का था किन्तु वह तौल में कम था। "जिस समय अकबर ने मन की तौल में परिवर्तन करना चाहा था उसके पहले उत्तर भारत में २८ या २९ पौण्ड अवाइरडुपाइज़ का मन चलता था। अकबर ने सेर ३० दाम भर का चालू किया। दाम तांबे का मुख्य सिक्का था। अकबर का ४० सेरी मन तौल में ३,८८,२७५ ग्रेन या $55\frac{1}{2}$ पौण्ड अवाइर-डुपाइज़ था। साधारण कार्यों में वह ५६ पौण्ड माना जाता था"। (India At the Death of Akbar, P. 53, 1920) इस हिसाब से अकबरी मन आज कल की तौल के अनुसार लगभग २७ सेर का था।

२—कस्तूरी के समान सुगन्धित धान।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
दका चावल	प्रतिमन	५० दाम	लोबिया	प्रतिमन	१२ दाम
ज़िरही ,,	,,	४० ,,	जुआरी	,,	१० ,,
साठो ,,	,,	२० ,,	लहड़रा[१]	,,	८ ,,
मूंग	,,	१८ ,,	कोदरम	,,	७ ,,
उरद	,,	१६ ,,	कूरी	,,	७ ,,
मोठ	,,	१२ ,,	साँवाँ	,,	६ ,,
सफ़ेद तिल	,,	२० ,,	कंगनी[२]	,,	८ ,,
काले तिल	,,	१६ ,,	चेना	,,	८ ,,

दाल।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मूंग की दाल	प्रतिमन	१८ दाम	मसूर की दाल	प्रतिमन	१६ दाम
चने की दाल	,,	१६$\frac{१}{२}$,,	मोठ की दाल	,,	१२ ,,

आटा।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मैदा (गेहूँ की)	प्रतिमन	२२ दाम	चने का आटा	प्रतिमन	२२ दाम
खुश्का (गेहूँ का आटा)	,,	१५ ,,	जौ का आटा	,,	११ ,,

शाक भाजी।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
सोआ	प्रतिमन	१० दाम	गोभी (करमकल्ला)	प्रतिसेर	१ दाम
पालक	,,	१६ ,,	कंकछू (कश्मीर के जंगल में होता है)	,,	४ ,,
पोदीना	,,	४० ,,			
प्याज़	,,	६ ,,	दुंरीतू (अख़रोट के फूल)	,,	२ ,,
लहसुन	,,	४० ,,	शक़ाक़ुल (जंगली गाजर)	,,	३ ,,
मूली	,,	२०$\frac{१}{२}$,,	लहसुन के बीज	प्रतिमन	१ ,,

१—बाजरा।

२—काकुन।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
उपलहाक (कश्मीर में होता है)।	प्रतिमन	१ दाम	कचनार की कली	प्रतिसेर	१/२ दाम
			चूका	,,	१/२ ,,
जीतू (लाल साग)	,,	३ ,,	बथुआ	,,	१/४ ,,
अदरक	प्रतिसेर	२१/२ ,,	रतसका	,,	१ ,,
पोई	,,	१ ,,	चौलाई	,,	१/४ ,,

जीवित पशु पक्षी और मांस।

नाम	तौल या संख्या	मूल्य	नाम	तौल या संख्या	मूल्य
दाशमंदी भेड़	१ नग	६१/२ रुपए	बतख़	१ नग	१ रुपया
अफ़ग़ानीभेड़ प्रमथश्रेणी	,,	२ ,,	तुग़दरी	,,	२० दाम
,, द्वितीयश्रेणी	,,	११/२ ,,	कुलंग	,,	२० ,,
,, तृतीयश्रेणी	,,	११/४ ,,	चर्ज़	,,	१८ ,,
काश्मीरी भेड़	,,	११/२ ,,	दुर्राज	,,	३ ,,
हिन्दुस्तानी भेड़	,,	११/२ ,,	चकोर	,,	२० ,,
बरबरी बकरी प्रथमश्रेणी	,,	१ ,,	बोदना	,,	१ ,,
,, बकरी द्वितीय श्रेणी	,,	३/४ रु०	लवा	,,	१ ,,
भेड़ का मांस	प्रतिमन	६५ दाम	करवानक	,,	२० ,,
बकरे का मांस	,,	५४ ,,	फ़ाख़्ता	,,	४ ,,
क़ाज़	१ नग	२० ,,			

घी, तेल आदि।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
घी	१ मन	१०५ दाम	दूध	१ मन	२५ दाम
तेल	,,	८० ,,	दही	,,	१८ ,,

शक्कर आदि ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मिस्री	१ सेर	६ दाम	सफ़ेद शक्कर	प्रति मन	१२८ दाम
सफ़ेद क़ंद	,,	५½ ,,	लाल शक्कर	,,	५६ ,,

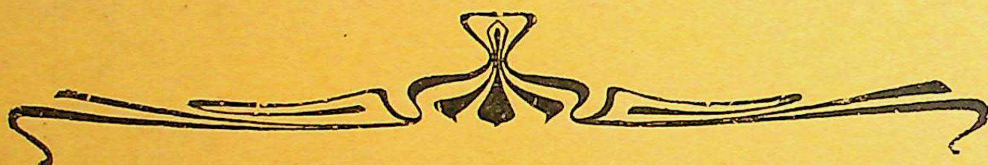
मसाले ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
केसर	१ सेर	४०० दाम	अजवाइन	प्रतिसेर	२ ,,
लौंग	,,	६० ,,	हल्दी	,,	१० ,,
बड़ी इलायची	,,	५२ ,,	धनियाँ	,,	३ ,,
काली मिर्च	,,	१७ ,,	कलौंजी	,,	१½ ,,
लाल मिर्च	प्रति सेर	१६ दाम	हाग	,,	२ ,,
सोंठि	,,	४ ,,	सौंफ	,,	१ ,,
अदरक	,,	२½ ,,	दारचीनी	,,	४० ,,
ज़ीरा	,,	२ ,,	नमक	प्रतिमन	१६ ,,

खटाइयाँ ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
नींबू की खटाई	प्रति सेर	६ दाम	गाजर का अचार	प्रति सेर	½ दाम
नींबू का रस	,,	५ ,,	सिरके के नींबू	,,	२ ,,
अंगूर का सिरका	,,	५ ,,	नमक के पानी के नींबू	,,	१½ ,,
शक्कर का सिरका	,,	१ ,,	नींबू के रस के नींबू	,,	३ ,,
अश्तरग़ार का अचार	,,	८ ,,	अदरक का अचार	,,	२½ ,,
तेल के आम का अचार	,,	२ ,,	अदरशाख़	,,	२½ ,,
सिरके का आम	,,	२ ,,	सिरके का शलग़म	,,	१ ,,
तेल के नींबू	,,	२ ,,	बांस का अचार	,,	४ ,,

अन्तर्राष्ट्रीय जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान्
डा० भगवानदास जी, एम. ए., डी. लिट्., का अभिमत ।



"अबुलफ़ज़्ल की आईने-अकबरी विश्व-साहित्य की महान कृतियों में से है ! यह हमारे मस्तिष्क के नेत्रों के सम्मुख सोलहवीं शताब्दी के भारत का सजीव चित्र उपस्थित कर देती है । यह बड़े सौभाग्य की बात है, कि कानपुर के पण्डित रामलाल पाण्डेय के ध्यान में यह बात आई कि वे उत्कृष्ट गुण सम्पन्न एवं चिरस्थायी महत्व के इस ग्रंथ को भाषान्तरित करके तीव्र गति से बढ़ते हुए हिन्दी साहित्य को समृद्धिशाली बनावें । ··· आपका अनुवाद बिल्कुल ठीक अनुवाद है और बड़ी साहित्यिक योग्यता तथा विशिष्टता के साथ किया गया है । अनुवादक ने बड़े परिश्रम के साथ अध्ययन और खोज करके अनेक व्यक्तियों के जीवन चरित्र और इसी प्रकार की और अनेक आवश्यक बातें टिप्पणियों के रूप में स्थान स्थान पर अपने ग्रंथ में समाविष्ट करदी हैं, जिनसे पुस्तक का मूल्य और भी अधिक बढ़ गया है । उन्होंने निःस्वार्थ भाव एवं सात्विक वृत्ति से प्रेरित होकर ही इस में अपनी सारी शक्तियाँ जुटा दी हैं । ... मुझे पूर्ण आशा है कि वे लोग, जिन्हें उत्कृष्ट हिन्दी साहित्य की विशुद्ध उन्नति अभीष्ठ है, पाण्डेय जी को इस उत्तम ग्रंथ के प्रकाशन एवं प्रचार में सहायता प्रदान करेंगे । भारतवर्ष की यूनीवर्सिटियां इस विषय में लोक मत के प्रभाव का अनुभव करने लगी हैं, और उन्होंने अब शिक्षा के माध्यम के रूप में जीवित मातृ-भाषाओं के उपयोग का प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया है । ···इस प्रकार की सब यूनीवर्सिटियां पं० रामलाल पाण्डेय को अपने परिश्रम को पूर्ण और सफल करने में अनेक प्रकार से सहायता दे सकती हैं और अपनी अपनी शक्तिनुसार उन्हें सब प्रकार की सहायता देना उचित है ।"